हिन्दी नाटकों में हास्य ग्रौर व्यंग्य

(विदूषक को छोड़कर)

सन् १८६५ ई०—१९६५ ईसवी

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की डी० फ़िल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध-सार

निर्देशक
डॉ० मोहन अवस्थी एम० ए०, डी० फ़िल्०
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

प्रस्तुतकर्त्ता
सभापति मिश्र एम० ए०, शास्त्री, साहित्यरत्न

इलाहाबाद : मई १९७३ ई०

हिन्दी नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(विदूषक को छोड़कर)

सन् १८६५ ई०—१९६५ ईसवी

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की डी० फ़िल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध-सार

निर्देशक
डॉ० मोहन अवस्थी एम० ए०, डी० फ़िल्०
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

प्रस्तुतकर्ता
सभापति मिश्र एम० ए०, शास्त्री, साहित्यरत्न

इलाहाबाद : मई १९७३ ई०

हिन्दी नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(विदूषक को छोड़कर)

सन् १८६५ — १९६५ ईसवी

शोध-प्रबन्ध-सार

सृष्टि के आदिकाल से ही मानव अपने सुख-दु:ख को व्यक्त करता चला आ रहा है। सुख में वह आनन्दित होता है और हँसता है, दु:ख में शोक व्यक्त करता है। हास्य वस्तुत: मनुष्य की प्रसन्नचित्तता का परिचायक है। किन्तु हँसना जितना सरल है, हास्य का विवेचन करना उतना ही अधिक दुरूह है। हँसना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। हास्य द्वारा समाज-सुधार का कार्य भी सदा से होता आया है। सामाजिक रुचि से अतिरिक्त वस्तुएं सदा से हास्य का आलम्बन बनती आई हैं। अपने रुचि से विभिन्न वस्तु या व्यक्ति को देखकर मानवमन में हास्य का स्वत: उद्रेक हो जाता है। हास्य के साथ ही साथ व्यंग्य का विवेचन किया जाता है। वस्तुत: व्यंग्य हास्य का परिष्कृत रूप माना जाता है। हास्य में सरल स्वभाव की आवश्यकता पड़ती है किन्तु व्यंग्य के लिए परिष्कृत रुचि आवश्यक होती है। हास्य में कटुता का अभाव होता है किन्तु व्यंग्य यदा-कदा श्रोता को कटु प्रतीत होने लगता है। इसलिए व्यंग्य के दो भेद निरूपित किए जा सकते हैं — मृदु व्यंग्य और कठोर व्यंग्य। इसके अलग अलग शब्दगत और अर्थगत भेद किये जा सकते हैं जो श्रोता की रुचि पर निर्भर करता है। हास्य के वर्गीकरण में विभिन्न आधार ग्रहण किये जाते हैं। संस्कृत काव्य-शास्त्र में हास्य के उत्तम, मध्यम और अधम तीन भेद निरूपित किये गये हैं। उत्तम के स्मित, हसित, मध्यम के विहसित, उपहसित और अधम के अपहसित और अति-हसित भेद किये गये हैं। उत्तम हास्य में कपोलों में या तो टेढ़ापन हो जाता है

अथवा कुन्दकली के समान दन्त-पंक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। मध्यम हास्य में दाँतों से ध्वनि और स्फुरण प्रकट होता है किन्तु अधम हास्य कर्णकटु होता है, आँखों में आँसू निकलने लगता है, मनुष्य के रोंगटे खड़े भी जाते हैं।

शरीर वैज्ञानिकों ने हास्य को शरीर की अतिरिक्त शक्ति माना है। मनुष्य अपने शरीर में आवश्यकता से अतिरिक्त अर्जित शक्ति को हास्य और खेल के माध्यम से व्यक्त करता है। मनोवैज्ञानिकों ने हास्य का सम्बन्ध उपचेतना में दबे भावों से स्थापित किया है। हास्य मानव को दु:ख से बचाने का एक प्राकृतिक विधान है।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त विवेचन से प्रतीत होता है कि हास्य की उत्पत्ति किसी एक निश्चित कारण से नहीं होती अपितु शब्दावली, वेष-भूषा तथा क्रिया-व्यापार के फलस्वरूप हास्य की उत्पत्ति होती है।

भारतीय वाङ्मय में हास्य का विवेचन नाट्य के सन्दर्भ में एक रस के रूप में किया गया है और रस का अर्थ आनन्द माना गया है। वाणी, वेष-भूषा आदि की विपरीतता से चित्त में जो विकास होता है वही 'हास' कहलाता है। प्राय: यह विवेचन, मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं वैयाकरणों द्वारा ही किया गया है।

संस्कृत साहित्य में हास्य-व्यंग्य का प्रयोग केवल विदूषक के सन्दर्भ में ही किया गया है। विदूषक अपने पेटूपन के लिए प्रसिद्ध होता है इसलिए उसका हास्य कृत्रिम होता है। संस्कृत नाटकों के अतिरिक्त ऋग्वेद में वेदपाठी ब्राह्मणों की तुलना मेढकों से करते हुए हास्य का प्रयोग किया गया है। संस्कृत साहित्य में हास्य सम्बन्धी उक्तियाँ अधिक प्राप्त होती हैं। व्यंग्य का शास्त्रीय विवेचन भी संस्कृत काव्यशास्त्र में पाया जाता है।

भारतेन्दु के पूर्व नाटकों की कोई सुव्यवस्थित परम्परा नहीं थी यद्यपि ब्रजभाषा में भारतेन्दु के पूर्व अनेक नाटक प्राप्त होते हैं किन्तु उनमें नाटकीयता का अभाव है। उन्हें नाटक की अपेक्षा काव्य मानना ही उचित है। भारतेन्दु नाट्य

के आदि प्रणेता माने जाते हैं । हास्य व्यंग्य का शास्त्रीय प्रयोग भी उन्होंने सर्वप्रथम अपने नाटकों में किया है इसलिए भारतेन्दु के पूर्व के नाटकों में हास्य-व्यंग्य का शास्त्रीय विवेचन ढूंढना एक क्लिष्ट कल्पना होगी किन्तु परिहास के लिए यत्र-तत्र हास्य के प्रयोग अवश्य प्राप्त होते रहे हैं ।

बंगला नाटकों में द्विजेन्द्रलाल राय की नाट्यकला हास्य व्यंग्य पर आधारित है । बंगला नाटकों में उनके समकक्ष का हास्य-व्यंग्य लेखक नहीं प्राप्त होता है । डी०एल० राय ने अपने प्रहसनों में तत्कालीन समाज का जो व्यंग्य चित्र खींचा है वह प्राय: दुर्लभ ही है ।

भारतेन्दुकालीन नाटकों में हास्य-व्यंग्य अपने शास्त्रीय रूप में प्राप्त होता है । भारतेन्दु के काल में भारत पर अंगरेजों का पूर्ण प्रभुत्व हो गया था । देश में असमानता, लूटखसोट, बेकारी, अशिक्षा आदि की अधिकता थी । अंगरेज शासक अपने स्वार्थ तक ही सीमित रहे । समाज में पाखण्डियों का प्रभाव बढ़ रहा था । पंडे, पुरोहित धर्म के नाम पर जनता को लूट ले रहे थे । व्यभिचार, पापाचारादि का बोलबाला था । इन सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए भारतेन्दु ने हास्य-व्यंग्य का सहारा लिया । अंगरेजी शासन के अन्याय के खिलाफ भी उन्होंने व्यंग्य का प्रयोग किया है । उन्होंने समाज सुधार सम्बन्धी, राष्ट्रीय चेतना सम्बन्धी व्यंग्य का प्रयोग किया । `अन्धेरनगरी` ,`वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति `,`विषस्य विषमौषधम्` में सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य किया गया है किन्तु` भारतदुर्दशा` में भारतेन्दु जी ने राष्ट्रीय चेतना जागरित करने के लिए कायर देशवासियों पर व्यंग्य किया है ।`पाखण्ड विडम्बन`, एवं` प्रेमजोगिनी` में धर्म के नामपर होने वाले अनाचारों का पर्दाफाश किया है । वैष्णवों एवं शैवों की धर्मान्धता आदि को चित्रित करके भारतेन्दु जी ने हास्य-व्यंग्य का सजीव प्रयोग प्रस्तुत किया है । भारतेन्दु युग में पं० बालकृष्ण भट्ट ने तत्कालीन समाज में व्याप्त मदिरापान,वेश्यागमन, के दुष्परिणामों का वर्णन किया है । `वेणुसंहार` नाटक में भट्ट जी ने अंगरेजीशासन के दुष्परिणामों का चित्रण किया प्रतापनारायण मिश्र ने भी अपने प्रहसनों द्वारा तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों

पर व्यंग्य किया है । राधाचरण गोस्वामी, देवकीनन्दन त्रिपाठी, लालसिंह बहादुर मल्ल, शिवानन्द त्रिपाठी, बलदेव प्रसाद मिश्र प्रभृति इस काल के श्रेष्ठ व्यंग्यकार हैं । भारतेन्दु कालीन व्यंग्यकारों में राधाचरण गोस्वामी और देवकीनन्दन त्रिपाठी प्रमुख हैं । इस काल के प्रहसनों में प्राय: अश्लीलता का आधिक्य है । भारतेन्दु युग हास्य-व्यंग्य का आधार काल माना जाता है ।

पारसी नाटक कम्पनियों के नाटकों में जो हास्य प्रारम्भ में प्रयुक्त किये जाते थे वे बड़े ही अश्लील और गन्दे होते थे । उस समय प्रत्येक नाटक के साथ एक प्रहसन रहा करता था । कलात्मक दृष्टि से ये प्रहसन बड़े गन्दे होते थे । उनमें निम्नश्रेणी की ही बातें प्राय: रहा करती थीं, इन प्रहसनों में प्रेमी-प्रेमिका के झगड़ों के चित्रण होते थे । जूतों, चप्पलों की बौछार होती थी । पुन: वे हाथ मिलाये रंगमंच पर आ जाते थे । नाटकों के प्रति मानव की कुरुचि उत्पन्न करने वाले ये कामिक ही थे । पारसी कम्पनियों का मुख्य ध्येय धनोपार्जन करना था इसलिए वे रंगमंचीय व्यवस्था पर विशेष ध्यान नहीं देते थे । पैसे के लालच में ये कम्पनियां पात्रों से भावात्मक अभिनय भी कराया करती थीं । राधेश्याम कथावाचक और आगा हश्र काश्मीरी ने प्रहसन और मूल नाटकों में सम्बन्ध स्थापित किया । यही कारण है कि 'अभिमन्यु' में 'राजाबहादुर' सिलवरकिंग में 'जीटक' तथा बेताब के 'महाभारत' में हास्य का शिष्ट रूप पाया जाता है । रंगमंचीय नाटकों में सर्वाधिक नाटक पौराणिक उपाख्यानों का आधार लेकर लिखे गये हैं । उनके साथ प्रयुक्त प्रहसन हास्य की दृष्टि से सन्तोषजनक माने जा सकते हैं । किन्हीं प्रहसनों में लतीफे भी जोड़ दिये गये हैं । तत्कालीन समाज में व्याप्त ढोंग, व्यभिचार, का यत्र-तत्र अवश्य ही चित्रण इन नाटकों में मिलता है किन्तु उनमें नाटकीय हास्य का अभाव पाया जाता है । गोपालदामोदर तामस्कर, जमुनादास मेहरा, नन्दकिशोर लाल, आनन्दप्रसाद कपूर, दुर्गाप्रसाद गुप्त आदि इस काल के उत्कृष्ट कोटि के नाटककार हैं ।

भारतेन्दु युग में हास्य-व्यंग्य का जो श्रीगणेश हुआ वह प्रसादयुग में क्षीण हो चला । बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता का उग्र स्वर मुखरित हो जाने

के कारण हास्य-व्यंग्य की वैसी प्रगति न हुई जो भारतेन्दु युग में थी । महावीर-प्रसाद द्विवेदी ने भाषा परिष्कार का आन्दोलन चलाया । इस युग में व्यंग्य चित्रों का प्रचलन अवश्य हुआ । 'सरस्वती' के माध्यम से हास्य-व्यंग्य का शीर्षक प्रारंभ किया गया किन्तु शीघ्र ही वह कालम बन्द कर दिया गया । प्रसाद के नाटकों में पाश्चात्य कामेडी के अनुसार हास्य-व्यंग्य की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है । प्रसाद के युग में प्रहसनों की रचना भी पर्याप्त की गई । बदरीनाथ भट्ट, जी०पी० श्रीवास्तव इस युग के श्रेष्ठ प्रहसनकार हैं । उग्र जी के नाटकों में व्यंग्य की प्रधानता है । प्रसाद उच्चकोटि के नाटककार हैं । प्रसाद जी ने अपने नाटकों में भारतीय तथा पाश्चात्य शैली का अद्भुत समन्वय किया है । प्रचलित नाट्यशैली में प्रसाद ने युगान्तर लाया । प्रसाद के नाटकों में पाश्चात्य कामिक की तरह हास्य-व्यंग्य का प्रयोग मिलता है । विदूषक का जितना सफल प्रयोग प्रसाद जी ने अपने नाटकों में किया है वैसा अन्यत्र सम्भव नहीं है । महापिंगल और धातुसेन के कथनों द्वारा निर्मल हास्य की सृष्टि होती है । प्रसाद ने विदूषक पात्रों का प्रयोग कम ही किया है । उन्होंने पात्रों की परिहासी और विनोदी प्रकृति का बनाकर काम चला लिया है । अजातशत्रु में 'वसन्तक' और स्कन्दगुप्त में 'मुद्गल' की सृष्टि प्राचीन नाट्य-पद्धति के आधार पर हुई है । उनका उद्देश्य मुतत्व करना तथा अपने विनोदी व्यंग्यों द्वारा लोगों को प्रसन्न करना है । एकघूंट में 'विज्ञापनवाला' तथा ध्रुवस्वामिनी में कुबड़ा बौने का प्रसंग हास्य प्रदर्शन हेतु ही उपस्थित किया गया है । कामना में प्रसाद जी ने व्यंग्य का सहारा लिया है । प्रसाद के हास्य में शिष्टता और सज्जता व्यापक है । व्यंग्य में उन्होंने थोड़े में अधिक कहने की कोशिश की है । प्रसाद का हास्य निर्मल, शील की सीमा का उल्लंघन प्राय: नहीं करता । रूपनारायण पाण्डेय सुदर्शन, रामदास गौड़, रामसरन शर्मा, राधेश्याम मिश्र आदि इस युग के श्रेष्ठ नाटककार हैं ।

सन् १९३५ ई० के बाद देश में अनेक उथल-पुथल प्रारम्भ हुए । अंग्रेजी शासन की बर्बरता और तानाशाही मनोवृत्ति के प्रतिकूल कवियों ने विरोध का स्वर आरम्भ किया । नाटकों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से तत्कालीन अंग्रेजी व्यवस्था

पर कटाक्ष प्रारम्भ हुआ । आधुनिक युग हास्य-व्यंग्य के पूर्ण विकास का युग है । प्रसाद के बाद — पत्र-पत्रिकाओं के आधिक्य से आलोच्य विषय के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई । इस काल के नाटकों में हास्य का विकास कलात्मक तथा चारित्रिक विकास के साथ ही साथ हुआ । इस युग में विद्रूपों का मिश्रण सर्वाधिक हुआ है । सिनेमा के अन्धभक्त, फैशनपरस्त, शिक्षित, बेकार, स्वार्थी राजनेता, एवं कि ों का आलम्बन लेकर नाटकों में व्यंग्य प्रस्तुत किये गये हैं । हरिशंकर शर्मा उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचन्द्र माथुर, भगवतीशरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, देवराज दिनेश, मोहन राकेश आदि नाटककारों ने हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

रेडियो नाटक के विकास के साथ ही हास्य-व्यंग्य में विकास द्रुतगति से हुआ । वर्तमान समय में रेडियो मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है । इस साधन द्वारा हम एक ही स्थानपर श्रव्य नाटकों का आनन्द ले लेते हैं । कृष्णचन्द्र, विष्णु-प्रभाकर, विश्वम्भर मानव, राजाराम शास्त्री, हिमांशु श्रीवास्तव आदि एकांकी-कारों ने ध्वनि नाटकों की रचना की है जिसमें हास्य व्यंग्य अपने परिष्कृत रूप में प्राप्त होता है ।

हिन्दी में अंग्रेजी साहित्य की तरह अनेक अन्यापदेशिक नाटक लिखे गये सूक्ष्म मनोभावों के माध्यम से स्थूल के प्रति व्यंग्य का प्रयोग इन नाटकों में मिलता है । रूपकगरी में रूप विचारों के माध्यम से मानवीकरण के साथ साथ व्यंग्य किया जाता है । हिन्दी में ऐसे नाटकों की रचना कम है । प्रसाद का 'कामना' प्रथम रूपकगरी नाटक है । पन्त की ज्योत्स्ना, भगवती प्रसाद वाजपेयी के 'छलना' गोविन्ददास के 'नवरस' एवं लक्ष्मीनारायण लाल के 'मादा कैक्टस' और 'रक्तकमल' में रूपकगरी के विविध व्यंग्य प्राप्त होते हैं ।

चीनी और पाकिस्तानी युद्धों के परिणामस्वरूप भारतीय जीवन में एकाएक संकट उपस्थित हो गया था । देश की जनता एवं सेना ने बड़े उत्साह से इन आक्रमणों के निदान में सहयोग किया किन्तु उस समय भी कुछ लोगों ने देशद्रोह का

कार्य किया युद्धों पर आधारित नाटकों में ऐसे दुष्टों को हास्य-व्यंग्य का आलम्बन बनाया गया है। डॉ० शिवप्रसाद सिंह, रामकुमार, अणाद ऋषि भटनागर, डॉ० कंचनलता सब्बरवाल, एवं एम०बी० रणादिवे आदि ने अपने नाटकों में हास्य का चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिखने में जिन-जिन महानुभावों ने यत्किंचित् सहयोग प्रदान किया है तथा जिन विद्वान् लेखकों की कृतियों का आधार लिया गया है उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

सभापति मिश्र

(सभापति मिश्र)

हिन्दी नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(विदूषक को छोड़कर)

सन् १८६५ ई०—१९६५ ईसवी

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की डी० फ़िल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० मोहन अवस्थी एम० ए०, डी० फ़िल्०

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

प्रस्तुतकर्त्ता

सभापति मिश्र एम० ए०, शास्त्री, साहित्यरत्न

इलाहाबाद : मई १९७३ ई०

प्राक्कथन

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' इस भणिति के अनुसार नाटकसाहित्य काव्य की सर्वोत्कृष्ट विधा है। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में नाटकों का विशिष्ट स्थान है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध नाट्यसन्दर्भ में हास्य और व्यंग्य का आधार लेकर भारतेन्दु से वर्तमान नाटकों (१८६५-१९६५ ई०) का प्रतिनिधित्व करता है। वर्तमान समय में हास्य-व्यंग्य की चतुर्मुख प्रगति को देखते हुए इस शोध-प्रबन्ध में हास्य-व्यंग्य की विभिन्न रीतियों की स्थापना की गई है। हिन्दी का नाटक साहित्य विभिन्न परिस्थितियों तथा उतार-चढ़ाव के बीच गुजरा है। परिणामस्वरूप हास्य-व्यंग्य की स्थापना में भी प्रौढ़ता एवं शिथिलता दिखाई पड़ती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में अंग्रेजों के अत्याचार और देश की दुर्दशा को चित्रित करने में हास्य-व्यंग्य का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ। इस दृष्टि से भारतेन्दु जी नाट्यसाहित्य की ही भांति हास्य-व्यंग्य के जनक माने जाते हैं। परवर्ती नाटककारों ने अपने नाटकों और प्रहसनों में हास्य-व्यंग्य को स्थान दिया। परिणामत: वर्तमान समय में यह नाटकों का अनिवार्य अंग-सा हो गया है।

हिन्दी नाट्यसाहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु जी का जन्मकाल १८५० ई० है। उन्होंने अपना प्रथम नाटक १८६८ में लिखा था। इसलिए प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में हास्य-व्यंग्य का अध्ययन करते समय इसका प्रारम्भ १८६५ ई० से माना गया है। हिन्दी नाटकों में हास्य-व्यंग्य की सामग्री की न्यूनता के कारण शोध-प्रबन्ध में सौ वर्षों के नाटकों का अध्ययन किया गया है। वर्तमान नाटकों में पाश्चात्य ढंग से हास्य-व्यंग्य प्रयुक्त होने के कारण एकांकियों एवं रेडियोनाटकों की ओर भी इंगित कर दिया गया है।

भारतेन्दु से लेकर वर्तमान समय के नाटकों में राष्ट्रीयता, समाजसुधार, फैशनपरस्ती, अंग्रेजों के भ्रष्टाचार एवं अत्याचार, भारतीय लोगों की अंग्रेजों के प्रति प्रदर्शित भक्ति आदि के माध्यम से हास्य- व्यंग्य, उपहास आदि का

प्रयोग हुआ है । इस प्रबन्ध में हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से हिन्दी के नाटकों का अनुशीलन कर एक निष्कर्ष निकाला गया है । इस दृष्टि से यह शोध-प्रबन्ध एक नवीन एवं प्रथम प्रयास माना जा सकता है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अध्यायों का विभाजन कालक्रम के आधार पर किया गया है तथा प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध, अच्छे एवं भद्दे सभी प्रकार के नाटकों का आधार लिया गया है फिर भी विस्तार भय से एक ही प्रवृत्ति के अनेक नाटकों को प्राय: छोड़ दिया गया है और उनका सन्दर्भ यथास्थान दे दिया गया है ।

विषय की स्पष्टता के लिए प्रथम तीन अध्यायों में भारतीय तथा पाश्चात्य, प्राचीन एवं आधुनिक विद्वानों, विचारकों, मनोवैज्ञानिकों, काव्य-शास्त्रियों एवं वैयाकरणों आदि के आधार पर हास्य-व्यंग्य का विस्तृत शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है । संस्कृत नाटकों, डी० एल० राय के बंगला नाटकों एवं भारतेन्दु पूर्व के नाटकों में भी हास्य-व्यंग्य का विकास प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है ।

रेडियो नाटकों के परिणामस्वरूप हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में जो बहुलता आई है उसका भी स्पष्ट संकेत शोध-प्रबन्ध में किया गया है । हिन्दी प्रदेशों में अनेक रेडियो स्टेशन हैं जहाँ से नियमित हास्य-व्यंग्य सम्बन्धी नाटक प्रसारित किये जाते हैं । राजनीति के साथ व्यंग्य में भी तीव्रता आती गई है । किन्तु प्रकाशित नाटकों के अभाव में इस अध्याय को संक्षेपिणा लिखा गया है । इसके अतिरिक्त रेडियो नाटक कला की दृष्टि से एक पृथक् व्यक्तित्व स्थापित कर चुका है । अत: उसका अध्ययन अलग से अपेक्षित है जो वस्तुत: इस शोध प्रबन्ध की सीमा में संभव नहीं है । इस प्रकार हास्य-व्यंग्य के विभिन्न पहलुओं को लेकर उसे हिन्दी नाटकसाहित्य के अन्तर्गत युगीन परिवेश में रख कर जाँचा-परखा एवं निष्कर्ष निकाला गया है ।

अन्त में अपने निर्देशक डॉ० मोहन अवस्थी (एम०ए०, डी०फिल्०, प्राध्यापक,हिन्दी विभाग,इलाहाबाद यूनिवर्सिटी) के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता हूँ जिनके सत्प्रयास, सविधि निर्देशन एवं सतत्-प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप

जो यह कार्य नियत-समय में निर्विघ्न रूप से समाप्त हो सका है। उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में प्रकट करूं, मैं स्वतः असमर्थ हूं। आदरणीय गुरुवर्य डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (एम०ए०,डी०लिट्० प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,इलाहाबाद यूनिवर्सिटी) से मुझे समय-समय पर अनेक सुझाव एवं मार्ग-दर्शन मिलता रहा है, इसके लिए मैं उनका आभारी एवं कृतज्ञ हूं।

श्री ब्रह्म सावित्री संस्कृत महाविद्यालय,दारागंज,प्रयाग के कार्यकारिणी के सदस्यों एवं प्रधानाचार्य श्रीयुत पं० रामब्रह्म शुक्ल व्याकरणवेदान्ताचार्य ने मेरी बड़ी सहायता की है। एतदर्थ उक्त महाभागों का हृदय से आभार मानता हूं।

इस शोधप्रबन्ध के सर्वांगपूर्ण संवलित होने में डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा एवं डॉ० विजयेन्द्र स्नातक द्वारा अनेक महत्वपूर्ण संशोधन एवं सुझाव प्राप्त हुए हैं। एतदर्थ मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता हूं।

इस शोध-प्रबन्ध के लिखने में डॉ० रामकुमार वर्मा, श्री ज्योतिप्रसाद - मिश्र 'निर्मल', श्री गणेश पाण्डेय एवं श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय से भी अनेक सुझाव मिले हैं। इसलिए उक्त महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

अपने अनेक मित्रों श्री रामचन्द्र पाण्डेय, श्री चन्द्रमणि मिश्र, श्री मनहर-गोपाल भार्गव एवं श्री सतीशकुमार शुक्ल के उपकारों को भुला भी कैसे सकता हूं ? हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, भारती भवन पुस्तकालय प्रयाग, इलाहाबाद पब्लिक लाइब्रेरी,लखनऊ विश्वविद्यालय पुस्तकालय, तथा इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के पुस्तकालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का भी मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे उदारतापूर्वक समस्त सुविधाएं प्रदान कीं।

सभापति मिश्र
(सभापति मिश्र)

विषय-सूची

विषय　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ-संख्या

प्रथम-अध्याय

विषय-प्रवेश

हास्य की उत्पत्ति—

(१) शरीर विज्ञान से सम्बन्धित,

(२) कलाओं से सम्बन्धित,—

हास्य की उपादेयता,

हास्य और मानव प्रकृति,

हास्य से समाज-सुधार

प्रथम अध्याय

हास्य की उत्पत्ति

(१) शरीर विज्ञान से सम्बन्धित

'हास्य' शब्द का इतिहास बड़ा रोचक है। अंग्रेजी का ह्यूमर (Humour) शब्द लैटिन के ह्यूमर (Humor) या ऊमर (Umor) का विकसित रूप है। प्राचीन लैटिन साहित्य में इस शब्द का अर्थ तरलता अथवा सिक्तता था। १४ वीं शताब्दी में यह शब्द शरीरविज्ञान से सम्बन्धित हो गया और शरीर में चार प्रकार के दोष बताये गये। इस समय इस शब्द का अर्थ 'दोष' हुआ जिसे विकृति या विकार भी कहते हैं। जिस प्रकार हमारे यहाँ आयुर्वेदशास्त्र में कफ, वात, पित्त के असन्तुलन को 'त्रिदोष' माना जाता है उसी प्रकार यूनानी चिकित्साशास्त्र में चार दोष माने गये हैं। ये ही चार दोष (Four Humours) निम्नलिखित हैं।

१. रक्तिम (Sanguine) – यह दोष हृदय से सम्बन्धित है। इसकी प्रकृति गर्म और उष्ण होती है।
२. कफ (Phlegmatic) – यह दोष नाड़ी से सम्बन्धित है। यह सर्दीप्रधान होता है।
३. पित्त (Choleric) लीवर से सम्बन्धित, लाल पीतिमायुक्त, इसकी प्रकृति गर्म और सूखा होती है।
४. नीरसता, शुष्कता (Melancholy) – लीवर से सम्बन्धित कृष्णापीतिमायुक्त, प्रकृति सर्दी एवं सूखा।

पन्द्रहवीं शताब्दी तक Humour शब्द का अर्थ शरीर विज्ञान से ही सम्बन्धित रहा। १६ वीं शताब्दी के मध्य में इस शब्द का अर्थ चित्तवृत्ति अथवा चापल्य (Caprice and whim) हुआ। सत्रहवीं शताब्दी (१६८२ ई०) से इसका अर्थ बदलकर औचित्य हो गया।

बेन जान्सन ने 'एव्री मैन आउट आफ हिज ह्यूमर' में लिखा है कि प्रत्येक

व्यक्ति के शरीर में उपर्युक्त चार प्रकार के दोष विद्यमान रहते हैं। ये दोष कभी-कभी शरीर के किसी भाग में न्यूनाधिक भी हो जाया करते हैं। इन्हीं पर मानव का स्वास्थ्य पूर्ण निर्भर करता है। इन दोषों के विभिन्न गुण भी हुआ करते हैं। उनके प्रभाव प्रेरणा और शक्ति के कारण ये दोष एकांगी दौड़ने लगते हैं।[१]

शरीर विज्ञान से सम्बन्धित इस शब्द से आलोच्य-विषय हास्य के सन्दर्भ में कोई विशेष अर्थसिद्धि नहीं होती। ह्यूमर शब्द का `हास्य` के अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग आक्सफोर्ड शब्दकोष में मिलता है। १६८२ ई० से Voyoga & o Bengal के अनुवाद में यह शब्द आधुनिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैसे १६९० ई० में लिखित विलियम टैम्पल के `एसे आफ पोइट्री` तक वानसन का अर्थ भी लिया जाता रहा है[२]।

लगभग इसी समय से ही इस शब्द के अर्थ में विकास हुआ। इसके कोमल दयालु भाव आदि अर्थ भी लिये गये और व्यंग्य को भी इसी हास्य के विभाग में प्रतिष्ठा मिली।[३]

(२) कलाओं से सम्बन्धित-

हास्य का विकास विभिन्न कलाओं के साथ हुआ होगा। कोई भी व्यक्ति अपने शत्रु की भद्दी बनी हुई प्रतिमा को देखकर हँसता है। हँसा पूर्व की शता-ब्दियों में स्थापत्य कला में चित्रकला की प्रधानता दी गई। उस समय अनेक सीधे, टेढ़े, भव्य, विकृत भाववाले चित्र बनाये गये होंगे। मनुष्य प्राय: इन अनमेल चित्रों को देखकर हँसता रहा होगा। प्राचीन कथाओं में परमेश्वर और शैतान की एक ही जन्मभूमि बताई गई है अर्थात् दो विभिन्न विरोधी वस्तुओं को देखकर हास्य की सहज सम्वेदना होती है। प्राचीन मिश्रीय कला में अनेक उदाहरण मिलते हैं जिससे हास्य की उत्पत्ति होती है। जैसे-स्त्री द्वारा शराब का उदीरण करना,

---

१. आर०एच० ब्लिथ-ह्यूमर इन इंग्लिश लिटरेचर, पृ० ६, १६५६ ई०

२. वही, पृ० ७, ई० १६५६

३. वैन्टिस काफर- टैबुल्स टाक्स, पंक्तियाँ ६५६-६५८, तृतीय संस्करण

छोटी नाव द्वारा मृत्युसागर पार करना, स्वर्ग सेर से गीदड़ का लड़ना इत्यादि अनेक हास्यात्मक उदाहरण मिस्रीय कलाओं में प्राप्त होते हैं ।

मिस्र के लोग इन कलाओं में उतने दक्ष नहीं थे जितने ग्रीकवासी थे । ग्रीकवासी अलंकरण की कला में प्रवीण थे और चित्रों में रंगों का भी प्रयोग करते थे । ग्रीक देश में गुफाओं में चित्रित आदिमानव के नृत्य करते हुए अनेक चित्र प्राप्त हैं । ग्रीक निवासियों ने ईश्वर से लेकर जड़-प्रकृति के भी चित्र खींचे थे । रोम-वासियों ने भी इस कला में ग्रीकवासियों का अनुकरण किया । रोमन नाटकों में, यहाँ तक कि टैरेन्स के दुखान्त में भी नृत्य करते हुए अनेक चित्र प्राप्त हैं जिससे हास्य रस की सहज अभिव्यंजना होती है । धीरे-धीरे इस कला का विकास इंग्लैण्ड में भी हुआ । पाम्पेआई के खंडहरों में भी मानवमात्र से लेकर पशुओं के लघु चित्र मिले हैं ।[१]

ईसा की प्रथम शताब्दी में ईसाई-स्थापत्य में भी हास्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं । एक प्रसिद्ध स्थापत्य कला के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में हास्य का प्रचलन था । इस उदाहरण में क्रास (जिसमें ईसा को फांसी हुई थी) में गदहे का सिर लटका दिया गया है और बगल में बैठकर एक भक्त आराधना कर रहा है ।

मध्यकालीन स्थापत्यकला में हास्योत्पादक चित्रों का और अधिक विकास हुआ । ईसाई तथा अईसाई धर्मों में भी अनेक हास्यात्मक चित्र मिलते हैं । इंग्लैण्ड की प्राचीन कला में शैतान के सर्वाधिक चित्र मिलते हैं । बाइबिल के समय से दसवीं शताब्दी तक के इन चित्रों में सजीवता अधिक है । इनमें आदम-हौवा, मेरी-जोसेफ

---

१. The ruins of Pompeii reveal wall-paintings and figurines that caricature human-beings and animals in a pigmy form
R.E.Blyth- Humour in English Literature-Page-8 Edi 1959

यहाँ तक कि स्वयं बालक ईसा भी इन चित्रों की कल्पना करके भय का अनुभव करते रहे होंगे ये सभी चित्र हमारे लिए हास्य की सृष्टि में सहायक सिद्ध होते हैं।

बाइबिल की एक कथा के अनुसार शैतान भक्तों को चुराकर नरक में ले जाता है। वहाँ का दरबान अधिक व्यस्त है, उसे भक्तों को अन्दर प्रवेश कराने का समय नहीं है। शैतान इन भक्तों को ४० दिन तक बन्द रखता है। पुनः प्रभु ईसा आकर उस शैतान की हत्या करके भक्तों को बचाते हैं।

मध्ययुगीन हास्योत्पादक चित्रों की परम्परा में और अधिक विकास हुआ। अनेक चित्रों के देखने मात्र से ही हास्य का संचार होने लगता है। मध्य-कालीन चित्रों में क्रूरता प्रदर्शित करने के लिए पशुओं का भी प्रयोग किया जाता था। मनुष्य द्वारा खींचते हुए तथा बैल द्वारा हल की मुठिया पकड़े, मनुष्य के ऊपर चढ़े घोड़े, बैल द्वारा कसाई की हत्या करते हुए, खरगोश द्वारा कुत्ते का पीछा करते हुए, मछली द्वारा मछुए को फँसाते हुए, पत्नी द्वारा पति की पिटाई होते हुए अनेक चित्र मिलते हैं जिन से हास्य की सृष्टि होती है। इस काल में मार्टिन स्कौनगौयर, इजराएल वान मैकन, ल्यूकस, पीटर, ब्रुगेल प्रमुख हास्य चित्रकार हैं।

पश्चिमी देशों में स्थापत्य कला में चित्रों का प्राधान्य था। इसलिए वहाँ विभिन्न भावों के प्रतीक स्वरूप चित्र प्राप्त होते हैं। भारतीय कलाओं में भी अनेक चित्र प्राप्त होते हैं लेकिन ये चित्र शृंगारिक भावना को ही उद्दीप्त करते हैं। इनमें हास्य का प्रायः अभाव है।

हास्य की उपादेयता—

मानव सभ्यता के आदिकाल से ही मनुष्य सुख-दुःख का अनुभव करता चला आ रहा है। सुख में मनुष्य खुशियाँ मनाता है, प्रसन्न रहता है, हँसता है और अपने अथवा दूसरे के दुख को देखकर दुःखी हो जाता है, कारुणिक होकर उद्-गार प्रकट करता है। मानव जीवन के विकास क्रम में मनुष्य संघर्षशील रहकर इन

प्रवृत्तियों का सामना करता है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह समाज में रहकर इन सुखदु:खेच्छाओं से परिपूर्ण रहकर भी समाज के लिए अपने जीवन को मंगलमय बनाने के लिए कुछ रचनात्मक कार्य किया करता है । साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है अतएव साहित्यदर्पण में हम समाज की विभिन्न दशाओं की छाया प्राप्त करते हैं । इसीलिए "जीवन साहित्य का विषय बनता है तब साहित्यकार ऐसी प्रवृत्तियों का संचयन करता है जिससे जीवन का उदात्त रूप दृष्टिगत हो सके ।"[१]

हास्य मनुष्य के मन का एक भाव है जो जन्मजात होता है । यदि मनुष्य के हृदय में हास्य का अभाव हो जाय तो उसका सारा जीवन उसी प्रकार रस-हीन हो जाता है जैसे बिना लवण के भोजन रसहीन और फीका हो जाता है । "जीवन के आस्वादन के लिए परिमित हँसी आवश्यक है । 'हँसी जीवन का विटामिन है ।' इसके बिना जीवन-रस की परिपुष्टि नहीं । यदि मनुष्य और कुछ न सीखकर केवल हँसना सीख ले- दूसरों को देखकर हँसना नहीं, अपने आप पर हँसना-- तो वह सहज ही संसार और घर-गृहस्थी के भार तथा दु:ख झंझटों को झेल सकता है[२]।" वास्तव में हास्य की आत्मा में अलौकिक विचित्रता है । उसकी तुलना किसी अन्य मानवीय भाव से सम्भव नहीं है । यह अद्भुत भाव परिभाषाबद्ध नहीं किया जा सकता है । हास्य की प्रेरणा और इसका प्रभाव इतना व्यापक है कि कदाचित् ही कोई विरला व्यक्ति इसके वशीभूत न हो । यह एक ऐसा मानवीय भाव है जिसे हम बिना झिझक के व्यक्त करते हैं । हम आँसू बहाते हुए किसी के सामने जाना प्राय: नहीं चाहते । हास्य में आकर्षण और प्रेरणा होती है । आबाल-वृद्ध-वनिता सभी सहज ही उसकी प्रेरणा ग्रहण करते हैं ।" हास्य में एक प्रकार का विचित्र आकर्षण रहता है जिसके फलस्वरूप कोई भी उसके प्रभाव से विमुख नहीं रह सकता ।

---

१. डॉ० शान्तारानी-- हिन्दी नाटकों में हास्यतत्व, प्र०सं०, पृ० १

२. डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी -- हिन्दी साहित्य में हास्य रस, प्र०सं०, पृ० १

जिस प्रकार चुम्बक के पास आते ही लोहे के कण उससे चिपट जाते हैं उसी प्रकार हँसते हुए व्यक्ति को देखते ही हँसी आ जाती है[१]।"

भारतीय साहित्य में हास्य का विवेचन तथा उसकी साहित्यिक आत्मा का परिचय ऐसे विद्वानों द्वारा प्राप्त होता है जो हास्य से प्रायः दूर है। प्रायः यह कार्य दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों एवं मनस्तत्वशास्त्रियों द्वारा ही हुआ है जिन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा हास्य का विश्लेषण तो किया किन्तु इन विवेचनों के परिणामस्वरूप हास्य की मूल आत्मा कुण्ठित हो गई। कभी भारतीय रसविवेचक वैयाकरण थे जिससे अनुमान, भोग, अभिव्यंजना आदि व्युत्पत्ति-विलास से रस की आत्मा विवादास्पद ही रही। यही नियम हास्य के क्षेत्र में भी लागू होता है। साहित्यिक विवेचकों ने वाग्जाल द्वारा हास्य की आत्मा को बन्दी बनाना चाहा। हास्य विषयक हमारा आलोचना साहित्य दार्शनिकों के वैज्ञानिक बोझ से दबा हुआ है।

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य समीक्षक "थैकरे" ने हास्यप्रिय लेखकों की उपादेयता पर विचार करते हुए लिखा है -" हास्यप्रिय लेखक आप में प्रीति, अनुकम्पा ~~में करुणा~~ एवं कृपा के भावों को जागरित कर उन्हें नियन्त्रण में करता है। असत्य दम्भ, तथा कृत्रिमता के प्रति घृणा और कमजोरी, गरीबों, पतितों और दुःखी पुरुषों में कोमल भावों को उदय कराने में सहायक होता है। हास्यप्रिय साहित्यसेवी निश्चित रूप से उदार होते हैं। वे तुरन्त ही सुख-दुःख से प्रभावित हो जाते हैं। वे अपने समीपवर्ती पुरुषों की प्रकृति को भलीभाँति समझने लगते हैं एवं उनके हास्य प्रेम, विनोद और आँसुओं से समवेदना प्रकट कर सकते हैं। सर्वाधिक उत्तम हास्य

१, डॉ० एस०पी० खत्री- हास्य की रूपरेखा, पृ०सं०, पृष्ठ ११

वह है जिसमें कोमल भावनाओं और कृपा की प्रचुरता होती है ।"[1] वह मंगल भावनाओं से युक्त होता है ।

हँसना मानव की एक स्वाभाविक प्रकृति है । मनोविज्ञान की चौदह मूलप्रवृत्तियों में हास्य भी एक मूल प्रवृत्ति है, जो मनुष्य के शरीर में स्थित रहती है और हास्य के संवेग के साथ प्रकट होती है । हँसने से मनुष्य की वेदना कम हो जाती है । उसमें साहस और क्षमता की अभिवृद्धि होती है । हास्य का मूल स्रोत मानव के सहज स्वभाव में निहित है । अरस्तू ने कहा है कि मनुष्य एक ऐसा जीवन है जो हँसता है । हास्य द्वारा मानव को आनन्द की प्राप्ति होती है । डा० गुलाबराय ने एक स्थल पर लिखा है — "जो मनुष्य अपने जीवन में कभी नहीं हँसा उसके लिए रंभाशुक शब्दावली में कहना पड़ेगा — 'वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ।' वह मनुष्य नहीं पुच्छविषाणहीन द्विपदपशु है क्योंकि हँसना मानव का विशेषाधिकार है ।"[2] जीवन के आस्वाद के लिए हँसना परमावश्यक है । हास्य हमारी संतोषपूर्ण भावनाओं को प्रकाशित करता है । हास्य की आत्मा मानवी-सम्बन्धों की परिधि में ही पल्लवित पुष्पित होती है ।

---

१. The humorous writer professes to awaken and direct your love, your pity, your kindness, your scorn for untruth, pretension, imposture for lindeness for the weak, the poor, oppressed, the unhappy. A literacy man of the humorous turn is pretty sure to be of philanthropic nature, to have a great sensibility to be easily moved to painor pleasure, keenly to appreciate the varieties of temper of people round about him and sympathise in their laughter, love, amusement and tears. The best humour is that which is flavoured through out with liveliness and kindness.

Humour and Humourists- Thackeray. P.20, II Edition

२. हिन्दी साहित्य में हास्यरस- भूमिका- गुलाबराय

हास्य ईश्वर का रहस्यमय वरदान है । स्वास्थ्य-रक्षा के लिए हंसना अत्यावश्यक है । आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि नित्य हंसने वाला व्यक्ति कभी रोगी नहीं हो सकता है । शरीर विज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय तो रोग के लिए हास्य औषधि का काम करता है । श्री केलकर के शब्दों में -" जिस समय मनुष्य नहीं हंसता उस समय श्वासोच्छ्वास की क्रिया धीमी और शान्त रीति से होती है, पर हंसने के समय उसमें एकदम व्यत्यय हो जाता है । परन्तु उस व्यत्यय का परिणाम श्वासोच्छ्वास की इन्द्रियों और शरीर के रक्त प्रवाह पर अच्छा ही होता है ।"[1]

हास्य द्वारा स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है । हंसने से शरीर की थकावट दूर होती है । शरीर में आशा का संचार होता है । शरीर का रक्त शुद्ध होता है । डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है -" यदि संसार के इन लोगों को यह बात अच्छी तरह से मालूम हो जाय कि हास्य का हमारे स्वास्थ्य पर कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है तो फिर आधे से अधिक डाक्टरों वैद्यों और हकीमों आदि के लिए मक्खियां मारने के सिवा और कोई काम ही न रह जाय । हास्य वास्तव में प्रकृति की सबसे बड़ी पुष्टई है । हास्य से बढ़कर बलवर्द्धक और उत्साह वर्द्धक और कोई चीज हो ही नहीं सकती हास्य से ही हमारे शरीर में नवीन जीवन और नवीन बल का संचार होता है और हमारे आरोग्य की वृद्धि होती है ।"[2]

हास्य और मानव प्रकृति

हास्य प्रिय मानव का स्वभाव कोमल होता है । वह प्रत्येक व्यक्ति के प्रति सहानुभूति रखता है उसमें प्रेमभावना परिपूर्ण रहती है । हास्यप्रिय मनुष्य में कष्ट सहने की क्षमता होती है । जब जब किसी अप्रिय घटना के परिणामस्वरूप

---

१. नृसिंह चिन्तामणि केलकर- हास्यरस, प्र०सं०, पृ० १५७

२. डॉ० बरसाने लाल चतुर्वेदी-हिन्दी साहित्य में हास्यरस, प्र०सं०, पृ० १३

वास्तविक सन्तुलन खो देते हैं और अस्वाभाविक परिस्थितियों में पहुँच जाते हैं तब हास्य अथवा व्यंग्य ही उन्हें पुनः अपनी वास्तविक परिस्थिति में लाता है । कारलाइल महोदय का मत है कि —"जिस व्यक्ति ने एक बार सच्चे हृदय से खुल कर हँस लिया है वह कदापि बुरा नहीं हो सकता । प्रसन्न चित्त व्यक्तियों के हृदय में कोई बुराई नहीं रह सकती है ।"[१] हँसने वाला व्यक्ति कभी भी दुःख का अनुभव नहीं कर सकता ।

स्पार्टा के भोजनालय में प्रसिद्ध नेता लाइकरगस ने हास्य देवता की प्रतिमा स्थापित की थी । वह भोजन करते समय उस प्रतिमा को देखकर हँस लिया करता था क्योंकि उसका विश्वास था कि हास्य में पाचन शक्ति बढ़ाने का जितना अधिक गुण है उतना अन्य किसी पदार्थ में नहीं है । अंग्रेजी की एक कहावत में कहा गया है कि नित्य तीन बार हँसने वाले व्यक्ति को डॉक्टर की आवश्यकता नहीं पड़ती ।[२]

मानव हृदय में भावनाओं की प्रधानता होती है । इन्हीं भावों के फलस्वरूप सुखद अथवा दुःखद अनुभव प्राप्त होते हैं । मनुष्य समाज में जब कुरूपता देखता है तब वह हास्य या व्यंग्य प्रकट करता है । भारतेन्दु काल में अंग्रेजी परस्त लोगों की खिल्ली उड़ाई गई । कबीर ने अपने समाज के पाखण्डियों की हँसी उड़ाई है । हास्य मानवमन की एक प्रतिक्रिया है जिसे वह समय-समय पर व्यक्त किया करता है ।

---

१. No man who has once wholly and heartily laughed, can be altogather irrestainably bad. In cheerful, souls, there is no evil - Carlyle - London Magazine, Page-16,1828

२. Laughing thrice a day, keeps the doctor away (English Proverb)

हास्य से समाज-सुधार

हास्य द्वारा समाज-सुधार का कार्य सदा से होता चला आया है। समाजेतर वस्तुएं सदा से हास्य का आलम्बन बनती आई हैं। हिन्दी साहित्य में हास्य से सुधार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जब हम किसी व्यक्ति में कोई कमी देखते हैं तो हमारे मन में हास्य या व्यंग्य की प्रक्रिया स्वत: जागरित हो जाती है। बुद्धिहीन व्यक्ति को देखकर प्राय: हम 'गधा' अथवा 'उल्लू' की उपाधि से भूषित करते हैं।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में चारण कवियों ने कायर एवं क्लीब नायकों के प्रति हास्य की व्यंजना की है। भक्तिकाल में कबीर, सूर, तुलसी आदि कवियों ने ढोंगी, पाखण्डी साधुओं की हंसी उड़ाई है। रीतिकाल में अर्द्ध विकसित नायिका के जाल में फंस जाने वाला जयसिंह बिहारी के व्यंग्य[1] से उन्मुख हुआ। सेनापति[2] आदि कवियों ने कृपणों की खिल्ली उड़ाई है। आधुनिक युग में भी फैशन में नवीन व्यक्ति को देखकर प्राय: देहाती व्यक्ति हंस लिया करता है। फ्रेंच दार्शनिक बर्गसां ने लिखा है —"हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें सामाजिकता की झलक हो। भय, जो यह उत्पन्न करता है, उसके सनकीपन पर रोक लगाता है। यह मनुष्य को सदैव अपनी पारस्परिक आदान-प्रदान के उन निम्न-स्तरीय कार्यों के प्रति सचेत रखता है। संक्षेप में यह यान्त्रिक क्रिया के फलस्वरूप फिर किए जाने वाले व्यवहार को मृदुल बनाता है।"[3]

---

१. नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
   अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल॥

बिहारी-सतसई, दोहा १०२

२. नाहीं नाहीं करैं थोरे मांगे सब दैन कहैं
   मंगन कौ देख पट देत बार बार हैं।
   जिनकौ मिलत भली प्रापति की घटी होति,
   सदा सब जन मन भाए निरधार हैं।
   भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य
   कन कन जोरैं दानपाठ परिवार हैं।

(क्रमश: आगे जारी)

समाज सुधार का कार्य जितना हास्य से सम्भव है उतना अन्य साधन से नहीं। हास्य से स्वतः सुधार होने लगता है। बुराइयाँ दूर होती हैं। समाज का वातावरण शुद्ध होता है। प्रसिद्ध हास्य लेखक जी०पी० श्रीवास्तव के शब्दों में - "बुराई रूपी पापों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा गंगाजल नहीं है। यह वह हथियार है जो बड़े-बड़ों के मिजाज चुटकियों में ठीक कर देता है। यह वह कोड़ा है जो मनुष्यों को सीधी राह से भटकने नहीं देता। मनुष्य ही नहीं धर्म और समाज को भी सुधारने वाला है तो यही है....... ।" स्पेन के सर वेंटीज ने डान क्विक जोट की रचना करके यूरोप भर के कुराई फौजदारों की हस्ती मिटा दी। इंग्लैंड के शेक्सपियर ने अपने शाइलाक द्वारा सूदखोरों की दुनिया बिगाड़ दी। फ्रांस के मोलियर ने अपने पैके और मरफूरिए नामक चरित्रों से तत्त्वज्ञानियों की खिल्ली उड़ाकर अरिस्टाटिल से मतभेद करने वालों को फाँसी के तख्ते पर से उतार लिया[1]।" सामाजिक गन्दगी को दूर करने के लिए हास्य साबुन का कार्य करता है।[2] हास्य के द्वारा सामाजिक, अन्याय, अत्याचार और नैतिक असंगतियों को दूर किया जा सकता है।[3]

पिछले पृष्ठ का शेष -

सेनापति बचन की रचना बिचारी जामैं
दाता अरु सूम दोऊ कीने इकसार हैं ।।
—कवित्तरत्नाकर-सेनापति तरंग१।४०,पृ०सं०(उमाशंकर शुक्ल)

३. "Laughter must be something of this kind, a sort of social gesture. By the fear which it inspires, it restrains eccentricity keeps constantly awake and in mutual contact certain activities of a secondary order which might retire into their shell and to go to sleep and, in short, softens down whatever the surface of the social body may retain of mechanical inelasticity."

Henry Bergson-Laughter Page 20 Revised Edi. 1911

---

१. जी०पी०श्रीवास्तव-हास्यरस,पृ०सं०,पृ० १२
२. बरसानेलाल चतुर्वेदी-हिन्दी साहित्य में हास्य रस, पृ०सं०,पृ० १३

द्वितीय अध्याय

हास्य और व्यंग्य का शास्त्रीय विवेचन

हास्य क्या है ? , हास्य की उत्पत्ति, वक्रोक्ति, भारतीय वाङ्मय में रस, हास्य-रस का उद्भव, हास्य-रस का स्थायी भाव, हास्य के विभाव, हास्य के अनुभाव, हास्य-रस के संचारी भाव, हास्य-रस का वर्गीकरण- स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित, अतिहसित, हास का वर्गीकरण- मन्दहास, कलहास, अतिहास, परिहास, हास्य की पाश्चात्य मान्यताएं- ह्यूमर, सैटायर, सरकैज्म, विट्, आयरनी , फार्स, प्रहसन के भेद, प्रहसन के वर्ण्य विषय, पैरोडी, हास्य प्रदर्शन के आधार ।

द्वितीय अध्याय

हास्य क्या है ?

हास्य मानव मन की एक प्रवृत्ति है । हास्य एक क्रियात्मक मानसिक व्यापार है । मानव मस्तिष्क में मौलमूल प्रवृत्तियों में हास्य भी एक मूल-प्रवृत्ति है । हास्य का मूल कारण हर्ष है । हास्य-रस मनुष्य के सुसंस्कृत व्यक्तित्व की सज्जता एवं पवित्रता का परिचायक है । हास्य मानव जीवन की समस्त कुण्ठाओं का समुच्चय है । हास्य रस मस्तिष्क की वह त्रिवेणी है जिसमें स्नान करके बुद्धि कल्मष रहित, शुद्ध एवं प्रबुद्ध हो जाती है ।

हास्य का वास्तविक विश्लेषण करना प्रायः कठिन कार्य है क्योंकि इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रायः दार्शनिकों द्वारा ही हुआ है । वास्तव में मनुष्य के लिए हँसना जितना आसान है हास्य का विवेचन करना उतना ही दुष्कर है ।

हास्य रस के सन्दर्भ में प्राचीनकाल से ही भारतीय एवं पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं वैयाकरणों ने यत्र-तत्र कुछ न कुछ विचार अवश्य प्रस्तुत किये हैं जिनके आधार पर समग्ररूपेण हास्य-रस की कोई सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत करना असम्भव है । प्रसिद्ध हास्य व्यंग्य विवेचक बर्नार्ड शा ने सभी हास्योत्पादक वस्तुओं को हास्य माना है । फ्रान्सीसी समीक्षक बर्गसां ने हास्य की प्रवृत्ति और परिस्थितियों का विश्लेषण किया है उनके अनुसार हास्य एक मानवीय वृत्ति है और मानव जीवन के बाहर उसकी कोई गति नहीं है । उन्होंने हास्यके लिए भावुकता और उद्वेग का अभाव बताया है ।

शरीर वैज्ञानिकों ने हास्य का विवेचन भिन्न रीति से किया है । 'बाह्य वातावरण एवं कोई भूली भटकी स्मृति द्वारा मस्तिष्कगत विशिष्ट केन्द्र की हलचल का परिणाम, जो होठों एवं मन तथा मुख की भाव-भंगिमा पर लौट

कर प्रतीत होता है उसे हास्य कहते हैं ।"[१]

हाब्स महोदय ने अपने गौरव की अनुभूति से उद्भूत प्रसन्नता के प्रकाशन को हास्य माना है । जब हम किसी भी व्यक्ति को किसी मूर्खता में फंसे देखते हैं तब हम उसके स्तर से भिन्न अपने गौरव का अनुभव करते हैं जिसमें हमें हर्ष होता है । इस हर्ष का प्रदर्शन हम हास्य द्वारा करते हैं । हाब्स महोदय उल्लास की हंसी का कारण मानते हैं । स्पेन्सर महोदय के अनुसार हमारी चेतना का बड़ी वस्तु से छोटी की ओर जाना ही हास्य का मूल कारण है । हमारी चेतना जब उत्कर्ष की ओर से अपकर्ष की ओर अग्रसर होती है तो हास्य का उद्भव होता है ।[२] स्पेन्सर का कथन कुछ अस्पष्ट सा प्रतीत होता है । चेतना जब उत्कर्ष से अपकर्ष की ओर जाती है तो मन में क्षोभ होता है जो करुण का कारण है हास्य का नहीं ।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकडूगल महोदय का कथन है कि प्रकृति ने हास्य द्वारा मनुष्य में स्वाभाविक सहानुभूति की अतिशयता को रोककर मनुष्य को छोटी छोटी बातों के लिए दु:खी होने से बचाये रखा है ।[३] उदाहरणार्थ पानी में गिराये जाने पर हमें क्रोध होता है लेकिन यही कार्य मित्रों के द्वारा किये जाने पर हमें हंसी आती है ।

हास्य एक मानसिक क्रिया है । इसका सम्बन्ध मानसिक भावना से है । यह एक नैसर्गिक देन है जो प्रेमवत् स्वत: उत्पन्न होती है । दो वस्तुओं में आकर्षण के कारण प्रेम की उत्पत्ति होती है तथा दो वस्तुओं में विकर्षण के कारण हास्य की सृष्टि होती है । हास्य एक मनोविकार है लेकिन इसमें बौद्धिकता का पर्याप्त अंश रहता है ।

हास्य की उत्पत्ति :-

हास्योत्पत्ति के मूल कारणों में परिस्थिति का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

---

१. प्रेमनारायण दीक्षित- हास्य के सिद्धान्त और आधुनिक हिन्दीसा०,प्र०सं०,पृ०६६

२. ए०निकल- दि थ्यिरी आफ़ ड्रामा,पृ० १६६ संशो०सं०,१६३१ ई०

३. गुलाबराय--नवरस,द्वि०सं०,पृ० ४४१,१६३४ ई०

विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न कारणों के समाविष्ट हो जाने के कारण स्वतः हमारे मन में हास्य का उद्रेक प्रारम्भ हो जाता है। किसी भी हृष्टपुष्ट व्यक्ति को सड़क पर केले के छिलके से फिसलकर गिरते देख हमारे मन में हंसी आ जाती है। कभी-कभी किसी व्यक्ति द्वारा अधिक गुदगुदी करने पर हम हंस पड़ते हैं और कभी कभी हमारे नेत्रों से अश्रुबिन्दु भी निकल पड़ते हैं। इस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों के कारण हमारे हृदय में हास्य की सृष्टि होती है।

मानव जीवन में हास्य का महत्वपूर्ण स्थान है। हास्य एक मानसिक व्यापार है जिसमें बुद्धि का प्राधान्य रहता है। गुदगुदी द्वारा उत्पन्न हास्य निम्नस्तर का होता है। हास्य का सम्बन्ध कार्यकलापों तथा शारीरिक गुणों से है। विशिष्ट हास्य में इन गुणों का आधिक्य रहता है।

हास्योत्पत्ति के सम्बन्ध में भारतीय तथा पाश्चात्य चिन्तकों में पर्याप्त मतभेद है। प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने 'राग' से हास्य की उत्पत्ति मानी है, जबकि फ्रायड आदि आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने हास्य के मूलकारण के रूप में 'द्वेष' को प्रधानता दी है। भावप्रकाशन में शारदातनय ने रजोगुण के अभाव और सतोगुण के आविर्भाव से ही हास्य की उत्पत्ति बताई है और प्रीति पर आधारित एक चित्त विकार के रूप में उसे प्रस्तुत किया है।[१] अभिनव गुप्तपादाचार्य ने रसाभास से हास्य की उत्पत्ति बताई है। अभिनव गुप्त के अनुसार शृंगार, करुण, वीभत्स आदि रसों से भी विशेष परिस्थितियों में हास्य की उत्पत्ति हो सकती है।[२] 'करुणो-

---

१. 'सात्त्विकाराद्विकारी यः शृंगार इतीरितः।
तस्मादेव रजोहीनात्तु सत्वाद्धास्यसंभवः ।। '
—शारदातनय— भावप्रकाशन, पृ० ४७, संस्क० १६३०

२. ' तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्वं-सर्वेषु मन्तव्यम् ।।'
— अभिनव गुप्त — अभिनव भारती, पृ० २६७, तृ०सं०

ऽपि हास्य एवेति" कहकर आचार्यों ने करुणा से ही हास्य को सम्बन्धित किया है। विकार के साथ ही साथ अनौचित्य से भी हास्य की उत्पत्ति सम्भव है। अशिष्टता और वैपरीत्य इसी अनौचित्य की सीमा के अन्तर्गत हैं।

स्पेन्सर महोदय ने चेतना की बदलती गति से हास्य की उत्पत्ति मानी है। जीवन में तमाम ऐसे विरोधाभास आते हैं जिनसे हास्य की उत्पत्ति होती है। हास्य का सम्बन्ध सामाजिक भावना से है। आजकल बेकारी की समस्या द्वारा साक्षात्कार के समय एक पद पर अनेक शिक्षित स्नातकों की दीन दशा देखकर करुणा की भावना जगती है। किन्तु ठगने वाला दुकानदार जब स्वयं ठग लिया जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया पर प्राय: लोग हंसा करते हैं। इसकी उत्पत्ति में मानव मन जिम्मेदार होता है एक ही घटना पर कभी हास्य कभी करुणा की सृष्टि होती है। राणाप्रताप को घोड़े पर से गिरता देखकर हममें करुणा की भावना जागृत होती है और सहूमल के घोड़े से गिरते ही हम हंस कर चुटकियां लेने लगते हैं। संक्षेप में किसी वस्तु विशेष को देख अपने से भिन्न प्रतीति ही हास्योत्पत्ति का कारण है।

हेनरी बर्गसां ने लिखा है कि "जब मनुष्य अपनी नैसर्गिक स्वतंत्रता को छोड़कर यन्त्र की तरह काम करने लगता है तब हास्य का विषय बन जाता है। जैसे यदि कोई मनुष्य रास्ता चलते फिसल पड़े तो वह लोगों की हंसी का भाजन बन जाता है। मनुष्य तभी गिरता है जब वह अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता को भूलकर जड़ मशीन की भांति आचरण करने लगता है। यह भी एक तरह की विपरीतता है। मनुष्य अपने स्वभाव के विपरीत चलता है।"[१]

१.

"A man running along the streets strumbles and falls the passers-by burst out laughing. They would not laugh at him I imagine could they suppose that the whim had suddenly seized him to set down on the ground we laugh because his sitting down in unvoluntary ....

(कृपया अगले पृष्ठ पर देखें)

बर्गसाँ के अनुसार वे ही वस्तुएं हास्योत्पत्ति में सहायक सिद्ध होती हैं जो समाजप्रिय नहीं होतीं । उसके अनुसार यान्त्रिक क्रिया वाणीगत हो सकती है और शरीरगत भी । तकिया कलाम का बार बार प्रयोग करना वाणीगत क्रिया है । आलम्बन के अचेतन होने पर भी हास्य प्रकट होता है । किसी व्यक्ति के पीठ में कुछ लिख देने पर उस व्यक्ति के न जानने के कारण दर्शकगण हंस पड़ते हैं । विपरीतता से भी हास्य प्रकट हुआ करता है । चोर के घर में चोरी होने पर स्वत: हास्य का उद्रेक हो जाता है ।

शरीर वैज्ञानिकों के मतानुसार हास्य का प्रमुख कारण अतिरिक्त शक्ति है । इनके अनुसार खेल के समान हंसना भी एक स्वाभाविक क्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपने शरीर तथा मस्तिष्क में आवश्यकता से अधिक अर्जित शक्ति को खर्च करता है ।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हास्य का मूल उपचेतना में दबे भावों से है । मनोवैज्ञानिकों ने हास्य को जीवन का प्रमुख अंग माना है । उनके अनुसार मस्तिष्क की हड्डियों के अन्दर मांस का एक छोटा सा पिंड होता है जो शारीरिक क्रियाओं पर नियन्त्रण करता है । सभी भावों का सम्बन्ध मस्तिष्क से ही है । मैकडूगल के अनुसार हास्य मानव को दु:ख से बचाये रखने का एक प्राकृतिक विधान है ।

फ्रायड के अनुसार हास्य की उत्पत्ति मस्तिष्क के उपचेतन भाग से होती है ।

पिछले पृष्ठ का शेष :-

Now, take the case of a person who attends to the petty occupations of his every day life with mathematical precision.......

The laughable elements in both cases consists of a certain mechanical inelasticity, just where one would expect to find the wide awake adaptability and the living pliableness of a human being."

Henry Bergson - **Laughter: Page 9,10,Revised Edi.1911.**

[illegible]:-

मार्क्स, बर्गसां, मैग्डुगल, फ्रायड आदि के हास्य सम्बन्धी विचारों पर विहंगम दृष्टि डालने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी भी एक विचारक का कथन अपने में परिपूर्ण नहीं है। वास्तव में हास्य तो इन समस्त विचारकों के विचारों का समुच्चय है जिसमें स्वच्छन्दता है। हास्य एक मानवीय प्रवृत्ति है जिसकी सम्पूर्ण जीवन में गति है। इसलिए जीवन में विकास के साथ ही साथ हमारे हास्य के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ है। आज हममें किसी का अपकर्ष देखकर हास्य प्रकट नहीं होता किन्तु दो शताब्दी पूर्व मानव किसी का अपकर्ष देखकर हंसे बिना नहीं रहता था। आज प्रत्येक असंगति हमारे हास्य का कारण नहीं है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही साथ हमारे हास्य के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ है। हास्य विकसित होकर मनोविज्ञान का कारण बनता गया। हास्य और रोदन मनुष्य की जन्मजात अनुभूतियाँ हैं। इनका परिचालन किसी शास्त्र विशेष से नहीं होता भले ही शास्त्र उसके रूपों एवं अपकर्षों की व्याख्या करते हैं। हास्य का विकास मानसिक क्रिया प्रतिक्रिया के नाना रूपों से घटित होता है।

आज हास्य मनोविज्ञान का एक ऐसा अंग बन गया है जिसमें अभिज्ञान, अनुभूति, क्रियाशीलता तीनों का समन्वय हो गया है तथा हास्य अपनी भावगत सम्पन्नता में अधिक प्रसरणशील हो गया है जिस प्रकार जल में कंकड़ी पड़ जाने से वह नाना रूपों में तरंगित हो उठता है उसी प्रकार व्यंग्य, विनोद या अनुरंजन की हल्की सी सूक्ति के कारण हास्य की लहरें चतुर्दिक फैल जाती हैं। नाटक में संवाद की विशेषता उसके अनुरंजनकारी गुणों द्वारा कही जाती है। इस अनुरंजन से जिस विनोद की सृष्टि होती है उसमें हास्य अप्रकट रूप में लीन रहता है। इसलिए हास्य मानसिक उभार की एक व्यापक प्रक्रिया है। हास्य परिस्थितियों में सहजरूप से बिखर पड़ता है उसमें पाण्डित्यप्रदर्शन की आवश्यकता नहीं पड़ती। सभी सिद्धान्तों का विवेचन करने से निष्कर्ष निकलता है कि हास्योद्रेक के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं[१]—

(१) शारीरिक गुण (२) मानसिक गुण
(३) घटना कार्यकलाप (४) रहन-सहन (५) शब्दावली।

शब्दावली, वेषभूषा तथा क्रिया व्यापार के अन्तर्गत इन सभी गुणों का समाहार हो जाता है। इस प्रकार भारतीय मत सिद्धान्ततः अपने में पूर्ण हैं।

---

१. डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य में हास्यरस, प्र०सं०, पृ० ५७

वक्रोक्ति

साहित्य में इसका उपयोग दो दो अर्थों में किया जाता है, (१) अलंकार के रूप में (२) उक्ति की वक्रता या असाधारणता के रूप में । वक्रोक्ति अलंकार वहाँ होता है जहाँ पर श्रोता श्लेष या काकु (कण्ठध्वनि) के आधार पर वक्ता के अर्थ से कुछ भिन्न अर्थ लगाकर उसका उत्तर चमत्कारिक ढंग से देता है । यथा —

> 'अयि गौरवशालिनि ! मानिनि आज,
> सुधास्मिति क्यों बरसाती नहीं ?
> निज कामिनि को प्रिय ! गो, अवला,
> अलिनी भी कभी कहि जाती नहीं ?'[१]

उपर्युक्त उदाहरण में शिव जी ने पार्वती जी को 'गौरवशालिनि' कहा किन्तु उन्होंने पदभंग करके गो, अवला (शक्तिहीना) अलिनी (भ्रमरी) अर्थ लगाकर शिवजी को उत्तर देते हुए कहा कि अपनी प्रिया को ये शब्द नहीं कहने चाहिए ।

वक्रोक्ति का व्यापक अर्थ अलंकार से भिन्न है । इसके जन्मदाता आचार्य कुन्तक हैं । वक्रोक्ति के इस व्यापक अर्थ के बिना उसके अलंकारत्व की भी रक्षा नहीं की जा सकती है । भामह ने कहा है —'कोऽलंकारो मया विना' ।[२] कुन्तक ने वक्रोक्ति को कवि-कौशल द्वारा प्रयुक्त विचित्रता कहा है — 'वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्य भङ्गीभणितिरुच्यते ।'[३] कुन्तक ने कुछ असाधारण सी बात कही है । वे वायु को वायु न कहकर स्वर्ग का उच्छ्वास कहना श्रेष्ठ समझते हैं । कथा प्रसंग आदि को बदल कर नवीन कर देने को भी वक्रता कहते हैं । भवभूति ने उत्तररामचरित की कथा रामायण में कुछ भिन्न लिखी है । नाट्य संदर्भ में इसे प्रकरण-वक्रता कहते हैं । अलंकारादि वाच्य वक्रता के अन्तर्गत आते हैं । ध्वनि को भी उपचार वक्रता के अन्तर्गत लाया जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वाल्मीकिरामायण से वक्रोक्ति[४] का जो

---

१. पोद्दार अलंकार मंजरी—संशोधित संस्करण,पृ० ६७-६८

२. भामह-काव्यालंकार, अ०२,श्लोक ८५

३. कुन्तक- वक्रोक्ति जीवित १।११

४. 'न स संकुचित: पन्था येन वाली हतो गत: ।
समये तिष्ठ सुग्रीव ! मा वालिपथमन्वगा: ।।' वाल्मीकिरामायण(किष्कि०का०३०।८१)

अर्थात् हे सुग्रीव ! वह रास्ता संकरा नहीं है जिससे बालि मारा गया था (तुम भी मृत्यु पथ पर जा सकते हो) इसलिए अपने वचन पर दृढ़ रहो । बालि के अनुगामी मत बनो ।

उदाहरण में वक्रोक्ति द्वारा चमत्कार आ गया है ।

उदाहरण दिया है वह उक्ति का वैचित्र्य है। कुन्तक ने काव्यकथा को मुख्य मानकर रस को मुख्य माना है।

नाट्य सन्दर्भ में वक्रोक्ति का प्रमुख स्थान है। क्योंकि वक्रोक्ति का मुख्य ध्येय होता है चमत्कारिक कथनों से सहृदयों को आह्लादित करना है विदूषक आदि पात्र अपने वक्र कथनों से सामाजिकों को रसमग्न बनाते हैं। इसीलिए नाट्य साहित्य में इस का प्रमुख स्थान माना जाता है।

कुन्तक ने काव्य की निम्न परिभाषा दी है –

"शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥"[1]

इसके अनुसार काव्य में शब्द और अर्थ दोनों का महत्त्व है। शब्दार्थ दोनों में कवि का वक्रता सम्बन्धी कौशल अपेक्षित है। शब्द और अर्थ दोनों का एक ही मनोहारिणी एवं सुसम्बद्ध स्थिति का नाम ही काव्य है। कुन्तक के अनुसार रस, रीति, गुण और अलंकार सभी वक्रोक्ति के अन्तर्गत आ जाते हैं।

भारतीय वाङ्मय में रस

भारतीय वाङ्मय में रसों की कल्पना बहुत पुरानी है, आचार्य भरतमुनि ने सर्वप्रथम अपने नाट्यशास्त्र में रस की समस्या उठाई है। भरत प्रथम नाट्यशास्त्री हैं इसीलिए उन्होंने रसों की कल्पना नाट्य के ही सन्दर्भ में की है। रस का अर्थ आनन्द है। यही आनन्द साहित्य का प्राण माना जाता है। भरत के अनुसार बिना रस के किसी भी अर्थ की प्रतीति नहीं होती है। "नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।"[2] अग्नि पुराणकार व्यास जी ने भी कहा है कि रस काव्य का जीवन है[3]।

---

१. कुन्तक – वक्रोक्तिजीवित १।८

२. भरतमुनि–नाट्यशास्त्र, अ० ६।३२

३. "वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।
पृथक्प्रयत्नं, निर्वर्त्यं वाग्भिरुपणि रसाम्बु:॥

–वेदव्यास– अग्निपुराण अध्या० ३३७, श्लोक ३३

रसवादियों में तो रस की प्रतिष्ठा बनी ही रही अलंकार, रीति एवं वक्रोक्ति सम्प्र-दायों में भी रस की महत्ता स्वीकार की जाने लगी । यद्यपि भामह रस विरोधी आचार्य थे किन्तु उन्होंने भी रस की अनिवार्यता स्वीकार की है । दण्डी, रुद्रट, वामन आदि आचार्यों ने भी रस की महत्ता स्वीकार की है । आनन्दवर्धनाचार्य ने रस को ध्वनि का प्रधान अंग माना है । आनन्दवर्धन ने क्रौंचवध की करुणा को रस माना और आदि कवि वाल्मीकि का प्रमाण प्रस्तुत किया ।[1] उनके अनुसार काव्य की आत्मा रस है । क्रौंच के वध से उत्पन्न कवि का शोक ही श्लोकत्व को प्राप्त हो गया ।

'रस' का अर्थ लोकोत्तर आनन्द है । सहृदयों के हृदय से अनुभव का विषय 'रस' एक अखण्ड, स्वयं प्रकाशित अथवा आनन्द स्वरूप सम्वेदन है । यह ऐसा अनुभव है जिसके साथ किसी ज्ञेय वस्तु का स्पर्श नहीं हो पाता । इसका अनुभव आत्म साक्षा-त्कार मात्र है । इस अनुभव का सार एक अलौकिक चमत्कार है और इस अनुभव और आस्वाद में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय का कोई भेद उपस्थित नहीं होता । इसी आत्मस्वरूप और ब्रह्मानन्द के अनुभव के कारण रस को 'काव्यानन्द' और ब्रह्मानन्दसहोदर कहा जाता है ।[2] इस काव्यानन्द (नाट्यानन्द) का अनुभव सहृदय सामाजिक पुरुष ही कर सकते हैं । इसी को रसानुभव कहते हैं । यह रसास्वादन पूर्व के संचित (काव्यार्थ परिशीलन) पुण्य से युक्त प्रमाता योगियों की भाँति विरले ही लोग कर सकते हैं ।[3]

---

1. 'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।
   क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ।।

   —आनन्दवर्धन- ध्वन्यालोक १।५

2. 'सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ।
   वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदर ।।
   लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः ।
   स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ।।

   —साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद २-३, पृ० १०५, संस्क० १९५७ ई०

   — अनु० सत्यव्रत सिंह

3. पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद्रससन्ततिम् ।'

   —वही, पृ० १०७

इसीलिए रस को 'चमत्कार' और 'सकलविघ्नविनिर्मुक्त संवेदन' कहा जाता है।

रस काव्य और नाट्य का प्रमुख तत्त्व है। यदि काव्य को पढ़कर अथवा अभिनय को देखकर आनन्द की प्राप्ति न हो तो 'सद्य: परिनिर्वृत्ये' की उक्ति असिद्ध हो जाती है। काव्य को पढ़कर या नाटक को देखकर अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। यह काव्यानन्द कदापि ब्रह्मानन्द से न्यून नहीं है।[१] इसीलिए यह आनन्द भी ब्रह्मानन्द का सहोदर माना जाता है।

> विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभि: ।
> आनीयमान: स्वाद्यत्वं स्थायीभावो रसस्मृत: ॥[२]

अर्थात् विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव और व्यभिचारी भाव के द्वारा जो स्थायी भाव आस्वाद के योग्य बना दिया जाता है उसे रस कहते हैं। भरतमुनि ने भी 'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:'[३] कह कर रस की निष्पत्ति माना है। जब इन भावों का अभिनय में प्रदर्शन किया जाता है तब उस समय दर्शकों के हृदय में स्फुरित होने वाला रति इत्यादि स्थायी भाव स्वादगोचर होकर आनन्द मय ज्ञान स्वरूप हो जाता है तब उसे रस कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ज्ञान और आनन्दमय होने के कारण सामाजिक (दर्शक) में ही रस का आश्रय रहता है। ज्ञान और आनन्द चेतन धर्म है। अत: वे काव्यादि अचेतन में नहीं रह सकते किन्तु काव्य उसी प्रकार के आनन्दयुक्त चेतना को उन्मीलित करता है। 'आयुर्घृतम्' की दृष्टि से आनन्दमय चेतना के उन्मीलन में हेतु होने के कारण काव्य को भी रसमय माना जाता है।

---

१. 'नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ॥'
—काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास, १, पृ० १, सं० हरिहर शास्त्री,
१९२९ ई० संस्करण

२. धनंजय- दशरूपक प्रकाश४। श्लोक १

३. भरत—नाट्यशास्त्र- (अनु० रघुवंश) अध्याय ६।३२,पृ० २७३, प्र०सं०

रस के प्रथम आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं । लेकिन उन्होंने नाट्यशास्त्र में कहा है कि रस का आविष्कार द्रुहिण नामक आचार्य से हुआ है । "एवमेते रसा प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना" ।।[1] अभिनय को देखकर दर्शक में जो तन्मयता आती है, उसी के आधार पर रस की परिकल्पना की गई है ।

अग्निपुराण के अनुसार चार रस प्रमुख माने गये हैं । शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स ।[2] इन चार रसों के आधार पर ही शेष रसों की उत्पत्ति मानी गई है । शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स रस से भयानक रस उत्पन्न हुआ ।[3] पद्मभुव ने ८ नाट्य रस माने हैं ।[4] भरतमुनि ने भी पहले ही नाट्य-शास्त्र में चार रसों को प्राथमिकता दी थी । उनके अनुसार शृंगार से हास्य की उत्पत्ति मानी जाती है ।[5] भरतमुनि के अनुसार शृंगार रस की अनुकृति ही हास्य है[6]।

---

१. भरत—नाट्यशास्त्र(अनु० रघुवंश), अध्याय ६।३२, पृ० २७३ पृ०सं०

२. "स्वभावाच्चतुरो रसा ।" अग्निपुराण ३३६।६ पृष्ठ ४२३ सं० १८५४ संस्क०

३. शृंगाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणो रस: ।
   वीराच्चाद्भुत निष्पत्ति: स्याद् वीभत्साद् भयानक: ।।
   —अग्निपुराण ३३६।७-८, पृ० ४२३, सम्वत् १८५४, संस्क०

४. तस्मान्नाट्यरसा अष्टाविति पद्मभुवोमतम् ।
   उत्पत्तिस्तु रसानां या पुरावाद्भिर्निरूपिता ।।
   नारदस्योच्यते सैषा प्रकारान्तर कल्पिता ।
   —भावप्रकाश-शारदातनय, पृ० ४७, १६३० संस्क०

५. तेषामुत्पत्तिहेतवश्चत्वारो रसा: ।
   तद्यथा-शृंगारो रौद्रो वीरो वीभत्स इति ।
   अत्र-शृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रस: ।
   वीरा चैवाद्भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानक: ।।"
   —नाट्यशास्त्र-भरतमुनि (अनु० रघुवंश) ६।३६, पृ०२८, पृ०सं०

६. "शृंगारानुकृतिर्या तु स हास्यस्तु प्रकीर्तित: ।
   रौद्रस्यैव च यत्कर्म स ज्ञेय: करुणो रस: ।।
   —नाट्यशास्त्र ६।४२, पृ०

अनुकृति का अर्थ है अनुकरण । इसी अनुकरण की भावना से नाट्य का उद्भव हुआ है । यह हास्यरस पहले शृंगार का भेद था लेकिन धीरे धीरे व्यापक होकर रस की कोटि में आ गया । दशरूपककार धनंजय ने शान्त को स्थापित करके रसविकास को जन्म दिया । विश्वनाथ ने वात्सल्य को भी रस की संज्ञा दी और यह संख्या १० हो गई । भक्तिकालीन साहित्य की समृद्धि से भक्ति को भी रस माना जाने लगा है । वर्तमान समय में प्रेमरस की भी कल्पना की जाने लगी है ।

हास्य-रस का उद्रेक —

रसों में शृंगार रस सर्वाधिक सुखात्मक माना जाता है । आचार्य भरत ने हास्य की उत्पत्ति शृंगार से मानी है । यद्यपि शृंगार रस से हास्य की उत्पत्ति बताई गई है लेकिन शृंगार का वर्ण श्याम है जबकि हास्य का श्वेत वर्ण माना गया है ।[1] हास्य के देवता भी शृंगार के विष्णु से भिन्न शिवगण हैं ।[2]

हास्य के सम्बन्ध में धनंजय का मत है कि अपने तथा दूसरे की विचित्र वेष-भूषा, चेष्टा, शब्दावली तथा कार्यव्यापार से ही हास्य की सृष्टि होती है ।[3] विश्वनाथ ने भी साहित्य दर्पण में स्वीकार किया है कि वाणी, वेष्टा तथा आकार के विकृति से हास्य की सृष्टि होती है ।[4] धनंजय तथा विश्वनाथ के लक्षणों

---

१. "श्यामो भवति शृंगारः सितो हास्यः [illegible] प्रकीर्तितः । नाट्यशास्त्र, पृ० ३३० ६।४०

2. शृंगारो विष्णुदेवत्यो हास्यः प्रमथदैवतः ।

२. रौद्रो रुद्राधिदैवत्यः करुणो यमदैवतः ।। वही, ६।४४

३. "विकृताकृति वाग्वेषैरात्मनो च परस्य वा ।
हास्यः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिः प्रकृतिः स्मृतः ।।

—दशरूपक-धनंजय प्रकाश ४, श्लोक ७५, पृ० २७७, १९५५संस्क०

४. "विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद् भवेत् ।
हास्यो हास्य स्थायिभावः श्वेतः प्रमथ दैवतः ।।

विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद३, श्लोक २१४

में केवल यही अन्तर है कि धर्मजय के अनुसार वेषभूषा, चेष्टा, शब्दावली तथा कार्यकलाप अपना तथा दूसरे का भी हो सकता है। आलम्बन की दृष्टि से विकृति हास्य का मूल विकार है।[१] यह विकृति चाहे किसी वस्तु की हो अथवा किसी मनुष्य में हो, उसकी विचित्रता चित्त में हर्ष उत्पन्न कर हँसी द्वारा प्रकट हो जाती है। नाट्यशास्त्र में कई प्रकार की विकृतियों का उल्लेख मिलता है।[२] विकृति जहाँ पर अनिष्ट की सीमा तक नहीं पहुँचती वहीं हास्य उत्पन्न हो जाता है। डा० गुलाब राय के अनुसार" जब विकृति भयानक स्थिति में रहती है और अनिष्ट की सीमा तक नहीं पहुँचती तब आश्रय को एक प्रकार का सुख होता है और वह हास्य में परिणत हो जाता है।"[३]

हास्य रस का स्थायी भाव

हमारे चित्त में अनेक भाव जन्मजात रहते हैं। इनमें से जो भाव विभावादि से सम्बद्ध होकर रससंचार करते हैं उन्हें स्थायी भाव की संज्ञा दी जाती है। आचार्य भरत ने स्थायी भाव की निम्नपरिभाषा दी है -

"यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह।।"[४]

अर्थात् जैसे मनुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु, वैसे ही सभी भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ है।

---

१. "रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्।
वागादि वैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते।।

f — विश्वनाथ-साहित्य दर्पण, (सत्यव्रत सिंह) ३।१७४,पृ० २२७, सं०१९५७

२. "विपरीतालंकारैर्विकृताचाराभिधानवेषैश्च।
विकृतैरर्थविशेषैर्हसतीति रसः स्मृतो हास्यः।।
विकृताचारैर्वाक्यैरङ्गविकारैश्च विकृतवेषैश्च।
हासयति जनं यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो रसो हास्यः।।

—भरतमुनि-नाट्यशास्त्र-(अनु० रघुवंश),६।४९-५०,पृ० ३५८, प्रथ०संस्क०

३. गुलाबराय- सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० १४२ प्रथम संस्करण

४. भरत- नाट्यशास्त्र- (अनु० रघुवंश), ७।८, पृ० ४१७, प्र०सं०

हास्यरस का स्थायी भाव हास है । वाणी, वेषभूषा आदि की विपरीततासे चित्त में जो विकास होता है वही "हास" कहलाता है । शब्द रसायन में देव ने स्थायी भावों के वर्णन में एक दोहा कहा है जिसमें हँसी को हास्य रस का स्थायी भाव माना है ।

हास्य के विभाव

विभाव का अर्थ कारणों से है । रसकाव्यपरिपोषक तत्वों में जो ज्ञात हुआ, भाव को पुष्ट करता है उसे विभाव कहते हैं । यह आलम्बन और उद्दीपन दो प्रकार का होता है —

ज्ञाय मानतया तत्र विभावो भावपोषकृत् ।
आलम्बनोद्दीपनत्वं प्रभेदेन च स द्विधा ।।[१]

भरत मुनि ने विभाव, कारण, निमित्त और हेतु को परस्पर पर्याय माना है —

"विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः ।"[२]

जिसके द्वारा वाचिक आदि अभिनय द्वारा स्थायी तथा संचारी भाव विभावित (ज्ञात) होते हैं उसे विभाव कहा जाता है । भरतमुनि ने विभाव का अर्थ विशेषप्रकार का ज्ञान माना है ।[३] इस प्रकार विभाव कारण, निमित्त, अथवा हेतु ही है । विभाव द्वारा ही रसप्रतीति सम्भव होती है । वास्तव में विभाव ज्ञापन करने वाले हेतु ही होते हैं ।

हास्य की उत्पत्ति के कारण किसी वस्तु में दुष्ट विकृति, व्यंग्य, परचेष्टा, अनुकरण, प्रलाप आदि हास्य के विभाव हैं । जिसकी विकृति, आकृति, वाणी, चेष्टा आदि को देखकर लोग हँसे वह आलम्बन और उसके लिए की गई चेष्टा को उद्दीपन विभाव कहते हैं । विश्वनाथ के अनुसार —

---

१. धनिक—दशरूपक ४।२
२. भरत - नाट्यशास्त्र ७।३ (अनु० रघुवंश) प्र०सं०, पृ० सं० ४०६
३. " अथ विभाव इति कस्मात् । उच्यते विभावो विज्ञानार्थः ।" वही

"विकृताकार वाग्वेषं यमालोक्य हसेज्जनः ।
तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥"[1]

<u>हास्य के अनुभाव</u>

जो भाव स्थायीभाव का अनुभव कराने में समर्थ होता है उसे स्थायी भाव कहते हैं । वास्तव में अनुभाव आंगिक, वाचिक इत्यादि शारीरिक चेष्टायें हैं । ये भाव काव्य में शब्दों द्वारा तथा नाट्य में शारीरिक चेष्टाओं द्वारा व्यक्त होते हैं । अनुभावों द्वारा आंगिक, वाचिक चेष्टाओं का अनुभावन किया जाता है अतः ये अनुभाव कहे जाते हैं ।

"अनुभाव्यतेऽनेन वागङ्गसत्त्वकृतोऽभिनय इति ।"[2]

अभिनय के माध्यम से विभाव के प्रति आश्रय में जो भाव व्यक्त किये जाते हैं उनका प्रत्यक्षीकरण इन्हीं अनुभावों द्वारा किया जाता है ।" भरतमुनि की दृष्टि इन्हीं चेष्टाओं पर आधृत व्यापार को अनुभाव मानने में रही है ।

" वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनु भाव्यते ।
शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः ॥"[3]

अमरकोषकार अमरसिंह ने मन के विकार के प्रकाशक इत्यादिसूचक रोमांच आदि को अनुभाव की संज्ञा दी है –

" अनुभावो भावबोधकः । अनुभाव्यन्ति इत्यनुभावा ।"[4]

आचार्य विश्वनाथ ने हास्य रस के अनुभाव नेत्रों का बन्द होना तथा

---

१. विश्वनाथ-साहित्यदर्पण (अनु० सत्यव्रत सिंह) ३।२१४, पृ० २५१, १९५७ ई०
२. भरत- नाट्यशास्त्र (अनु० रघुवंश) ७।४, पृ० ४१०, प्र० संस्क०
३. वही, ७।५, पृ० ४११
४. अमर सिंह, अमरकोष (हरगोविन्द शास्त्री), काण्ड १, वर्ग ७, श्लोक २१,
पृ० १०२, प्रथम संस्क०

शरीर का विकसित होना माना है ।

" अनुभावोऽपि संकोचवदनस्मेरतादयः ।।"[1]

उदाहरण के लिए किसी की आँख बहुत छोटी है अथवा शरीर बहुत मोटा है तो इसे अनुभाव कहेंगे ।

हास्य रस के संचारी भाव

संस्कृत के आचार्यों ने संचारी भावों की संख्या ३३ मानी है । महाकवि देव ने "छल" नामक ३४ वाँ संचारी भाव बताया है लेकिन इसका कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि इन्हीं के अन्तर्गत इसका भी सन्निधान हो जाता है । जो भाव हमारे मन में अनियमित रूप से चलते हैं उन्हें व्यभिचारी भाव कहा जाता है । जिस प्रकार सागर में लहरें आविर्भूत और तिरोभूत होती रहती हैं उसी प्रकार ये व्यभिचारी भाव स्थायी भावों में अन्तर्निहित रहते हैं ।

"विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिणः ।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदाः ।।"[2]

अर्थात् वे भाव व्यभिचारी कहे जाते हैं जो वासना रूप में सामाजिक हृदय में सदा विराजमान रहते हैं और रत्यादि स्थायी भावों को रसास्वाद में परिणत किया करते हैं ।

साहित्यदर्पण में निद्रा, आलस्य और अवहित्था को हास्य का संचारी भाव बताया गया है ।

"निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः ।।"[3]

---

१. विश्वनाथ- साहित्यदर्पण-(सत्यव्रत सिंह), परि० ३।२१६, पृ० २५२, संस्क० १९५७ ई०
२. वही, ३।१४०, पृ० २०३, संस्क० १९५७
३. वही, , ३।२१६, पृ० २५२, संस्क० १९५७

आलस्य का अभिप्राय जड़ता से है जो परिश्रम अथवा गर्भधारण से सम्भव है। इसमें जँभाई आती है और एक स्थान पर बैठा रहना पड़ता है।[1] आलस्य का अर्थ कर्मों का उत्साहाभाव है। चित्त की निश्चेष्टता से निवृत्ति को निद्रा कहते हैं। इसके कारण मद्यपान, मन:खेद एवं परिश्रम आदि हैं।[2] इसमें उच्छ्वास ,जँभाई आदि होता है। अवहित्था का अर्थ है प्रसन्नमुद्रा का छिपाना। इसके कारण भय, गौरव, लज्जादि हैं।[3] इसमें इधर उधर की बात बनाना, अन्यत्र देखना, तथा एक कार्य छोड़कर दूसरे में लग जाना पड़ता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलस्य, निद्रा आदि को त्याज्य माना है। प्रश्न यह है कि हास्य के आलम्बन में निद्रा, आलस्य आदि का होना ठीक है लेकिन आश्रय में यह कदापि सम्भव नहीं है। वास्तव में यह शंका निर्मूल है। पण्डित जी की नीरस कथा सुनते श्रोता निद्रा का शिकार हो जाते हैं। पंडित जी आलम्बन रूप में ही रहते हैं। श्रोता आश्रय रूप में ही रहते हैं।

व्यवहार तथा प्रभाव की दृष्टि से संचारियों का निम्नवर्गीकरण किया जा सकता है।

१. स्नेहक: —जहाँ करुणा संचारी होकर आलम्बन के प्रति हास्य को सरल तथा स्वीकार्य बनाती है।

२. उपहासक:—जहाँ संचारी आकर हास्य आलम्बन को तिरस्कार्य भी बना देता है।

३. विभावनिर्मिति: —जहाँ संचारी आश्रय को भी स्वतन्त्र आलम्बन बना देता है। लाड़-प्यार से बिगड़ा लड़का बाप की दाढ़ी-मूँछ उखाड़ता है। बाप का ऐसे बेटे पर प्यार आना उसे (बाप को) आश्रय से आलम्बन बना देता है।

४. परिहासक: —बरम्बार संगीतकार के गाने पर धीरे-धीरे लोगों का सो जाना। अरुचि से उत्पन्न यह निद्रा संगीत के माधुर्य पर व्यंग्य है।

(५) रेचक: —लक्ष्मण की उग्रता तथा अमर्ष से परशुराम हास्यास्पद भी

---

१. "आलस्यं श्रमगर्भाद्यैर्जाड्यं जृम्भासितादिकृत् ॥" —साहित्य दर्पण, पृ० २१४

२. चेतः सम्मीलनं निद्रा श्रमक्लममदादिजा।
जृम्भाक्षिमीलनोच्छ्वासगात्रभङ्गादिकारणम् ॥ वही, पृ० २१५

३. "भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था।
व्यापारान्तरसक्त्यन्यथावभाषणविलोकनादिकरी ॥" वही, पृ० २१६

की जाती हैं, उनके प्रति प्रतिरोध की भावना का भी रेचन होता चलता है ।

६. ऊहामूलक — जैसे तिलक, पहेलिका, विमुद्रता आदि ।[१]

<u>हास्य रस का वर्गीकरण</u>

भारतीय वाङ्मय में प्राचीन काल से ही दार्शनिक विचारधाराओं का मिश्रण मिलता है । रस का शास्त्रीय विवेचन भी इन्हीं दार्शनिकों द्वारा हुआ है । रस सम्प्रदाय के विवेचन में शृंगार, करुणा आदि रसों का जितना अधिक विवेचन मिलता है, हास्य का उतना विस्तृत वर्णन नहीं मिल पाता । इसी प्रकार हास्य रस का वर्गीकरण भी विभिन्न दृष्टिकोणों से हुआ है । हास्य का विवेचन करना प्राय: कठिन कार्य है । मनोभाव ही हास्य के कारण हैं । प्राय: एक मूर्ख तथा सभ्य व्यक्ति के मनोभाव में अन्तर है इसीलिए हास्य के भी दो भेद निश्चित रूप से हो जाते हैं । जैसे मुस्कान और उपहास में व्यापक भेद होता है अत: हास्यरस का वर्गीकरण स्वत: सिद्ध हो जाता है ।

हास्य-रस का स्थायीभाव हास है । इसी हास के आधार पर हास्य रस के भेद किये गये हैं । ये सभी भेद आश्रय पर आधारित हैं । जब व्यक्ति स्वयं हंसता है तब उसका हास्य आत्मस्थ और जब वह स्वयं दूसरे व्यक्ति को हंसाता है तब उसका हास्य परस्थ कहलाता है । भरत ने सर्वप्रथम अपने नाट्यशास्त्र में इस भेद को बतलाया है । पण्डितराज जगन्नाथ ने भरत के इन्हीं भेदों को स्वीकार कर उसकी व्याख्या निम्नप्रकार से की है ।

"आत्मस्थ: परसंस्थश्चेत्यस्य भेदद्वयं मतं ।
आत्मस्थो द्रष्टुरुत्पन्नो विभावेक्षणा मात्रत: ।।
हसन्तमपरं दृष्ट्वा विभावश्चोपजायते ।
योऽसौ हास्यरसस्तज्ज्ञै: परस्थ: परिकीर्तित: ।।

---

१. जगदीश पाण्डेय—हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य—पृ० ६४, प्रथमसंस्क०

उत्तमानां मध्यमानां नीचानामप्यसौ भवेत् ।
त्र्यवस्थः कथितस्तस्य षड्भेदा सन्तिचापरा ॥' [1]

पण्डितराज का 'रसगंगाधर' मौलिक ग्रन्थ है । उनके अनुसार आत्मस्थ उसे कहते हैं जो व्यक्ति को हास्यवस्तु देखने से उत्पन्न हो जाय । यदि हम कटी नाक वाले व्यक्ति को देखते हैं तो हमारे मन में हास्य का उद्रेक स्वतः हो जाता है । यदि हम किसी हास्य वस्तु पर हंसते हुए अन्य व्यक्ति को भी हंसा देते हैं तो वह हास्य 'परस्थ' कहलाता है । यह उत्तम मध्यम, निम्न तीनों प्रकार के व्यक्तियों में उत्पन्न होता है । इन्हीं तीन अवस्थाओं में आत्मस्थ परस्थ के अनुसार छः भेद हो जाते हैं ।

साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने भी हास्य के इन्हीं छः भेदों को स्वीकार किया है -ये भेद (१) स्मित (२) हसित (३) विहसित (४) उपहसित (५) अपहसित (६) अतिहसित हैं । इनमें से स्मित , हसित श्रेष्ठ लोगों का हास्य है । विहसित और उपहसित मध्यम और अपहसित तथा अतिहसित निम्न कोटि का माना गया है ।[2]
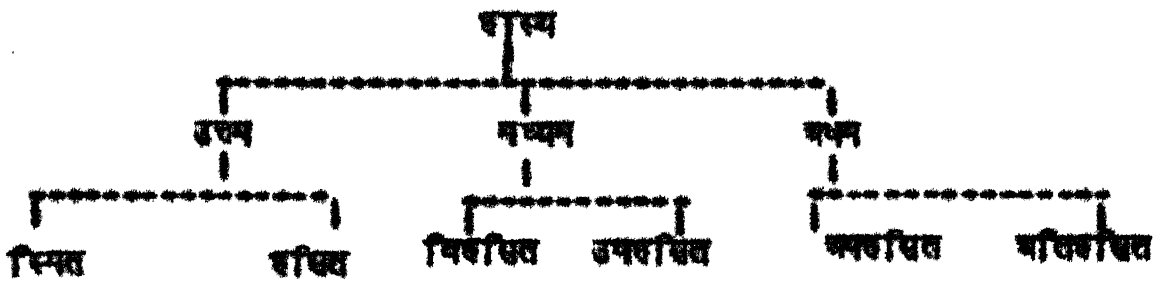
१. स्मित:- जहाँ कपोल कुछ विकसित हों, कटाक्ष उत्कट न हो नयनों में किंचित् विकास हो और ओष्ठ में स्फुरण हो, दन्त-पंक्तियाँ न दिखाई पड़ें ऐसे हास्य को

---

१. पण्डितराज - रसगंगाधर (टी० नागेश भट्ट) प्रकाशन पृष्ठ, १६५ पृ०सं०

२. 'ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च ।
नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः ॥
साहित्यदर्पण ३।२१७
- विश्वनाथ-रसगंगाधर, (मधुसूदन शास्त्री), पृ० २५२, पृ०सं० १९५६

'हँसने लगे तब हरि अहा, पूर्णेन्दु सा मुख खिल गया,
समता उसी में भीम अर्जुन, सात्यकी का मिल गया ।
आमोद और विनोद के सब, सरल फाँसे फेलते,
भगवान भक्तों से न जानें, खेल क्या-क्या खेलते ।।'[1]

४. उपहसित- जिसमें कन्धे, सिर आदि में कम्पन उत्पन्न हो जाता है । नाक टेढ़ी हो जाती है, दृष्टि भी टेढ़ी हो जाती है ऐसे हास्य को पंडितराज[2] ने 'उपहसित' कहा है । बिहारी ने इसका निम्न उदाहरण दिया है ।

'ज्यों ज्यों पट झटकति हँसति, हठति, नचावति नैन ।
त्यों त्यों परम उदार हूँ फगुआ देत बनैन ।।'[3]

५. अपहसित - जो हास्य अकारण उत्पन्न हो जाता है जिससे आँखों में आँसू आ जाते हैं, कन्धे के बाल हिलने लगते हैं उसे अपहसित[4] कहा जाता है । पद्माकर ने जगद्विनोद में इसका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है -

' चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराय सुनाय सुहोरी,
बेंदी बिसाखा रची 'पद्माकर' अंजन आँजि समाजि की रोरी ।
लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह की कंचुकि केसर बोरी,
हेरि हरे मुसकाय रही अँचरा मुख दै वृषभानु किशोरी ।'[5]

६. अतिहसित- जिस हास्य में कर्णकटु ध्वनि हो, आँखों में आँसू आ जाय । पार्श्व-भाग में दर्द प्रारम्भ हो जाय उसे अति हसित[6] कहा जाता है। प्राय: अतिहसिता की

---

१. जयद्रथ-वध-मैथिलीशरण गुप्त, सर्ग ७, छन्द १७, पृ० ८८, दशम सं०

२. 'निकुंचितांसशीर्षश्च जिह्मदृष्टिविलोकनः ।
उत्फुल्लनासिको हासो नाम्नोपहसितं मतम् ।।
—पंडितराज-रसगंगाधर (मधुसूदन शास्त्री), पृ० १९७ प्र०सं०

३. बिहारी सतसई-दोहा २११, पृ० १०४, [illegible] संस्क० १९७०

४. 'अस्थानजः साश्रुदृष्टिराकम्पस्कन्धमूर्धजः ।
शार्ङ्गदेवेन गदितो हासोऽपहसिताह्वयः ।। —पंडितराज-रसगंगाधर, (म०सू०) पृ०१९७ प्र०सं०

५. जगद्विनोद-पद्माकर ग्रन्थावली (सं० विश्वनाथ मिश्र) प्र०सं०, पृ०२०२ ।

६. 'स्थूलकर्णकटुध्वानो बाष्पपूरप्लुतेक्षणः
करोपगूढपार्श्वश्च हासोऽतिहसितं मतम् ।।'
—पंडितराज जगन्नाथ- रसगंगाधर (म०सू०शास्त्री), प्र०सं०, पृ० १९७

स्थिति कम ही होती है । अतिहसित का प्रयोग नाटक में पात्रों की विशेष स्थिति में सम्भव होती है । डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी ने अतिहसित का निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

"सुनकर निन्दायुत के वचन विलक्षण ऐसे,
कर अट्टहास जब यदुनाथ हो बैठे ।
बोला भी उद्धत असुर राज उत्पाती ।
उन्मत्त सुरापी सर्वलोक संघाती ।।[1]

चतुर्वेदी ने उक्त उदाहरण को मैथिलीशरण गुप्त के काव्यग्रन्थ "प्रह्लाद" से उद्धृत किया है किन्तु यह कृति प्रयास करने पर भी मुझे देखने को न मिली ।

रामचरन तर्कवागीश ने लिखा है — 'हास्य रस स्थायिभावस्य हासस्य भेदानाह' अर्थात् उन्होंने उपर्युक्त छः भेदों को हास्य रस का स्थायी भाव कहा है जो सर्वथा अनुचित है क्योंकि सभी स्थायीभाव वासनारूप में अन्तःकरण (आत्मा) में प्रतिष्ठित रहते हैं, शरीर में नहीं । जब हम हंसते हैं तो हास्यभाव शरीर से प्रकट होता है, आत्मा से नहीं, अतः ये छः भेद हास्य के ही हैं, स्थायीभाव के नहीं ।[2]

डॉ० रामकुमार वर्मा जी भी हास्य के छही वर्गीकरण को स्वीकार करते हैं । उन्होंने आत्मस्थ और परस्थ दोनों भेदों को मिलाते हुए लिखा है —" वस्तुतः अपने प्रभाव की दृष्टि से हास्य तीन प्रकार का माना गया, उत्तम, मध्यम और अधम इन तीनों प्रकारों में प्रत्येक के दो भेद हैं । उत्तम के भेद हैं —स्मित और हसित मध्यम के भेद हैं —विहसित और उपहसित तथा अधम के भेद हैं —अपहसित और अतिहसित । ये प्रत्येक भेद आत्मस्थ और परस्थ हो सकते हैं । इस प्रकार निम्नलिखित प्रकार से

---

१. डॉ० बरसाने लाल चतुर्वेदी- हिन्दी साहित्य में हास्यरस , प्र०सं० , पृ० ३२
२. विश्वनाथ-साहित्यदर्पण (शालिग्राम टीका) पं०सं०, पृ० १२५

हंसने की क्रिया १२ तरह से हो सकती है ।"[1]
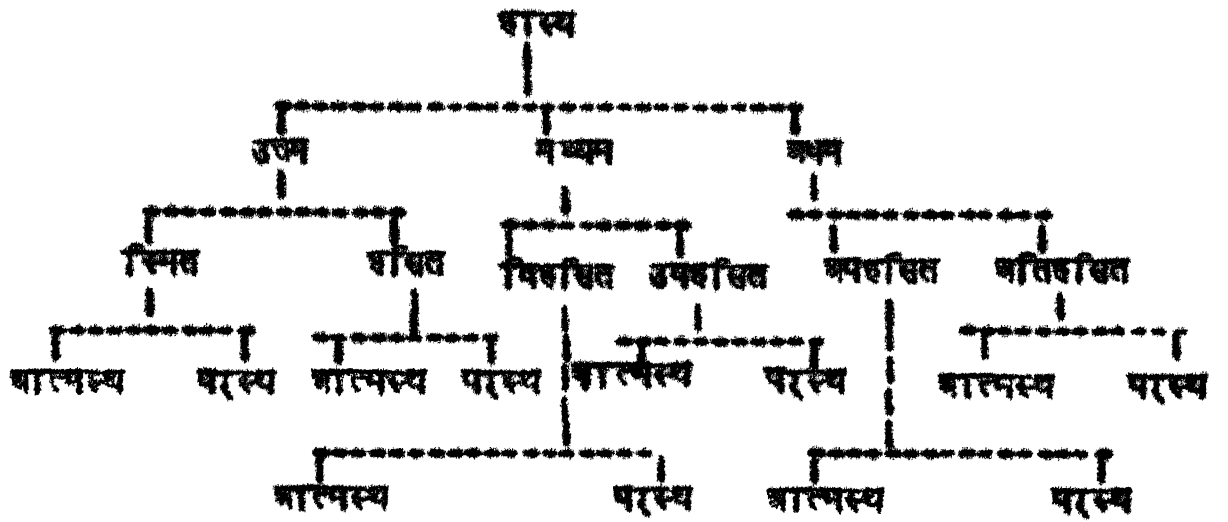
केशवदास का वर्गीकरण–

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल में कलाप्रियता के कारण शास्त्रीय कवियों ने हास्य का स्वतंत्र विवेचन किया है । चौदहवीं शताब्दी के कवि भानुदत्त ने भी भरत-मुनि की तरह आत्मनिष्ठ और परनिष्ठ हास्य के दो भेद प्रस्तुत किये हैं ।

सम्प्रदाय की दृष्टि से केशवदास अलंकारवादी आचार्य कवि थे लेकिन रसिक-प्रिया में उन्होंने रसों का भी शास्त्रीय निरूपण किया है । उन्होंने हास्य का विवेचन करते हुए उसके चार भेद बतलाये हैं जो निम्नलिखित हैं –

(१) मन्दहास (२) कलहास (३) परिहास (४) अतिहास ।

केशवदास ने इन भेदों पर स्वतंत्र चिन्तन किया है और उदाहरण सहित इनकी विवेचना भी की है ।

(१) मन्दहास– जिसमें नेत्र कुछ विकसित (खिलते) से प्रतीत होते हैं, कपोल भी कुछ खिल जाता है तथा दाँत कुछ कुछ दिखाई देने लगते हैं उसे मन्दहास कहा जाता है ।

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा – दृश्य काव्य में हास्य-तत्व, 'आलोचना', जनवरी १९५५ ई०, पृ० ६४

"बिकसहिं नयन कपोल कछु दसन-दसन के वास ।
'मन्दहास' तासों कहैं, कोविद केसवदास ।।"[१]

(२) कलहास – जिसमें दाँतों (मुख) से कुछ ध्वनि सुनाई देती है तथा जो श्रोता के मन और शरीर को मुग्ध कर लेता है केशवदास उसे कलहास कहते हैं ।

" जहँ सुनिये कलध्वनि कछु कोमल बिमल बिलास ।
केसव तन मन मोहिये बरनहु कवि 'कलहास' ।।[२]

(३) अतिहास – जिस हास में मुख से कुछ समय तक लगकर निःशंक हंसी निकलती है उसे 'अतिहास' कहा जाता है ।

" जहाँ हँसे निरसंक ह्वै प्रगटै सुखसुख बास ।
आधे-आधे बरन पर उपजि परत अतिहास ।।"[३]

(४) परिहास– जिस हास्य में पति, पत्नी का प्रेम परिजनों के भी हास का कारण बन जाय । जिसका वर्णन बुद्धिबल भी नहीं कर सकता । जिस हास्य की सीमा न हो केशवदास के अनुसार वह परिहास है ।

" जहँ परिजन सब हँसि उठैं, तजि दम्पति की कानि ।
केसव कौनहुँ बुद्धिबल सो परिहास बखानि ।।"[४]

---

१. केशवदास – रसिक प्रिया, अध्याय १४।३ , पृ० १८०, पू०सं०
२. केशवदास – रसिक प्रिया १४।८, पृ० १८२, पू०सं०
३. केशवदास-रसिकप्रिया १४।११, पृ० १८३ पू०सं०
४. केशवदास-रसिकप्रिया १४।१४ पृष्ठ १८४, पू०सं०

ऊपर के तीन भेद तो प्राचीन आचार्यों के अनुरूप ही हैं लेकिन परिहास का वर्णन करते हुए केशव ने नई कल्पना की है और उसे नायक-नायिका प्रेम जन्य हास्य निरूपित किया है। यह केशव का मौलिक रस-विवेचन है।

हास्य की पाश्चात्य मान्यताएं -

हास्य और व्यंग्य के सैद्धान्तिक विवेचन में काफी कठिनाई रही है। प्राचीन दार्शनिकों काव्याचार्यों, आयुर्वेदाचार्यों द्वारा इस विषय पर विभिन्न मत व्यक्त किये गये हैं जिनको आधार मानकर हास्य का विवेचन करना प्राय: कठिन कार्य है। अरस्तू, बर्गसाँ, फ्रायड, ल्यूकस आदि विद्वानों ने हास्य और व्यंग्य के विवेचन में कुछ न कुछ मत अवश्य व्यक्त किया है। हास्य के सम्बन्ध में मानव-मस्तिष्क की सारी शल्य-चिकित्सा हो चुकी है। लेकिन "जहाँ हास्य (या व्यंग्य भी) मानवीय जीवन के जटिल जीवन सन्दर्भ को नया अर्थबोध देता है, उस प्रक्रिया को साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने का यत्न विशेष नहीं हो पाया। हास्य हमारे संस्कृत व्यक्तित्व की सहजता अजुता एवं पवित्रता का द्योतक रहा है........।"[१] वैसे तो हास्य और व्यंग्य का अभाव सदा से खटकता रहा है लेकिन फिर भी पाश्चात्य साहित्य में इसका जितना विवेचन हुआ है, पौर्वात्य साहित्य में उसका अभाव ही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में -" यह बात अखरने वाली पड़ती है कि शिष्ट और परिष्कृत हास्य का जैसा सुन्दर विकास पाश्चात्य साहित्य में हुआ है वैसा अभी यहाँ अभी नहीं दिखाई पड़ता है।"[२] पश्चिमी साहित्य में सदैव हास्य का महत्व-पूर्ण स्थान रहा। उनके जीवन में करुणा एवं हास की भावना प्रधान रही। उनके यहाँ प्रतिघात-मय भौतिक जीवन में इन्हीं दो भावों का समाहार हो सका है। इसी-लिए रस के शास्त्रीय विवेचन में पाश्चात्य विद्वान करुणा और हास्य पर लिखकर ही प्राय: समाप्त कर दिया करते हैं।[३]

हास्य का प्रथम सैद्धान्तिक विवेचन प्लेटो ने किया था। यद्यपि उसने हास्य

---

१. केशवचन्द्र वर्मा -आधुनिक हिन्दी हास्य,-व्यंग्य,मि०सं०, पृ० ६

२. रामचन्द्र शुक्ल -हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं०सं०,सं० पृ० ५७५

३. डॉ० नगेन्द्र- हिन्दी साहित्य में हास्य रस,बीणा, नवम्बर१९३७, पृ० ३१

परक कोई भी कृति निर्मित नहीं की किन्तु हास्य और व्यंग्य सम्बन्धी संकेत उसकी रचनाओं में मिलते हैं । प्लेटो जब कहीं भी दो विभिन्न वस्तुओं को साथ-साथ देखता था तब या तो उसे हंसी आ जाती थी, अथवा वह उस वस्तु पर व्यंग्य रूप में कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त कर देता था । उसने लेवियाथन में सन् १६५० में यह महत्त्वपूर्ण शब्द कहे थे —

"आकस्मिक यश वह इच्छा है जो कि मौखिक कुता को हास्य का रूप देती है ।"[१]

उसने स्पष्ट कहा है — हास्य अन्य व्यक्ति में कमजोरी प्रतीत होने पर व्यक्त की गयी एक प्रतिक्रिया है ।[२] वह स्वयं भी एक अभियुक्त था इसलिए उसकी त्रुटियों के प्रति लोग हंसा करते थे । प्रसिद्ध समीक्षक बर्गसाँ ने लिखा है कि समाज का बुद्धिजीवी वर्ग प्रायः आंसू कम ही दिखाया करता है । उसमें हास्य और व्यंग्य की अधिकता रहती है ।[३]

पाश्चात्य विद्वानों ने कामेडी के सन्दर्भ में हास्य के निम्नलिखित भेद किये हैं :-

१. स्मित हास्य (ह्यूमर)
२. व्यंग्य (सैटायर)

---

1. "Sudden glory is the passion which maketh those grimaces called laughter"
   Humour in English Literature- R.H.Blyth Page 1,Edi 1959

2. "Laughter without offense must be at absurdities and infirmities,
   Humour in English Literature- R.H.Blyth Page 1,Edi. 1959

3. "In a society of pure intelligences there would probably be no more tears though perhaps there would still be laughter"
   R.H.Blyth-Humour in English Literature-Page 3,Edition-1959.

३. वाग्वैदग्ध्य (विट)
४. [illegible] (आइरनी)
५. प्रहसन (फार्स)
६. पैरोडी

<u>स्मितहास्य (ह्यूमर)</u>

भारतीय परम्परा के अनुसार 'स्मित' को पाश्चात्य विद्वानों ने हास्य का सर्वोत्तम अंग माना है । ह्यूमर को हम स्मित की ही संज्ञा दे सकते हैं क्योंकि जिस गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता स्मित में पड़ती है वही ह्यूमर में भी चाहिए । जब हम कभी हास्यास्पद वस्तु के प्रति अधिक हँस देते हैं तब वह कभी कभी बुरा भी मान जाता है ऐसी प्रतिक्रिया ह्यूमर में नहीं होती । हास्यास्पद के प्रति ईषद् मुस्कान को ही स्मित की संज्ञा दी जा सकती है ।

स्मित हास्य का प्रधान रूप है । कभी-कभी हम आवेश में आकर इतना अधिक हँस देते हैं कि आसपास का वातावरण ही दूषित हो जाता है जिसे हम संस्कृत की शैली में अट्टहास कह सकते हैं । शिष्ट हास, परिहास के लिए विवेक की आवश्यकता होती है । यह चिन्तन सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए । हँसना बेसमझदारी का भी हो सकता है, स्मित के लिए समझदारी आवश्यक है । स्मित का चिन्तन रूखा नहीं होना चाहिए बल्कि मनुष्यत्व पर सहानुभूतिपूर्ण विचार करने के बाद उत्पन्न [illegible] चिन्तन की आवश्यकता पड़ती है ।[1]

हास्य विवेचन में जार्ज मेरीडिथ ने लिखा है कि हास्यास्पद के प्रति

---

1. "If insensibility is demanded for pure laughter sensibility is rendered necessary for true humour. Humour, we shall find, is often related to melancholy of a peculiar kind; not a fierce melancholy, but a melancholy that arises out of pensive thoughts and a brooding on the ways of mankind."

A. Nicoll- The Theory of Drama- Page 190, New Ed. 1931.

उसकी हँसी उड़ाने तथा उससे प्रेम करने में मनुष्य को अपना सन्तुलन नहीं खोना चाहिए । जिसकी हँसी उड़ाई जाय उससे प्रेम भी किया जाना चाहिए । आलम्बन के प्रति कारुणिक भाव अत्यावश्यक है ।[१]

भारतीय विद्वानों ने रसों के मैत्री प्रकरण में हास्य को करुणा का विरोधी बतलाया है । साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने साहित्य की मीमांसा में कहा है —

"आद्यः करुणा बीभत्सरौद्रवीर भयानकै ।
भयानकेन करुणेनापि हास्यो विरोधभाक् ।।
करुणो हास्य शृंगाररसाभ्यामपि तादृशः ।
रौद्रस्तु हास्य शृंगार भयानकरसैरपि ।।"[२]

यह कथन हास्य रस के आधुनिक प्रयोग में बाधक है । काव्य के सन्दर्भ में यह विरोधाभाव कुछ सार्थक भी है लेकिन नाटकों के सन्दर्भ में यह विरोध प्रतीत नहीं होता । इसी सन्दर्भ में जार्ज मेरीडिथ ने लिखा है —" हँसने के लिए प्रेम को कम करना पड़ता है, ऐसा मनोविज्ञान कभी नहीं कहता, हास्य की मनोवृत्ति सामाजिकता तथा प्रेमभावना से युक्त है । हास्य के कारण प्रेमी में प्रेम कम हो और वही हास्य शक्ति मापक हो यह कदापि सम्भव नहीं है । शरीर विज्ञान ने तो हास्य को पहुँची हुई प्रेम शक्ति का परिवर्तित रूप माना है ।"[३] जब हास्य कठोर हो जाता है तब हम उसे वक्रोक्ति या व्यंग्य कहते हैं । जहाँ हास्य में ममता रहती है, हास्यास्पद प्रिय होता है तब उसे स्मित कहा जाता है ।

१." If you laugh allround him trumble him, roll him about deaf him a smack and drop a tear on him own his likeness".

Meredith- An Essay on Comedy- Page 172. Edi.1914.

२. विश्वनाथ-साहित्य दर्पण (स०प्र०सिंह) ३।२५४, पृ० २५५, १९५७

३. मेरीडिथ- एन स्से आन कामेडी, पृ० ८४, संस्क० १९१४

जार्ज मेरीडिथ ने अन्यत्र कहा है कि प्रत्येक हँसने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह आलम्बन (जिसके प्रति हँस रहा हो) के प्रति करुणा का भाव रखे। जिससे यह प्रतीत हो सके कि उस व्यक्ति की सहानुभूति आलम्बन के प्रति है।[1] 'आप अपने हास्य की योग्यता का अनुमान इससे कर सकते हैं कि आप अपने प्रेम पात्रों पर बिना अपना प्रेम कम किये हँस सकें।'[2] यदि हास्य के साथ करुणा का भी समन्वय रहे तो वही उत्तम हास्य है। इसी को हम ह्यूमर मान सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'जो बात हमारे यहाँ की रस व्यवस्था के भीतर स्वतः सिद्ध है वही यूरोप में इधर आकर एक आधुनिक सिद्धान्त के रूप में यों कही गई है कि उत्कृष्ट हास वही है जिसमें आलम्बन के प्रति एक प्रकार का प्रेमभाव उत्पन्न हो अर्थात् वह प्रिय लगे। यहाँ तक तो बात बहुत ठीक रही पर यौरप में नूतन प्रवर्तक बनने के लिए उत्सुक रहने वाले चुप कब रह सकते हैं। वे दो कदम आगे बढ़कर आधुनिक 'मनुष्यतावाद' या 'भूतदयावाद' का स्वर ऊँचा करते हुए बोले- 'उत्कृष्ट हास्य वही है जिसमें आलम्बन के प्रति एवं करुणा उत्पन्न हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह बोली, मुहमल, सर्वथा अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक और रसविरुद्ध है। दया या करुणा दुःखात्मक भाव है, हास्य आनन्दात्मक दोनों की एक साथ स्थिति बात ही बात है। यदि हास के साथ एक ही आश्रय में किसी और भाव का सामंजस्य हो सकता है तो प्रेम या भक्ति का ही।'[3] शुक्ल जी भारतीय विद्वान हैं अतः उनका रसैषी विषयक विरोध आवश्यक-सा है। यह विरोध काव्य-सन्दर्भ में सम्भव है। पाश्चात्य विद्वान करुणामय हास्य को ही उत्तम मानते हैं।

---

1. " The stroke of the great humourist is world wide which lights of tragedy in his laughter."

   Meredith- An Essay on comedy- Page 84.

2. Your may estimate your capacity for comic perception by being able to detect the ridicular of them your love without being living them less.

   Meredith- An Essay on comedy- Page 79.

३. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास,संशो०सं०, पृ० ५०५, सं० २०२७

प्रसिद्ध नाटककार ड्राइडन ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि निरन्तर गम्भीरता मस्तिष्क को व्यग्र बना देती है । उसके परिशोधन के लिए कभी-कभी हास्य उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार मार्ग में विश्राम स्थल । वास्तव में जीवन भी दु:ख और सुख के बीच इतना उलझा है कि उसे अलग करना कठिन है । जो व्यक्ति आज रोता है वही दूसरे दिन खुश दिखाई पड़ता है, इसलिए जीवन में हास्य और करुणा का सम्मिश्रण रहता ही है । काव्य में दोनों रसों में भले विरोध रहे लेकिन नाटक एक कलात्मक रचना होती है उसमें हास्य और रुदन का मिश्रण साथ ही साथ मिलता है ।

ए० निकल के अनुसार स्मित हास्य शारीरिक संरचना, चरित्र शब्द एवं स्थिति पर निर्भर होता है ।

(२) व्यंग्य (सैटायर)

हास्य में हास्यास्पद के प्रति सहज अनुभूति होती है । उसमें प्रेम की भावना होती है । जिस हास्य में सहानुभूति नहीं होती बल्कि उसके विपरीत जिस हास्य में घृणा या विरोध की प्रधानता होती है उसे व्यंग्य कहते हैं । व्यंग्य एक प्रकार का आक्षेप है जो दुर्बलताओं तथा अवगुणों को प्रदर्शित करता है ।

व्यंग्य का प्रारम्भ दृश्यकाव्यों से माना जाता है । रोमन तथा यूनानी दोनों ही व्यंग्य का जन्मदाता अपने को मानते हैं । जूलियस स्केलिगर तथा हेंसियस इत्यादि यूनानी विद्वानों का कथन है कि व्यंग्य परम्परा यूनान से रोमवासी सीख सके हैं । जबकि क्विन्टिलियस तथा कैसाबान इत्यादि रोमन विद्वान व्यंग्य का जन्मदाता अपने को बताते हैं । व्यंग्य (सैटायर) का नामकरण 'सटैरस' जैसे विचित्र जन्तु से किया गया है । 'लिवीएन्ड्रोनिकस' नामक व्यक्ति ने सर्व प्रथम इसको परिष्कृत करके दृश्यकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया यह एक यूनानी गुलाम था । इसमें नाटक में व्यंग्य का प्रयोग किया है । 'एनियस' ने ललित पद्यावली में सर्वप्रथम व्यंग्य का प्रयोग

---

*.

के लिए तार्किकता अत्यावश्यक है ।[1] वस्तुत: व्यंग्य सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का माध्यम है । हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का पर्याप्त प्रयोग किया गया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'अन्धेरनगरी' 'वैदिकीहिंसा हिंसा न भवति' इन दोनों नाटकों में सामाजिक कुरीतियों के प्रति व्यंग्य किया है ।

वास्तव में व्यंग्य शुद्ध हास्य और कटु आलोचना के समन्वय से उत्पन्न होता है । इसका एक अंग कोमल क्षोभ से पोषित होता है दूसरा घृणा तथा द्वेष से ।[2] व्यंग्य की प्रकृति कठोर होती है, जबकि मलग्रेव, पोप, होरेश, और ड्राइडन ने श्रेष्ठ व्यंग्य को नम्र बताया है । हास्य प्राय: प्रतीकों पर आधारित रहकर समाज को विषय बनाता है, जबकि व्यंग्य सामान्य पात्रों को लेकर व्यक्तिगत चोट करता है ।

सरकैज्म :-

सरकैज्म का प्रयोग तीव्र एवं कटु कथन के रूप में किया जाता है । अंगरेजी साहित्य में इस शब्द का कटु व्यंग्य के रूप में प्रयोग १५७६ ई० से प्रारम्भ हुआ । व्यंग्यभाषा कटु व्यंग्य एवं कटु आक्षेप के रूप में यह शब्द प्रयुक्त होता आ रहा है । सरकैज्म तथा आइरनी में पर्याप्त अन्तर है । आइरनी में व्यक्ति जो कहता है उसके विपरीत उसका अर्थ होता है लेकिन सरकैज्म में जो कहा जाता है वही उसका अर्थ होता है लेकिन ऐसे तरीके से कहा जाता है कि उससे उपहास होता है ।[3] ह्यूमर के निश्चित भेद के रूप में सरकैज्म का प्रयोग कहीं नहीं मिलता । इसलिए इसे सैटायर के भेदों में सम्मिलित कर लिया जाता है । समग्र रूप से व्यंग्य का निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा सकता है ।

---

१. वान, एम० वुलिट- ए स्टडी आफ सैटायरिक टैक्निक, पृ० ४८, ई० १९५३

'शेष अगले पृष्ठ पर देखें'

(३) वाग्वैदग्ध्य (विट)
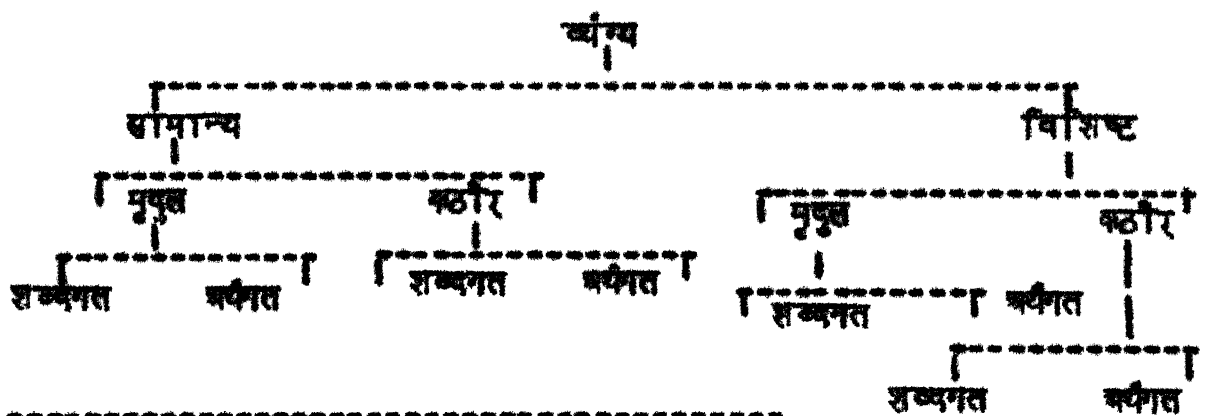
वाग्वैदग्ध्य शब्दों का वह समुच्चय है जो पाठकों को आनन्दित करता है। इसके कथन में आश्चर्य चकित करने वाले भावों की प्रधानता होती है। अलंकार जिस प्रकार काव्य के शोभाकारक धर्म हैं उसी प्रकार वाक्छल भी हास्य का शोभाकारक धर्म है। वाग्वैदग्ध्य विचाराभिव्यक्ति की एक विशिष्ट कलापूर्ण प्रक्रिया है जो मन को आह्लादित करती है। वाग्वैदग्ध्य विचारों अथवा शब्दों पर आधारित एक कला है। अरस्तू के अनुसार जिन चुटीले शब्द प्रबन्धों की प्रशंसा प्राय: लोग करते हैं वे अनुभवी और चतुर लोगों की रचनाएं हुआ करती हैं। अरस्तू इन प्रबन्धों में हास्यरस का होना अनिवार्य नहीं बतलाया है।

अंग्रेजी का 'विट' तथा हिन्दी का चमत्कार समानार्थी शब्द हैं क्योंकि दोनों ही उक्तिवैचित्र्य से श्रोता या पाठक को आनन्दित करते हैं।

एडिसन ने 'सिक्स पेपर्स आन विट' में 'विट' तथा 'ह्यूमर' का अलग अलग वर्णन नहीं किया है। लेकिन वह दोनों में अन्तर मानता है। हास्य और वाक्छल परस्पर आश्रित हैं। इस सन्दर्भ में एडीसन ने एक आख्यायिका का प्रयोग किया है जिसके अनुसार 'परिहास' या 'विनोद' के श्रेष्ठ वंश का प्रधान पुरुष 'सत्य' है। सत्य के 'शोभानार्थ' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शोभनार्थ के यहाँ 'उक्ति चमत्कार' नामक पुत्र हुआ। उक्ति चमत्कार ने 'आनन्दी' से परिणय किया जिससे 'विनोद' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। 'विनोद' का जन्म भिन्न माता पिता से हुआ था।

पिछले पृष्ठ का शेष --

२. श्याममुरारी जायसवाल --जी०पी० श्रीवास्तव की कृतियों में हास्यविनोद, पृ४२, संस्करण १९६३

३. एडीसन--इनसाइक्लोपीडिया,पृष्ठ ५-६,१९६७ ई०,संस्करण

इसीलिए उसका स्वभाव विलक्षण हो गया । वह कभी गंभीर, कभी चंचल, कभी विलासी जान पड़ता था । लेकिन उसमें माता का अंश अधिक था । उसकी माता के गुणों के अनुसार वह दूसरे व्यक्तियों को उभार बिना नहीं रहता ।[१] एडीसन के इस कथन का अभिप्राय यह है कि वाग्वैदग्ध्य के लिए सत्य और गम्भीर अर्थ आवश्यक है । यथार्थ गाम्भीर्य के अभाव में वैदग्ध्य की पूर्णाभिव्यक्ति कठिन होती है । बिना गम्भीर अर्थ के उक्ति में चमत्कार असम्भव है ।

वाग्वैदग्ध्य को दो भागों में विभक्त किया जाता है -

१. चमत्कार वैदग्ध्य ।
२. रसात्मक वैदग्ध्य ।

चमत्कार वैदग्ध्य में वाक्य या शब्द की प्रयोगपटुता अधिक रहती है । चमत्कार वैदग्ध्य केवल बौद्धिक होता है । फ्रायड ने चमत्कार वैदग्ध्य के दो भेद बताये हैं -१. सहज चमत्कार तथा २. प्रवृत्ति चमत्कार । सहज चमत्कार में केवल विनोद रहता है । प्रवृत्ति चमत्कार में ऐन्द्रिक भावना रहती है । जब उक्ति वैचित्र्य रसमय होता है तब उसे रसात्मक वैदग्ध्य कहा जाता है । 'विट' में वस्तुत: दोनों का समाहार रहता है ।

वस्तुत: 'विट' में रस और चमत्कार दोनों का होना आवश्यक है । उदाहरणार्थ -खरहे ने बलवान सिंह को कुआँ झँकाकर अपनी जान बचा ली, इससे खरहे की चालाकी का पता चला । शेर अपनी माँद के द्वार तक तो लोमड़ी को ले आ सका पर वहीं लोमड़ी ठिठक गई और उसने कहा, 'महाराज बाहर से गुफा में जाने के चिह्न हैं,पर लौटने वालों का तो निशान तक नहीं ।' और वह भाग आई । यह बुद्धि की सूझ है । हम लोमड़ी की तारीफ करते हैं, 'अभी खट्टे अंगूर कौन खाय' तो वांछित लाभ से जो निराशा हुई उस निराशा या लज्जा को छिपाने के लिए जो तर्क गढ़ लिया जाता है सो वह वाग्वैदग्ध्य ही है । लजा जाने पर लोग अक्सर

---

१. नृसिंह चिन्तामणि केलकर-हास्यरस (अनु० रामचन्द्र वर्मा) द्वि०सं०,पृ० ८,९

बात बदल देती हैं । यह वैदग्ध्य रसात्मक वैदग्ध्य है केवल बुद्धि पटुता का चमत्कार नहीं ।"[१]

वैदग्ध्य का प्रयोग शब्दगत और अर्थगत दोनों होता है । अत: शब्द वैदग्ध्य और अर्थ वैदग्ध्य दो प्रकार के भेद हो सकते हैं । वाग्वैदग्ध्य में जब चमत्कार या विलक्षणता न हो तब वह व्यर्थ हो जाता है । वैदग्ध्य में एक बार सुनी बात पर पुन: सुनने से आनन्द नहीं होता है । वैदग्ध्य चमत्कार जनक होना चाहिए ।

(४) आइरनी

जब हम एक उक्ति के निश्चित अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ समझने लगते हैं तब वह वाक्य आइरनी की कोटि में आ जाता है । आइरनी तथा आचार्य कुन्तक के वक्रोक्ति में पर्याप्त अन्तर है । "वक्रोक्ति" शब्द का अर्थ आचार्य कुन्तक "वक्रोक्ता उक्ति" से लगाते हैं लेकिन आइरनी का अर्थ "वक्रउक्ति" मात्र है । आइरनी एक प्रकार की अभिव्यंजना है जिसमें अर्थगत अन्तर पाया जाता है ।

ए०निकल ने आइरनी की परिभाषा इस प्रकार बतलाई है -"आइरनी में जिस वस्तु में हम विश्वास नहीं करते उसमें विश्वास दिखाते हैं तथा हास्य में जिस वस्तु में हम वास्तव में विश्वास करते हैं उसमें अविश्वास दिखाते हैं ।"[२]

हेनरी बर्गसां के अनुसार-"कभी कभी हम यह कहते हैं कि यह होना चाहिए और दिखाते भी हैं कि जो कुछ किया जा रहा है उसमें हमारा विश्वास भी है, वहाँ आइरनी होती है-आइरनी में हमको ऊपर से ऊँचे उद्देश्य की भलाई दिखाने का बहाना करना पड़ता है । इस प्रकार आइरनी अन्दर से इतनी तीव्र हो सकती है कि

---

१. जगदीश पाण्डेय -- हास्य के सिद्धान्त, प्र०सं०,पृ० ८२

२. In irony we pretend to believe what we do not believe, in humour we pretend to disbelieve what we actually believe.
A.Nicoll - An Introduction to Dramatic Theory - Page 150, Edi. 1923.

हमें मालूम पड़े कि वह शक्तिशाली वक्तव्य है ।"[१]

मैरीडिथ ने आइरनी की परिभाषा इस प्रकार दी है — "यदि आप हास्या-स्पद पर सीधा व्यंग्य बाण न छोड़ें वरन् उसे ऐसा अभिप्रेरित कर दें कि उसके मुख से सिसकारी निकल पड़े । प्यार के आवरण में उसे डंक मारें जिससे वह अन्तर्द्वन्द्व में पड़ जाय कि वास्तव में किसी ने उसके ऊपर प्रहार किया है अथवा नहीं तब आप आइरनी का उपयोग कर रहे हैं ।"[२]

इसी आशय को और अधिक स्पष्ट करते हुए मैरीडिथ ने लिखा है — "आइरनीकार जो कुछ लिखता है वह अपनी मानसिक प्रवृत्ति के आधार पर लिखता है । आइरनी व्यंग्य का हास्य है । आइरनी कठोर और गम्भीर हो सकती है । एक प्रकार की आइरनी वह है जो कि ऊपर से दिखलाई देती है तथा दूसरी वह है जिसके उद्देश्य में तिरस्कार की भावना होती है तथा जो व्यंग्यात्मक उद्देश्य में असफल हो गई है तथा जिसमें भ्रम के स्थान हों ।"[३]

---

१. Sometimes we state what ought to be done and pretend to believe that this is just what is actually being done; then we have irony........ Irony is emphasised the higher we allow ourselves to be uplifted by the idea of good that ought to be thus irony may grow so hot within us that it becomes a kind of high pressure eloquence.
Henry Bergson - Laughter - Page 127, Edi. 1911.

2. If instead of falling fould of the ridiculous person with a satiric rod, to make him writhe and shriek aloud, you prefer to sting him under semi-caress, by which he shall in his anguish be rendered dubious, whether indeed anything has hurt him, you are an engine of Irony.
Meredith - The Idea of Comedy - Page 79 Edi. 1929.

3. The Ironist is one thing or another according to his caprice. Irony is the humour of satire, it may be savage as in Swift, with a moral object or sedate as in Gibbon with a malicious. The foppish irony fretting to be seen, and the irony which leers that you shall not mistake its intention, are failures in satire effect pretending to the treasures of ambiguity.
Meredith - The Idea of Comedy - Page 82 Edi. 1929.

प्रोफेसर जगदीश पाण्डेय आइरनी को वक्रोक्ति नाम से अभिहित करते हैं। उनका मत है कि 'वक्रोक्तिकार भी धनुष की भाँति झूठी नम्रता में झुक-कर तीर की तरह चोट करता है। इसमें स्तुति तथा निन्दा दोनों झूठी होती है। स्तुति निन्दा तथा वक्रोक्ति में भेद ध्वनि का है, काकु का है। ध्वनि में ही अर्थ गूढ़ रहता है। वक्रोक्ति तथा सच्ची स्तुति या निन्दा में वही साम्य है जो कोयल और कौए में है। वक्रोक्ति का सच मानना विश्वासघात का शिकार बनना है।'[१]

उन्होंने हास्य के सिद्धान्त में आइरनी के निम्नलिखित भेद बताये हैं—

(१) आधार के तिरोभाव से।

(२) विरोधाभास

(३) व्याज-निंदा

(४) द्विविधा

(५) व्याज-स्तुति

(६) असंगति

(७) प्रत्यावर्तन

(८) ध्रुवविपर्यय व्यंग्य

(९) पृष्ठाघात की वक्रोक्ति

(१०) अभिन्न हेतुक विभिन्नता, तुक विभिन्नता

(११) निंद की साधुस्तुति।[२]

लक्ष्मण तथा परशुराम संवाद में आइरनी का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है —

'लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनै पारा।।
अपने मुख तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।
नहिं संतोष त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू।।
बीरव्रती तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।।[३]

(६) प्रहसन (फार्स)

अंग्रेजी के सुखान्त नाटकों में प्रहसन प्रथम अंग माना गया है। सुखान्त लेखक विश्व के सभी भावों से परिचित रहता है। वह सामाजिक कुकृत्य अत्याचार को अपने नेत्रों से देखता है और विनोद एवं व्यंग्य की शैली में उन चित्रों को खींच कर दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। प्रत्येक हास्य लेखक अपनी अनुभूति और

१. जगदीश पाण्डेय-हास्य के सिद्धान्त तथा मानस में हास्य, प्र०सं०, पृ० ६२
२. जगदीश पाण्डेय-हास्य के सिद्धान्त, प्र०सं०, पृ० ६६
३. तुलसीदास-रामचरितमानस (बालकाण्ड) सी०एल०सं०, दोहा, २७३ के आगे

निरपेक्षता एवं आकृष्ट रूप तथा यथार्थता के दृश्यों का प्रयोग करता है । सुखान्त नाटकों में प्रयुक्त हास्य, सार्वजनिक, शिष्ट एवं कल्याणकारी होता है ।

ए० निकल ने प्रहसन में चार प्रकार की अभिव्यक्ति मानी है । प्रकरण उत्पन्न हास, वाग्वैदग्ध्य, विमत और व्यंग्य । प्रहसन में उपर्युक्त चारों भेद सम्मिलित रहते हैं उन्हें अलग करना कठिन कार्य है । इसमें हास्य की सृष्टि होती है लेकिन व्यंग्य की प्रधानता रहती है ।

सुखान्त नाटकों में हास्य की प्रधानता रहती है लेकिन आजकल 'ट्रेजीकामेडी' की रचना भी होने लगी है । यह सुखान्त का प्रधान भेद है । यह पात्र (चरित्र) के विशेष परिस्थिति के वार्तालाप पर निर्भर होता है । यह स्थितिविशेष में ही सम्भव हो सकता है । पात्र कथोपकथन द्वारा ऐसी पृष्ठभूमि उत्पन्न कर देता है जिसका सामाजिकों (दर्शकों) पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता । इसकी स्थिति चालाकी से उत्पन्न की जाती है । 'ट्वेल्थ नाइट' इसी प्रकार की नाट्य कृति है । 'विषयस्य विषमौषधम्' तथा 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' हिन्दी के उच्च कोटि के प्रहसन हैं । इसमें कभी-कभी ध्वनि बदलकर भी सामाजिकों को आकृष्ट किया जाता है ।

हेनरी फील्डिंग ने सुखान्त के बारे में लिखा है -' प्रहसन में हमारे सामने यथार्थ चरित्रों का ही चित्रण होता है । हास्य का इसमें सदैव ध्यान रखा जाता है । यह विभिन्न प्रकार के वर्गों को हमारे सम्मुख रखता है । कभी-कभी नये वर्गों का सृजन भी इसमें किया जाता है, इस भांति इसमें अन्य कलाओं से विभिन्नता

---

१. Farce we have already considered in general and we have found that its main characteristics are the dependence in it of character and of dialogue upon mere situation.

A.Nicoll- The Theory of Drama- Page 214, Edi 1931.

स्पष्ट प्रतीत होती है ।"[१] समाज में फैली हुई बुराइयों का चित्रण ही प्राय: इन प्रहसनों में होता है । इसलिए यह उक्ति कही जाती है कि जब जब समाज में बुराइयां अधिक आ जाती है तभी अधिक प्रहसन भी लिखे जाते हैं । समाज की विकृतियों का चित्रण ही प्रहसन में सम्भव है । अत: प्रहसनकार को समाज का वास्तविक ज्ञान आवश्यक है ।

यूनानी और अंग्रेजी साहित्य में प्रहसनों की संख्या अधिक है । यूनानी प्रहसनकार 'अरिस्टोफिनिज' ने अपने समकालीन प्रहसनकारों की हंसी इसलिए उड़ाई है कि समकालीन साहित्यकारों से उसका वैमनस्य था । प्रहसन में समाज के विकृत रूप का व्यंग्यात्मक चित्रण होता है इसलिए यह अधिक लोकप्रिय भी होता है ।

संस्कृत नाटकों में प्रहसन के लिए विदूषक का प्रयोग किया जाता था । ये विदूषक ब्राह्मणजाति के होते थे । विदूषक प्राय: राजा का अन्तरंग मित्र तथा उसके कार्यों का संचालक होता था । इनमें चरित्र की प्रधानता रहती थी । संस्कृत साहित्य में विदूषक अधिकतर पेटू, भुक्कड़ तथा लालची ही चित्रित किये गये हैं । भास, कालिदास इत्यादि नाटककारों ने विदूषक को इन्हीं रूपों में चित्रित किया है । संस्कृत साहित्य में 'भाण' का उपयोग भी प्रहसन के लिए किया जाता है । "यह एक ही अंक का होता है । इसमें नट ऊपर देख कर जैसे किसी से बात करके आप ही सारी कहानी कह जाता है । बीच बीच में हंसना, गाना, क्रोध करना, गिरना इत्यादि आप ही दिखलाता है । इसका उद्देश्य हंसी, भाषा उत्तम और यत्र-तत्र संगीत भी होता है ।

---

१. Comedy depicts character we have come already come across and shall meet with again. It takes notes of similarities. It aims at placing types before our eyes. It even creates new types, if necessary. In this respect it forms a contrast to all the othe r arts.

Henry Bergson- Laughter- Page 163, Edi. 1911

नाटकों के सन्दर्भ में हास्य और व्यंग्य दोनों शब्दों का प्रयोग किया जाता है । प्रहसन में हास्य, और व्यंग्य दोनों का ही उपयोग किया जाता है लेकिन दोनों में कुछ अन्तर है । व्यंग्य द्वारा हम किसी भी व्यक्ति पर आक्षेप करते हैं लेकिन प्रहसन में एक मुस्कान मात्र शेष रह जाती है । व्यंग्य में बुद्धिपक्ष और हास्य में हृदयपक्ष प्रधान होता है । प्रहसन का हास्य व्यक्तिगत नहीं होता उसमें असाधारण नम्रता होती है लेकिन व्यंग्य व्यक्तिगत होता है और कटाक्षों से परिपूर्ण होता है । व्यंग्य और प्रहसन का अन्तर बताते हुए मेरिडिथ ने लिखा है —

" The laughter of satire is a blow in the back or the face. The laughter of comedy is impersonal and of unrivalled politeness, nearer a smile often no more than a smile. It laughs through the mind, for the mind directs it and it might be called the humour of the mind"[१]

प्रहसन में हमारे सुपरिचित चरित्रों का चित्रण होता है प्रहसन विभिन्न वर्गों को, कभी-कभी नवीन वर्गों को हमारे सामने उपस्थित करता है ।

इस प्रकार वर्मा ने हास्य पर विशद प्रकाश डालते हुए हास्य के विभिन्न भेदों की आलोचना भी प्रस्तुत की है । वर्मा के अनुसार हास्य (ह्यूमर) वैदग्ध्य (विट) तथा ग्राम्यत्व (मानसेन्स) का प्रयोग प्रहसन में ही किया जाता है । हास्य के क्षेत्र के अन्तर्गत कार्यों, अवस्थाओं एवं चरित्रों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है । इन्हीं अवस्थाओं में चरित्र के माध्यम से हास्य प्रकट करना प्रहसन कहलाता है । ग्राम्यत्व के द्वारा भी हास्य प्रकट होता है ।

कामदी में अधिकांशतः इन्हीं का चित्रण मिलता है । डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी के शब्दों में —"कामदी लेखक बुराइयों की दुनियां में रहता है, जीवन के प्रपंचों, अनाचार, और अत्याचार को देखता है फिर भी निरपेक्ष होकर कलात्मक ढंग से विनोद के भाव से दुनियां का चित्र खींचता है । स्वानुभूति और निरपेक्षता तथा भावुकता और वास्तविकता के द्वन्द्वों का प्रत्येक हास्य लेखक प्रयोग करता है । कामदी

---

१. मेरिडिथ- दि आइडिया आफ कामेडी, पृ० ८, १९२९ ई०

का हास्य अवैयक्तिक, सार्वजनिक और शिष्ट होता है ।"[१]

ए० निकल ने प्रहसन के निम्न भेद बताये हैं -

(१) प्रहसन (फार्स)

(२) शृंगारप्रधान प्रहसन (दि कामडी आफ रोमान्स)

(३) व्यंग्य प्रधान प्रहसन (कामडी आफ सैटायर)

(४) कोमलता प्रधान प्रहसन (जेन्टिल कामडी)

(५) अन्तर्द्वन्द्व प्रधान प्रहसन (दि कामडी आफ इन्ट्रीग्यूस)

(६) वाग्वैदग्ध्यपूर्ण प्रहसन (कामडी आफ विट)

(७) भावुकता प्रधान प्रहसन (सेन्टीमेन्टल कामडी)

(८) करुणारस प्रधान प्रहसन(ट्रैजीकामडी)

इन निकल ने उपरोक्त आठ भेदों को सामान्यतया पांच शीर्षकों में ही विभक्त किया है । इन्हीं पांच भेदों के साथ अन्य उपभेद भी गिनाए हैं जो इन्हीं में अन्तर्हित रहते हैं । वे (१) प्रहसन (२) हास्य (३) शृंगार (४) अन्तर्द्वन्द्व चातुर्य तथा (५) प्रणाली हैं ।[२]

प्रहसन के वर्ण्य-विषय

यूनानी तथा अंग्रेजी साहित्य में प्रहसन अति पूर्ण विकसित रूप में प्राप्त होता है । संस्कृत साहित्य में भी प्रहसन का विकास भाण के नाटकों से होता है । धीरे-धीरे यही परम्परा हिन्दी नाटकों में विकसित हुई । अंग्रेजी प्रहसनकारों ने

---

१. डॉ० बरसाने लाल चतुर्वेदी- हिन्दी साहित्य में हास्यरस, पृ०सं० ५०

२. In general there are five main types of comic productivity which we may broadly classify. Farce stand by itself as marked out by certain definite characteristics. The comedy of humours is the second of decided qualities. Shakespeare's comedy of romance is the third, with possibly the romantic Tragi- Comedy of his later years as separate sub-division. The comedy of intrigues is the fourth. The comedy of manners is the fifth.

A.Nicoll- The Theory of Drama- Page 213. Edition 1931.

प्रत्यन के निम्नलिखित प्रमुख वर्ण्य-विषय माने हैं[१]--

(१) सौन्दर्य ज्ञान तथा भ्रम का अभाव ।

(२) मानसिक कुरूपता, असंगति, अनैतिकता ।

(३) भ्रममूलक आशाएं तथा विचार ।

(४) निरर्थक वार्तालाप अथवा असंगत सम्वाद अथवा श्लेषपूर्ण कथोपकथन ।

(५) अशिष्टता तथा विसण्डावाद ।

(६) प्रपंचपूर्ण कार्य तथा अस्वाभाविक जीवन ।

(७) मूर्खतापूर्ण कार्य ।

(८) पाखण्ड तथा अस्वाभाविक आदर्श ।

(९) शारीरिक स्थूलता ।

(१०) मद्यपान तथा भोजन -प्रियता ।

(११) विदूषक ।

<u>(५) पैरोडी</u>

पैरोडी किसी विशिष्ट शैली या लेखक की हास्यास्पद अनुकृति है जो गम्भीर भावनाओं को परिहास में परिणत कर देती है । पैरोडी मूल अंग्रेजी का शब्द है । किन्तु अन्य शब्दों की तरह हिन्दी में स्वच्छन्दता पूर्वक व्यवहृत होता रहा है । पैरोडी का अर्थ परिहास किया जाता है । यह पैरोडी परिहास के अन्तर्गत समाहित की जाती है किन्तु मूलत: दोनों में पर्याप्त भेद है । परिहास में हम किसी व्यक्ति विशेष का उपहास करते हैं किन्तु पैरोडी कवि या लेखक के आधार प र भावों की की स्वतंत्र अभिव्यक्ति है । परिहास का अर्थ सामान्यतया दोषदर्शन ही समझा जा जाता है किन्तु पैरोडी में किसी भी व्यक्ति की अच्छाई के आधार पर भी परिहास कर लेते हैं । हिन्दी के अनेक विद्वान पैरोडी को किसी की खिल्ली उड़ाने की कला मानते हैं जो एकांगी है । आर्थर सिम्स के अनुसार पैरोडी पेस्तेडी में मूल के प्रति प्रेम तथा आदर में न्यूनता नहीं होनी चाहिए । प्रशंसात्मक हास्य पैरोडी का प्राण है ।

---

१. बरसाने लाल चतुर्वेदी-हिन्दी साहित्य में हास्यरस,पृ०सं०,पृ० ७९,८०

पैरोडी गद्य या पद्य दोनों की हो सकती है किन्तु पद्य की पैरोडी श्रेष्ठ होती है । पैरोडी का सम्बन्ध प्राय: उच्चकविता से होता है । पैरोडी का सौन्दर्य उसकी मूल रचना से घनिष्ठता में माना जाता है । उत्तम पैरोडी प्रसादगुण संयुक्त प्रसिद्ध कविता को लेकर दो एक पंक्तियों के परिवर्तन द्वारा की जाती है जिससे भिन्न अर्थ की प्रतीति भी हो तथा मूल का अर्थ भी न समाप्त हो । कभी-कभी असंगति का आधार लेकर भी पैरोडी की जाती है । यह असंगति विषय, शैली, तथा काल की भी हो सकती है ।[1] विषय प्रधान पैरोडी में कवि के वर्ण्य विषय का आधार लेकर, शैलीप्रधान पैरोडी में शैलीगत विभिन्नताओं के आधार पर, तथा काल की असंगति द्वारा कवि पुरातन तथा वर्तमान के अन्तर को स्पष्ट करके हास्य की सृष्टि करता है ।

डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार "परिहास (पैरोडी) उदात्त मनोभावों को अनुदात्त सन्दर्भ से जोड़कर हास्य उत्पन्न करता है ।[2]

डॉ० मोहन अवस्थी ने पैरोडी के दो भेद किये हैं – (१) शैली प्रधान (२) कालगत पैरोडी । शैली का आधार लेकर जब हास्य प्रस्तुत किया जाता है तो वह शैली प्रधान पैरोडी कही जाती है ।[3] किन्तु कभी-कभी प्राचीन और वर्तमान

---

१. डॉ० मोहन अवस्थी- आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प, प्र०सं०, पृ० २५१

२. डॉ० रामकुमार वर्मा - रिमझिम, प्र०सं०, पृ० १२

३. " तोड़ दिये तोमहिं तड़ाक तरबूज से,
 फोरिहौं तरबूज से तोमहिं भड़ाम से ।
 काशीपकस कहु बनी कैसन बनार डारी,
 बामुन बचै न बचै बाम कत्लेआम से ।
 गाडर पहारी कहू-कहू काँकरी से काटि
  मोरी मुँह मूरी सी मरोड़ि उन नाम से ।
  भूषण भनत शीघ्रता से क्या बाबूराम
  सत्व-तत्व कवित्त लिखारी धूमधाम से ।।

—हरिशंकर शर्मा-हिन्दी में परिहास-विलास भारत, पृ० ५१, जनवरी १९३५ ई०

की हास्यात्मक तुलना की जाती है तो उसे कालगत पैरोडी कहते हैं ।[1]

राधाचरण गोस्वामी ने भारतेन्दु पत्र में एक पैरोडी लिखी थी जो सूर के एक पद पर आधारित है –

" आज हरि हाईकोर्ट सिधारे ।
पुरी द्वारिका मध्य सुधर्मा सभा मनो पग धारे ।।
परम भक्त साहब नौटिस को निजकर दर्शन दीनो ।
बहुत दिनन के ताप आपने पाप सहित हरि लीनो ।।
जो कछु सबै विचार विवेचन यह मूरख मन मोरो ।
सूरदास अछूता को नन्दा को सुख करै सो थोरो ।।"[2]

हमारे देश में नाट्यनियमों की रचना अभिनय के आधार पर की गई है । अभिनय में शारीरिक चेष्टाओं को प्रमुख स्थान दिया जिसको ध्यान में रखकर स्मित हसित आदि भेद निरूपित किये गये । भारतीय नाट्य पद्धति में गुण या उद्देश्यों को ध्यान में रख कर इन भेदों की रचना नहीं की गई । प्राचीन नाट्यशास्त्रियों ने रस की प्रधानता के कारण गुणों पर रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया और शारीरिक चेष्टाओं के माध्यम से हास्य के भेदों का उपकरणों के माध्यम से निरूपण किया है । किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने गुण , उद्देश्य तथा उपकरणों के आधार

---

१. "साधिका जो होती कहीं जानकी के पास एक
वाटिका अशोक में सशोक भाव पाती क्यों ?
फायर ब्रिगेड यदि रावण के पास होता,
कपि के जलाए स्वर्णलंका जल जाती क्यों ?
मथुरा से द्वारिका को होता यदि टेलीफोन
कृष्ण के वियोग में तो राधा बिलखाती क्यों ?
मोटर 'फिएट' मिल जाती कहीं कौशला को
गयदे गरीब को तो वाहन बनाती क्यों ? "
उमाशंकर भट्ट 'दिनेश' — डाली पृष्ठ ५६, १९३६ ई०
* ~~—रामनरेश त्रिपाठी — हास्य नया नवरस — विशालभारत, पृ० १८२, फरवरी १९३० ई०~~

२. राधाचरण गोस्वामी – 'भारतेन्दु' २० जून १८८५ , पृ० ७४

पर हास्य का विवेचन किया है । भारतीय विद्वानों की तरह उनकी दृष्टि में कायिक चेष्टाओं का महत्व कम ही था । हमारे यहां आंगिक , वाचिक, सात्विक और आहार्य नामक नाट्यभेद कायिकचेष्टानुकूल हैं किन्तु पाश्चात्य देशों में ऐसा नहीं है । वहां मानव जीवन ही हास्य और करुणा से परिपूर्ण माना जाता है । इसलिए रस विवेचन में पाश्चात्य विद्वानों ने करुणा एवं हास्य का विवेचन करके ही अपने कर्तव्य की इतिश्री कर दी है । सम्पूर्ण जीवन में हास्य और रोदन के सम्मिश्रण के कारण इसके शास्त्रीय विवेचन को वे गौण मानते हैं ।[१]

हास्य की सृष्टि अन्य रसों से थोड़ी भिन्न है ।[२] अन्य रसों के अनुभव में हम तद्रूपवत हो जाते हैं और तज्जन्य अनुभूति ही रसानुभूति होती है । हास्य में नायक को अपने व्यक्तित्व का भान नहीं होता । इसीलिए वह उपहासास्पद कार्य करता है ।

हास्य प्रदर्शन के आधार

हास्य मानव मस्तिष्क की एक सहज प्रकृति है । विभिन्न परिस्थितियों के कारण वह प्रदर्शित होता है । डॉ० एस०पी० खत्री ने हास्य प्रदर्शन के निम्न आधार माने हैं[३]

(१) मारपीट के दृश्य (२) कार्यों अथवा इंगितों और शब्दों की पुनरावृत्ति (३) अनुकरण कला (४) छल,प्रपंच,मन्दमति,मूर्खता, दम्भ, (५) छद्मवेष (६) विस्मरणशीलता (७) नवीन फैशन प्रियता (८) आडम्बर (वेष अथवा सम्वाद में) (९) आचार विचार , एकांगीमति, असाधारणमति, अस्वाभाविकता, कृत्रिमता (१०) सामाजिक द्वन्द्व(अवैध प्रेम चरित्र) मानवी कमजोरियां , (११) पारिवारिक उलझनें , (१२) नारी चरित्र की विषमताएं, (१३) भोजनप्रियता (१४) मदिरा प्रियता, (१५) वक्रोक्ति, व्यंग्य, उपहास (१६) श्लेष, अतिशयोक्ति, (१७) अशुद्ध असंयत, निरर्थक शब्द अथवा भाषा प्रयोग ।

---

१. डॉ० नगेन्द्र-हिन्दी साहित्य में हास्य रस (निबन्ध) 'वीणा' पृष्ठ३१, नवम्बर१९३७

२. डॉ० मोहन अवस्थी -आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प प्र०सं०, पृ० २६, मार्च १९६२ई०

३. डॉ० एस०पी० खत्री-हास्य की रूपरेखा ,प्र०सं०,पृ० १९९

तृतीय-अध्याय

हास्य-व्यंग्य की विविध परम्परायें

(संस्कृत साहित्य में हास्य-व्यंग्य का विकास, भारतेन्दु के पूर्व नाटकों में हास्य और व्यंग्य, बंगला नाटकों में हास्य और व्यंग्य ।)

अध्याय — ३

हास्य-व्यंग्य की विविध परम्परायें

संस्कृत साहित्य में हास्य-व्यंग्य का विकास

संस्कृत वाङ्मय में शृंगार रस की महत्ता प्रधान है और इसके संयोग और विप्रलम्भ आदि भेद करते हुए शृंगार रस की अभिव्यक्ति सर्वाधिक की गई है । नव-रसों की गणना में हास्य का नामोल्लेख तो अवश्य मिल जाता है किन्तु इसे वह प्रतिष्ठा नहीं मिल सकी जो करुणाशृंगारादि को दी गई है । प्राय: रसों का विवेचन दार्शनिकों ने किया है और वे दार्शनिक गम्भीरता को प्रधानता देते रहे जिसके कारण हास्यरस को बहुत ही कम महत्त्व दिया है । सभी दार्शनिक आत्मा परमात्मा के विवेचन को अपना लक्ष्य मानते थे अत: हास्य जैसा छिछला भाव सदा उनसे दूर रहा फिर भी हँसना मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है । सैद्धान्तिक-पक्ष में भले ही इसे कम महत्त्व मिला हो व्यवहार में हास्य कभी भी उपेक्षित नहीं रहा । संस्कृत साहित्य में यत्र-तत्र हास्य-व्यंग्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

एक पौराणिक कथा के अनुसार एक बार स्वर्गलोक में देवताओं द्वारा एक यज्ञ सम्पन्न हो रहा था । मंत्रोच्चार करते हुए दुर्वासा ऋषि ने अशुद्धि कर दी । उनकी त्रुटि पर सरस्वती ने हँस दिया । इस पर दुर्वासा ने क्रोधित होकर हाथ में गंगाजल लेकर सरस्वती को मृत्युलोक में पतित हो जाने का शाप दे दिया और तभी से सरस्वती भूमण्डल पर विचरण करने लगीं ।[1] संस्कृत की पौराणिक कथाओं

---

[1] "दुर्वासा द्वितीयेन मन्दपालनाम्ना मुनिना सह कलहायमान: सामगायन्क्रोधान्धो विस्वरमकरोत्.... उपहस्य देवी सरस्वती मुक्त्वा जहास । दृष्ट्वा च तां तथा हसन्तीम् स मुनि.... शापजलं जग्राह ।... रोषवेगविवशो दुर्वासा दुर्विनीते व्यपनयामि ते विद्या जनितामुन्नतिमिमाम्, अधस्तादुपगच्छ मर्त्यलोकम् इत्युक्त्वा तच्छापोदकं विससर्ज ।।"

—बाणभट्ट-हर्षचरित(पी०बी०काशी), पृ० २, [illegible] वि०सं० १६६५

में प्रयुक्त यह प्रथम हास्य का उदाहरण है ।

ऋग्वेद में ऋषि-मुनियों की तुलना मेंढकों से की गई है । मैत्रावरुणि वसिष्ठ जब ब्राह्मणों के उद्घोष के साथ यज्ञ करने वाले ऋषियों को देखते थे तब उन्हें बरसात में टर्र-टर्र करने वाले मेंढकों की याद आ जाती थी ।

"ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे
सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ,
यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ।।" [1]

नास्तिकमतावलम्बियों ने धार्मिक रूढ़ियों की निन्दा करने के लिए कटु व्यंग्यों का सहारा लिया । वे पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते थे इसलिए चार्वाक दर्शन में "खाओ पीओ मौज उड़ाओ" का सिद्धान्त चरितार्थ हुआ है ।[2] पितरों को दिये जाने वाले श्राद्ध की खिल्ली उड़ाते हुए चार्वाक कहते हैं —"भला मरा व्यक्ति क्या ग्रहण करेगा । यदि एक का खाया हुआ अन्न दूसरे के शरीर में चला जाता हो तो विदेश में गये हुए व्यक्तियों के लिए भी श्राद्ध किया जाना चाहिए । उनके लिए रास्ते में भोजन ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।"[3]

वाल्मीकि रामायण और महाभारत में हास्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं । मन्थरा के कुचक्र में फँसने के बाद कैकेयी ने कुबड़ी के सौन्दर्य और बुद्धिमत्ता की जो व्याजस्तुति की है, वह हास्यास्पद ही है — "सुन्दरी कुब्जे" । यदि भरत का राज्याभिषेक हुआ और राम वन को चले गये तो सन्तुष्ट होकर मैं सोने की माला तेरे कूबड़ को पहनाऊँगी और उस पर चन्दन का लेप लगवा दूँगी तथा सुन्दर वस्त्र से सजा दूँगी । तू चन्द्रमा से स्पर्धा करने वाले मनोहर मुख द्वारा शत्रुओं के बीच में अपने सौभाग्य पर गर्व करती हुई इठलाना ।[4]

---

१. ऋग्वेद - ७।१०३।७

२. "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत नास्ति मृत्युरगोचरः ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।।" माधवाचार्य,सर्वदर्शनसंग्रह,पृ०२,श्लोक ५,१९६९ई०

३. मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ।। माधवाचार्य-सर्वदर्शनसंग्रह,पृ० ६,श्लोक २३

(क्रमशः अगले पृष्ठ पर देखें

रामायण की अपेक्षा महाभारत में हास्य व्यंग्य के अधिक उदाहरण मिलते हैं। महाभारत में वेष-विपर्यय का आश्रय लेकर अनेक विनोदपूर्ण घटनाएं उपस्थित की गई हैं। शिखण्डी स्त्री का पुरुष वेष में राजकन्या से विवाह करना, विराट् के राजप्रासाद में द्रौपदी के रूप में भीम द्वारा कीचक का स्वागत करना[1] अश्विनीकुमारों द्वारा च्यवन के रूप में सुकन्या को आश्चर्य में डालना, गौतम के वेष में इन्द्र का अहिल्या से भोग करना, चारों लोकपालों द्वारा नल के रूप में दमयन्ती को भ्रमित करना आदि हास्य-विनोद के अनेक दृष्टान्त महाभारत में प्राप्त होते हैं। शत्रु की व्यंग्यात्मक उक्तियां तो महाभारत में सर्वत्र प्राप्त होती हैं।

संस्कृत के अधिकांश नाटकों में हास्य की सृष्टि के लिए विदूषक का सहारा लिया गया। नाट्यसाहित्य में हास्य के प्रथम प्रणेता महाकवि भास हैं। 'भासो हासः'[2] की उक्ति प्रत्येक संस्कृतज्ञ जानता है। भास ने अपने नाटकों में हास्य की अवतारणा की है। 'दूत वाक्यम्' में कृष्ण के शान्ति-प्रस्ताव करने पर दुर्योधन द्वारा कृष्णभगवान को 'मन्दमति' कहकर उनकी हंसी उड़ाई गई है।[3]

पिछले पृष्ठ का शेष –

क्व तेऽहं प्रतिमोक्ष्यामि मालां कुब्जे हिरण्मयीम्।
अभिषिक्ते च भरते राघवे च वनं गते॥
करिष्यामि ते कुब्जे। शुभान्याभरणानि च।
परिधाय शुभे वस्त्रे देवतेव चरिष्यसि॥
चन्द्रमाह्वयमानेन मुखेनाप्रतिमानना।
गमिष्यसि गतिं मुख्यां गर्वयन्ती द्विषज्जने॥'

—वाल्मीकि रामायण-अयोध्याकाण्ड, श्लोक ४७,५०,५१

---

१. 'स्वागतं ते महारौद्र कन्यां वैदयहि प्रियम्।
न त्वन्यं कंचिदिच्छामि वदार्य वरवर्णिनि॥' महाभारत(विराटपर्व) अध्याय२२।३०

२. जयदेव-प्रसन्नराघवम्, १।२२, सन् १६५६ ई०सं०

३. प्राप्तः किलाद्य वचनादिह पाण्डवानां,
दौत्येन भृत्य इव कृष्णमतिः स कृष्णः।
श्रोतुं सखे त्वमपि सज्जय कर्ण कर्णौ
नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य॥

—भास-दूतवाक्यम्- १।१३, पृष्ठ १५, प्र०सं०

महाकवि कालिदास के नाटकों में विदूषक के माध्यम से हास्य की अभिव्यक्ति की गई है । विदूषक के माध्यम से शूद्रक ने "मृच्छकटिक" में हास्य का अनूठा चित्रण किया है । नाटक का नायक चारुदत्त ब्राह्मण होने के नाते विदूषक को चरणोदक देने के लिए कहता है तब विदूषक हास्यपूर्ण उत्तर देता है -

"चारुदत्तः — दीयतां ब्राह्मणस्य पादोदकम् ।

विदूषकः — किं मम पादोदकेहिं । भूमिए ज्जेव मए ताडिद गद्दहेण विय पुणोवि लोट्टिदव्वम् ।"[१]

"चारुदत्त —ब्राह्मण को चरणोदक दीजिए ।

विदूषक —मेरे चरणोदक से क्या लाभ है ? मुझे गधे की भाँति भूमि पर लोटना है ।"

संस्कृत साहित्य में विदूषक लालची और पेटू के रूप में चित्रित किया गया है । इसलिए उसकी भूमिका में हास्य की उत्कृष्ट व्यंजना का प्रायः अभाव रहता है । महाकवि भवभूति ने विदूषक रहित हास्य की अवतारणा की है । उत्तररामचरितम् नाटक में लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु जब रामचन्द्र जी के यश का वर्णन करते हैं तब लव राम पर व्यंग्य करता है ।

"लव :- को हि रघुपतेश्चरितं महिमानं च न जानाति ? यदि नाम किंचिदपि वक्तव्यम् । अथवा शान्तम् ।

वृद्धास्ते न विचारणीय चरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते ?

सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते ।

यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने

यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः ।।"[२]

अर्थात् "रघुपति के चरित्र और महिमा को कौन नहीं जानता ? वे वृद्ध हैं अतएव उनके चरित्र की आलोचना नहीं करनी चाहिए । उनके विषय में क्या कहा जाय ?

---

१. शूद्रक-मृच्छकटिक-(काशीनाथ पांडुरंग), पृ० ७१, पृ०सं०

२. भवभूति- उत्तररामचरितम् - (तारिणीश झा), पृ० ३४४, पृ०सं०

सुन्द राक्षस की स्त्री (ताड़का) के वध करने पर भी अक्षुण्ण कीर्तिवाले राम महान ही हैं। खर राक्षस के साथ युद्ध में जो तीन पग पीछे हटे थे अथवा बालि के मारने में उन्होंने जो कौशल दिखाया था उससे भी लोग परिचित हैं।"

भवभूति के नाटकों में जहाँ भी हास्य का प्रयोग किया गया है वहाँ उनका हास्य बहुत गम्भीर, शिष्ट और परिष्कृत रूप का परिचायक है। भवभूति का हास्य "स्मित" का सीमोल्लंघन नहीं करता। उनका हास्य बौद्धिक विनोद पर आधारित है। सीता चित्र में उर्मिला की ओर संकेत करके लक्ष्मण से पूछती हैं -

"वत्स इयमपरा का ?"[१] (वत्स, यह दूसरी कौन हैं ?)
किन्तु यह हास्य "स्मित" तक ही रह जाता है।

कालिदास-विचरित" विक्रमोर्वशीय" नाटक में राजा उर्वशी के प्रेम में इतना अधिक तन्मय हो जाता है कि वह अपनी पत्नी का परित्याग कर देता है। देवी अपने परिवार सहित चली जाती हैं। राजा उर्वशी के प्रेम में आबद्ध रहता है। नाटक के तृतीय अंक में राजा के पूछने पर विदूषक व्यंग्य करता है -

"राजा -(आसनमुपेत्य) वयस्य। न खलु दूरं गता देवी।
विदूषक- भण विस्सद्धं जं सि वत्तुकामो। असज्भो त्ति परिहिदिअ, आदुरो विअ वेज्जेण भवदी मुक्को तत्तहोदीए।"[२]

अर्थात्

" राजा -(अपने आसन पर बैठकर) मित्र, अभी देवी दूर तो नहीं गई होंगी।
विदूषक -जो कहना हो डटकर कहो। जैसे रोगी को असाध्य समझकर वैद्य छोड़ देता है, वैसे ही देवी ने आपको (समझकर) छोड़ दिया (अर्थात् अब आप उर्वशी के प्रेम से सुधर नहीं सकते।"

---

१. भवभूति-उत्तररामचरितम् (तारिणीश भा), पृ० ३८,प्र०सं०
२. कालिदास-विक्रमोर्वशीयम्, तृ०अं०, पृ० ५५ (साहित्य अकादमी, नईदिल्ली)

महेन्द्रविक्रम वर्मा प्रथम-विरचित 'मत्तविलासप्रहसनम्' में तत्कालीन धार्मिक दशा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है । बौद्ध धर्म एवं जैनधर्म उत्तरोत्तर पतन की ओर अग्रसर थे । इस प्रहसन में शाक्यभिक्षु के जीवन चरित के माध्यम से बौद्ध-धर्म एवं बौद्ध सन्यासियों के चारित्रिक दोषों का उद्घाटन किया गया है । तत्कालीन ऐसे भ्रष्ट सुधारकों को हास्य का आलम्बन बनाया गया है ।

इस प्रहसन के प्रमुख पात्र, कापालिक, पाशुपत, [शाक्य] ~~कश्यप~~भिक्षु, उन्मत्तक , देवसोमा आदि हैं । इसमें मदिरापान का चित्रण है । शाक्य भिक्षु नाटक के द्वितीय दृश्य में सुरापान का समर्थन करता है । साम्प्रदायिक बुराइयों के कारण इस धर्म का पतन एवं शैवधर्म का अभ्युदय इस प्रहसन का आधार है । शाक्यमुनि भिक्षु एवं कापालिक का वार्तालाप हास्य की पुष्टि करता है ।

बौधायन कवि विरचित 'भगवदज्जुकीयं' प्रहसन में हिन्दू परिव्राजक तथा बौद्धश्रमणक शाण्डिल्य के वार्तालाप के माध्यम से हास्य की पुष्टि की गई है । इस प्रहसन में योग का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । एक बगीचे में वसन्तसेना ने अपने दो प्रेमियों को देखा किन्तु वसन्तसेना को साँप ने डस लिया । परिव्राजक ने अपने शिष्य को योग का प्रभाव दिखाने को कहा । शिष्य ने अपने प्राणों को वसन्तसेना के शरीर में प्रवेश कराया । यम के दूत वसन्तसेना को जीवित देखकर दंग रह गये । उन्होंने वसन्तसेना के प्राण को शिष्य के शरीर में प्रवेश कराया । यम के दूत दोनों के प्राण छोड़ कर चले गये । प्रस्तुत प्रहसन में योग का प्रतिपादन करते हुए बौद्ध श्रमणों की नास्तिकता और अन्धविश्वास पर हास्य प्रकट किया गया है ।

काशीपति रचित 'मुकुन्दानन्द' एक भाण रचना है जिसका पात्र भुजंगशेखर हास्य का आलम्बन है । उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों की खिल्ली उड़ाई है । भाण में दुराचारिणी स्त्रियों की निन्दा की गई है । और उन्हें हास्य का आलम्बन बनाया गया है । दुराचारिणी स्त्रियाँ भी दिन भर पतिव्रता रहती हुई रात्रि में धूर्तों के साथ रति का आनन्द लिया करती है —

> "एवमेव यौवनार्ता धन्या शीलं न जहती कुचम्।
> दिवा पतिव्रता भूत्वा नक्तं च कुलटायते ।।"[१]

---

१. काशीपति-मुकुन्दानन्दभाण: पृष्ठ १६, सन् १८८९ ई०(निर्णयसागर प्रेस,बम्बई)

रत्नगुप्ता की स्नुषा इसी प्रकार की कुलटा स्त्री है । वह दिन भर पति सेवा में रत रहती है, साध्वी बनी रहती है, गुरुजनों तथा सास की सेवा भी करती है और पति पर विश्वास जमाकर रात में धूर्तों के साथ भोग का आनन्द लेती है ।

"कार्ये सत्यपि जातु याति न बहिर्नान्यजनानालोकते,
साध्वीरभ्यनुवर्तते गुरुजनं श्वश्रूं च शुश्रूषते ।
विश्रम्भं कुरुते च पत्युरधिकं प्राप्ते निशीथे पुनः ,
निद्राणे निखिले जने सखिमुखी निर्याति रन्तुं विटैः ।।"[1]

युवराज कवि विरचित "रससदनभाण:" में तीर्थों के कदाचार को हास्य का आलम्बन बनाया गया है । उस समय के तीर्थ भ्रष्टाचार के केन्द्र हो गये थे । पण्डे, पुरोहित, कथावाचक आदि नायिकाओं की सेवा में ही तत्पर रहते थे । वे नायिकाओं के सौन्दर्य में ही निमग्न रहा करते थे । उनकी अतिशय कामुकता को हास्य का आलम्बन है -

"राका मुखेन दशनैश्च कपोलकान्त्या,
फालेन पंचमीतिथिः प्रतिपन्नखाङ्कैः ।
रम्भा कुचैरपि कचप्रकरेण चैव
प्रायः समस्त तिथि संभृत भाग्यलक्ष्म्यम् ।।"[2]

तीर्थों में कदाचारी पण्डे स्त्रियों के कान में मन्त्र देते समय उनके कपोल का चुम्बन ले लिया करते थे । इस प्रकार की भ्रष्ट प्रक्रिया पर मृदु व्यंग्य का प्रयोग भी भाण में प्रस्तुत है -

" किंचित् ब्रवीमि निभृतं तव कर्णदेशे,
श्रोतव्य मित्यनुमतो रसिकः क्याचित् ।
आरभ्य मन्त्रमचुम्बत तत्कपोलौ
भावत्यर्थं कलयति स्म स वा विदग्धा ।।"[3]

---

१. काशीपति- मुकुन्दानन्द भाण:, पृष्ठ १६, सन् १८५६ ई० (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई)
२. वही, पृष्ठ १६ युवराज- रससदनभाण: पृष्ठ 12
३. युवराज-रससदन भाण: पृष्ठ १२ (निर्णयसागर प्रेस) १९२२ ई०

रामभद्र दीक्षित कृत 'शृंगार तिलक भाण' तथा नल्ला दीक्षित कृत 'शृंगारसर्वस्वभाण' में धूर्त, कामी पुरुषों को हास्य का आलम्बन बनाकर समाज में व्याप्त दुराचार और भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया गया है ।

संस्कृत गद्य लेखकों में दण्डी ने हास्य की उत्तम सृष्टि की है । इन्होंने कहीं शिष्ट हास्य और कहीं मृदुल व्यंग्य का सहारा लिया है । दण्डी ने ढोंगी तपस्वियों, कपटी ब्राह्मणों, धूर्तों, तथा दुश्चरित्रणी वेश्याओं का हास्यात्मक चित्रण किया है । 'दशकुमारचरित' में विहारभद्र नामक परिहासशील सेवक द्वारा राजाओं की कष्टप्राया दिनचर्या की खूब खिल्ली उड़ाई गई है । विहारभद्र का गुण भी हास्यव्यंजक है । दण्डी ने उसे परनारीपरायण, कुतूहली, चाटुकार, संवाद और सकल सुराई का ज्ञाता बताया है ।[1]

काव्यशास्त्रों में रसनिरूपण के सन्दर्भ में यत्र-तत्र हास्य के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं । साहित्यदर्पण में पण्डितों की सभा में वक्ताओं का आडम्बर रचकर निःशंक जाते हुए किसी मूर्ख को देखकर किसी परिहास प्रिय पुरुष की उक्ति है कि —

" गुरोर्गिरः पंचदिनान्यधीत्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च ।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान् समागताः कुक्कुटमिश्रपादाः ।।[2]

अर्थात् यह कुक्कुट मिश्र आ रहे हैं । सम्पूर्ण वेदान्त और सब विद्याएं इन्होंने अपने गुरु से पाँच दिन में ही पढ़ डालीं । इन्होंने न्याय सहित समस्त तर्कशास्त्र पुष्प की तरह सूंघ डाला ।

'लटकमेलक प्रहसन' में हास्य के सर्वाधिक उदाहरण मिलते हैं । इसके हास्य में कृत्रिमता का अभाव है । वक्रोक्ति आदि का सार्थक प्रयोग मिलता है ।

---

१. 'आकूतनारीपरायणः चतुरमग्निमतुलो नर्मभंगिविशारदः परमर्मान्वेषणापरः परिहासयिता परवादरुचिः पैशुन्यपण्डितः धनिकसंवादप्रयुक्तोपचारी सकलदुर्नीतोपाध्यायः कामतन्त्र कर्णधारः कुमारसेवको विहारभद्रोनाम ।'
— दण्डी-दशकुमारचरित, अष्टम उच्छ्वास, पृ० २१७, पृ०सं०

२. विश्वनाथ साहित्यदर्पण (शालग्राम शास्त्री), पृ० ११५, पृ०सं०

संस्कृत-साहित्य में सुभाषित के रूप में अनेक हास्योक्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें शब्द चमत्कार और अर्थचमत्कार दोनों पाया जाता है। सुभाषितरत्न-भाण्डागार में हास्यरस की ५६ उक्तियाँ हैं जो अपनी मधुरता के लिए संस्कृत जगत में विख्यात हैं। लक्ष्मी जी कमल पर शयन करती हैं। विष्णु भगवान क्षीरसागर में शयन करते हैं। शिव जी हिमालय पर शयन करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग खटमल के डर से चारपाई पर शयन नहीं करते हैं -

"कमले कमला शेते हरः शेते हिमालये ।
क्षीराब्धौ च हरिश्शेते मन्ये मत्कुणशङ्कया ॥"[1]

इसी ग्रन्थ के एक अन्य सुभाषित में जामाता को दसवाँ ग्रह कहा गया है।[2] यहाँ तक कि भगवान विष्णु की काष्ठ प्रतिमा देखकर उन्हें भी हास्य का आलम्बन बनाने से सुभाषितकार नहीं चूका।

"एका भार्या प्रकृतिमुखरा चंचला च द्वितीया,
पुत्रस्त्वेको भुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः ।
शेषः शय्या शयनमुदधौ वाहनं पन्नगारिः,
स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः ॥"[3]

"भगवान् विष्णु के दो स्त्रियाँ हैं, उनमें एक (सरस्वती) वाचाल है, दूसरी (लक्ष्मी) चंचल है। एक पुत्र कामदेव है जो भुवन विजयी और दुर्निवारणीय है। वे शेषनाग पर सोते हुए समुद्र में निवास करते हैं, वाहन उनका गरुड़ है। (सभी परस्पर विरोधी हैं।) इस प्रकार अपने घर के चरित्र को देखकर भगवान विष्णु सूखकर काठ हो गये हैं।"

---

१. सुभाषितरत्न भाण्डागार-पृष्ठ ३६५, श्लोक १३, अष्ट०सं० (निर्णय सागर प्रेस)

२. "सदा वक्रः सदा क्रूरः सदा पूजामपेक्षते ।
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमो ग्रहः ॥"
—सुभाषितरत्न भाण्डागार, पृ० ३६५, श्लोक १५

३. सुभाषितरत्न भाण्डागार- पृष्ठ ३६५

पंचतंत्र एवं हितोपदेश की लोक कथाओं में वाग्वैदग्ध्य का सुन्दर प्रयोग मिलता है । पंचतंत्र में दो मुखवाली चिड़िया की कथा हास्यात्मक है । एक चिड़िया के दो मुँह थे लेकिन शरीर और पेट एक ही था । एक दिन भ्रमण करते हुए एक मुँह ने अमृत पाया । तब दूसरे मुँह ने उसमें से आधा माँगा । उसके न देने पर दूसरे मुँह ने विष खा लिया परिणामतः दोनों चिड़ियाँ मर गईं ।

"कस्मिंश्चित् सरसि भारुण्डा नाम पक्षिणः प्रतिवसन्ति स्म । तेषां उदरं एवं ग्रीवे द्वे पृथक्-पृथक् भवतः । अथैतेषां मध्यात् कस्यापि पक्षिणः स्वेच्छया विचरत एकया ग्रीवया अवाप्य अमृतं प्राप्तं । अथ द्वितीयाभिहितम् ममाप्यर्धं देहि । अथ यदा तया न दत्तम् तदा द्वितीय ग्रीवया कोपात् कुतोऽप्यन्विष्य भक्षितं विषं एकोदरत्वात् मृत्युरभवत् ।"[१]

हितोपदेश में वाक्छल का सफल प्रयोग मिलता है । एक स्त्री के दो प्रेमी थे । एक दण्डनायक था दूसरा उसका ही पुत्र । एक दिन पुत्र उस स्त्री के यहाँ बैठा था उसी समय उसका पिता आ पहुँचा । स्त्री ने उस पुत्र को घर में छिपा दिया । थोड़ी देर बाद उस स्त्री का पति भी आ गया । पति को देखकर दण्डनायक घबड़ाया लेकिन स्त्री ने उसे चले जाने को कहा । दण्डनायक किवाड़ खोलकर चला गया । स्त्री के पति ने अन्दर प्रवेश करके दण्डनायक के आने का कारण पूछा । स्त्री ने उत्तर दिया -

" अयं केनापि कार्येण पुत्रस्योपरि क्रुद्ध । स च मार्ग्यमाणोऽपि अत्रागत्य प्रविष्टो मया कुसूले निक्षिप्य रक्षितः । तत्पित्रा अन्विष्यात्र न दृष्टः । अतएवायं दण्डनायकः क्रुद्धः एव गच्छति ।"[२]

अर्थात् दण्डनायक का द्वन्द्व उसके पुत्र से हो गया । पिता के क्रोध से बचने के लिए पुत्र यहाँ आया । उसको मैंने कुठले के पीछे छिपा दिया है । दण्डनायक ने यहाँ आकर किवाड़ इसलिए बन्द कर लिये जिससे उसका पुत्र भाग न सके । खोज करने पर जब

---

१. दि पंचतन्त्र (डॉ० आरल्ड हर्टेल), पृ० १२७, सन् १९०८, आक्सफ़ोर्ड यूनि०

२. हितोपदेश - नारायण पंडित, पृ० ६८, हि०सं०

पुत्र न मिला तो वह क्रोधित होकर जा रहा है । इस पर स्त्री का पति उसकी व्याकुलता पर प्रसन्न हो गया ।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में हास्य अपने विविध रूपों में प्राप्त अवश्य हो जाता है किन्तु इसकी उतनी व्यंजना न हो सकी । जितनी अन्य रसों की हुई है । इसीलिए संस्कृत साहित्य में इस रस का प्राय: अभाव मिलता है ।

भारतेन्दु पूर्व के नाटकों में हास्य और व्यंग्य

भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी नाटकों में हास्य-व्यंग्य का अभाव माना जाता है । भारतेन्दु के पूर्व नाटकों की कोई सर्वमान्य परम्परा नहीं थी कारण स्पष्ट है कि उस समय हिन्दी नाट्य साहित्य के अभाव रंगमंच की कोई व्यवस्था नहीं थी । परिणामस्वरूप नाटकों का प्रणयन कम हुआ । नाममात्र के लिए अनेक अनेक नाटकों की सूची प्रस्तुत की जा सकती है । संस्कृत नाटकों की परम्परा के बाद हिन्दी साहित्य में प्राणचन्द्र चौहान का "रामायण महानाटक" (रचनाकाल सं० १६६७), केशवदास का "विज्ञान गीता" (रचनाकाल १७ वीं शताब्दी) , कवि कर्णपूर गोस्वामी का "चैतन्य चन्द्रोदय" (सं० १६७२) ,मुकुंद शुक्ल का "धर्मविजय" (सं० १६५२), नेवाज का "शकुन्तला" (सं० १७२७), लच्छीराम कृत" करुणाभरण-नाटक एवं"ज्ञानानन्द नाटक" (१७२७ ई०), आलमकृत"माधवानल कामकन्दला" (१८ वीं शताब्दी), देवकवि कृत"देवमायाप्रपंच" (१८ वीं शताब्दी), जीवानन्द मैथिल गोकुलनाथ कृत" अमृतोदय", यशवंतसिंह कृत" सीतारामचरित" (१७३८ ई०) रघुराम नागर कृत"सभासार" (१७५७ वि०), देवदास का "देवमाया प्रपंच" (१८ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध), सोमनाथ ठाकुर का"माधवविनोद नाटक" (१८०६ वि०) हरिरामप्रेमसागर का"जानकीरामचरित नाटक" (१९वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) लक्ष्मणशरण मधुकर का "रामलीलाविहार नाटक" एवं "मौर्यराज्य " (रचना काल एवं लेखक का नाम अस्पष्ट है) आदि इत्यादि नाटकों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें हास्य-व्यंग्य के सैद्धान्तिक विश्लेषण का अभाव पाया जाता है । यत्र-तत्र हास्यरस के प्रयोग अवश्य मिलते हैं ।

लच्छीराम कृष्णजीवन कृत" करुणाभरण नाटक" का रचनाकाल १७२१ संवत् माना जाता है । यह नाटक मूलत: पद्य में लिखा गया है । इसकी कथा वस्तु

अंकों में विभक्त है और अन्त में परिशिष्ट भी दिया गया है । इस नाटक का प्रथम प्रकाशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा डॉ० योगेन्द्र सिंह के सम्पादन में हुआ ।

एक बार चन्द्रग्रहण पड़ने पर सभी लोग स्नानार्थ कुरुक्षेत्र जा रहे थे । श्रीकृष्ण के मन में भी वहाँ जाने की इच्छा हुई । उन्होंने द्वारिका के निवासियों से कुरुक्षेत्र चलने को कहा । हाथी, घोड़ा, रथ से सज्जित सारी द्वारिका कुरुक्षेत्र के लिए चल पड़ी । मार्ग में गाय, ~~रथ-के~~ गोपिका, माता-पिता, एवं सखियाँ का कृष्ण के बीच वार्तालाप कराया गया है । यत्र-तत्र गोपियों के प्रसंग में हास्य का प्रयोग किया गया है ।

कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण के साथ ही साथ एक ग्वाल भी गया जो साक्षात् तमाशा था । उसकी वेश-विन्यास भी हास्यात्मक थे –

'तहाँ इकु ग्वाल तमासे गयौ । आइ चौहट ठाढौ भयौ ।
सीस बैठवा फेंटा बाँधि । हाथ लकुटिया काँवरि काँधि ।
तन मन धातु रतन्नियाँ पहिरे । गुंजमाल बहरारंग गहरे ।।'[1]

ग्वाल ने अपनी को कृष्ण का मित्र बताया जिसे सुनकर यशोदा तथा गोपियों को हँसी आ गई –

' इक कुबरा हम मेरौं गयौ । आइ द्वारिका राजा भयौ ।।
कृष्न नाम उनको अब लयौ । लैत नाम जादौ हँसि दयो ।।
जादौ कही राधिके हासी । हम जानत तुम हो वृजवासी ।।'[2]

इस नाटक में नाटकीयता का अभाव है ।

गिरिधरदास कृत 'नहुष' नाटक हिन्दी का प्रथम नाटक माना जाता है । नाटक की कथा इन्द्र को ब्रह्महत्या का दोष लगाना तथा पुनः इन्द्रत्व की प्राप्ति करना है । इसी बीच इन्द्रासन को रिक्त देखकर उस पद पर नहुष को प्रतिष्ठित

---

१. लछीराम – करुणाभरण नाटक, पृ० ३२ अंक १, छन्द ६-७,पृ०सं०
२. वही, छन्द १०-११,पृ० ३३

किया जाता है । नहुष इन्द्रासन को प्राप्त करके स्वतन्त्र कार्य करने लगता है इसीलिए वह बाद में पदच्युत कर दिया जाता है । इन्द्र भी ब्रह्महत्या पर पश्चाताप प्रकट करता है । यद्यपि यह नाटक पूर्णतः शृंगार रस का प्रतिनिधि है । युद्धों के प्रसंग में वीररस की सृष्टि भी हुई है किन्तु वैवाहिकपति इन्द्र द्वारा काली-स्तुति, एवं नहुष के स्वतंत्र कार्यों के परिणामस्वरूप यत्र-तत्र हास्य देखा जा सकता है भले ही वह सैद्धान्तिक हास्य का प्रतिनिधि न हो । इन्द्र द्वारा काली से भयभीत होना हास्यात्मक है ।

" मेरे प्रान मेरी प्रान लेन याही आवति है,
मूल लिए कौप भरी प्रलय कपाली सी ।
कुमति कलंकिनी कुवासिनी कुवेश कूर
काल-सी कराल कालराति की सी काली सी ।।"[१]

महाराजा लक्ष्मण सिंह कृत 'शकुन्तला नाटक' महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुवाद है किन्तु नाटककार ने यत्र तत्र आवश्यक परिवर्तन भी कर दिया है । नाटकीय तत्वों के आधार पर यह एक सफल नाटक माना जा सकता है । इस नाटक में महाराज दुष्यन्त तथा शकुन्तला के गान्धर्व विवाह एवं प्रेमलीला का वर्णन है । नाटक में शृंगार रस की प्रधानता है । यत्र-तत्र प्रियंवदा, अनुसूया, एवं शकुन्तला के प्रति कहे गये कथनों में स्मित हास्य प्रकट होता है जो सहज है ।[2] नाटक के प्रथम अंक में ही हास्य का उदाहरण प्राप्त होता है जो 'स्मित' की सीमा का अतिक्रमण नहीं करता —

"प्रिय० —(हंसकर) सखी, अनसूया, तू जानती है शकुन्तला वन ज्योत्स्ना को क्यों ऐसे चाव से निहारती है ।
अन० —नहीं सखी मैं नहीं जानती, तू बतला है ।

---

१. गिरिधर कविराय - नहुष, प्र०सं०, पृ० २५, संवत् २०११ वि०
२. लक्ष्मण सिंह - शकुन्तला नाटक, पृ० ६४

प्रिय०-इसलिए कि जैसे वन ज्योत्स्ना को अपने समान वृक्ष मिला, मुझे
भी मेरे समान वर मिले।
शकु० - यह तो तू अपना मनोरथ कहती है।"[१]

शकुन्तला और सखियों का वार्तालाप स्मित की सीमा का अतिक्रमण नहीं करता। यह हास्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

बंगला नाटकों में हास्य और व्यंग्य -

बंगला साहित्य पर संस्कृत साहित्य का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। बंगला भाषा तथा साहित्य के सभी पक्ष संस्कृत साहित्य की प्राचीन गरिमा को आज भी संजोये हुए हैं। बंगला के प्रारम्भिक काल में नाटक साहित्य का अभाव था किन्तु बाद में बंग साहित्य में नाटकों का भी प्रणयन हुआ। नाटककारों में द्विजेन्द्र-लाल राय उल्लेखनीय हैं। उनकी टक्कर के कम नाटककार प्राप्त होते हैं। राय अपनी प्रतिभा द्वारा बंगला नाटकों में एक क्रान्तिकारी युगान्तर लाए। डी०एल० राय के नाटकों में हृदय को झकझोर देने वाली और हृत्तन्त्री को झंकृत कर देने वाली आश्चर्यजनक क्षमता है। उत्कृष्ट कोटि का कौटुम्बिक प्रेम जातीय प्रेम, विश्वप्रेम इनके नाटकों में देखा जा सकता है। मानव स्वभाव का सूक्ष्म चित्रण इनके नाटकों में मिलता है। हास्य-व्यंग्य के चित्रण में उन्होंने बड़े कौशल से काम लिया है। उनके नाटक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक अनेक प्रकार के हैं। राय ने प्रहसनों की रचना भी की है जिनमें हास्य-व्यंग्य का शिष्ट-विशिष्ट रूप प्राप्त होता है। डी०एल० राय की विनोदप्रियता प्रसिद्ध है। हँसी और आँसू, सरलता और गाम्भीर्य, मधुर और करुणा का एकत्र समावेश करने में वे कुशल हैं।

'सूम के घर धूम' द्विजेन्द्रलाल राय के 'पुनर्जन्म' प्रहसन का हिन्दी रूपान्तर है। दौलतराम एक नगर के सूदखोर सेठ हैं जो अधिक ब्याज लेने के आदी हैं। उनकी सूदखोरी से परेशान होकर बिहारी, मोहन, नन्दू आदि व्यक्ति उसके मार जाने का

---

१. लक्ष्मण सिंह- शकुन्तला नाटक, पृ० ६४

ढिंढोरा पीटते हैं। सेठ दौलतराम की कुण्डली में लिखा रक्खा है कि वैशाख बदी चौथ को साँप काटने से उनकी मृत्यु हो जायगी। वैशाख बदी चौथ को मोहन आदि सेठ की मृत्यु का हल्ला करते हैं और कृत्रिम शव को जला देते हैं। सेठ की मृत्यु का एक प्रमाण-पत्र भी डाक्टर से ले लेते हैं। इधर दौलतराम अपने जीवित रहने का प्रमाण देकर असामियों से सूद माँगते हैं। असामी उसे मृत घोषित करते हुए सूद देने से इन्कार करते हैं और सेठ को ठग बताकर पुलिस के हवाले कर देते हैं। प्रमाण-स्वरूप दौलतराम की कुण्डली माँगी जाती है जिसमें वैशाख बदी चौथ को उनकी मृत्यु का उल्लेख रहता है। असामी कर्ज चुकाने से छूट जाते हैं और सेठ दौलतराम मूर्ख बन जाते हैं। असामी और सेठ के माध्यम से इस प्रहसन में हास्य का सुन्दर चित्रण किया गया है। दौलतराम और बिहारी का निम्नवार्तालाप हास्यात्मक है —

"बिहारी- आपके सामने ही वे लोग सेठ जी की लाश को मसान ले गये और फिर आपको सेठ दौलतराम होने में सन्देह नहीं होता।

दौलत०— हाँ, ले तो गये हैं (सिर पकड़ कर) मुझे चक्कर आ रहा है।

(अखबार पढ़ते-पढ़ते नन्दू का प्रवेश)

"मर गये लाला दौलतराम। जो थे खूब बहुत बदनाम।
लेते बेशुमार थे सूद। वैसे हुए नेस्त नाबूद।
जोंक बना था वह मनहूस। गरीब-रक्त-धन लेता चूस।
कष्ट उठाकर था धन जोड़ा। मरने पर सब जाकर छोड़ा।
जिनको दया नहीं आयेगी। सेठ किये का फल पायेंगे।।"[1]

दौलतराम की मृत्यु से उनकी पत्नी मुन्नी रोने बिलखने लगती है। अन्त में दौलतराम जंगल में जाने के लिए उद्यत हो जाते हैं।

इस प्रहसन में कंजूस और सूदखोर व्यक्तियों पर व्यंग्य का प्रयोग करते हुए उन्हें हास्य का आलम्बन बनाया गया है। दौलतराम अन्त में अपनी गलतियों पर पश्चाताप करता है।

---

१. द्विजेन्द्रलाल राय, सूम के घर धूम (अनु० रूपनारायण पाण्डेय), पृ० १४-१५, पं०सं०

'उसपार' नाटक 'पर पारे' का अनुवाद है। इस नाटक का नायक भोलानाथ पुराने ढंग का ज़मीन्दार है। वह परदुःखकातर, धार्मिक, कर्तव्यपरायण और दाता है। वह बहुत सरल एवं स्नेह से दुर्बल हृदयवाला व्यक्ति है। प्रेमशंकर उसे नित्यप्रति सावधान करता है किन्तु भोलानाथ उसे मजाक समझकर टाल देता है और अन्त में सब कुछ खोकर हास्य का आलम्बन बन जाता है। इस नाटक में वेश्यागमन पर व्यंग्य किया गया है। भगवानदास शिक्षित और मेधावी व्यक्ति हैं किन्तु उसके चरित्र में नैतिक बल का अभाव है। वह एक स्त्री के लिए अपनी माता का निरादर करता है और कुछ समय बाद एक वेश्या के लिए स्त्री को भी छोड़ देता है। वेश्या द्वारा उसे अपेक्षित प्रेम नहीं मिल पाता परिणामस्वरूप वह वेश्या की भी हत्या कर देता है। नाटक में प्रयुक्त भवानीप्रसाद पात्र दिल्लगीबाज और व्यंग्य प्रिय है। उसकी दिल्लगी विनोदयुक्त और व्यंग्य हृदयस्पर्शी है।

'अहल्या' नाटक में डी०एल० राय ने चरित्रहीन व्यक्तियों पर व्यंग्य प्रस्तुत किया है। इसमें समाज में व्याप्त व्यभिचार और भ्रष्टाचार पर हास्य का प्रयोग किया गया है। इस नाटक में अहल्या अपनी इच्छा से कामवश होकर व्यभिचार में प्रवृत्त हो जाती है। इस नाटक की कथावस्तु काल्पनिक है। अहल्या के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने बेजोड़ विवाह के दुष्परिणामों का पर्दाफाश किया है। चिरंजीत और माधुरी का चरित्र सर्वथा कल्पित है। इन पात्रों की अवतारणा केवल हास्य प्रदर्शित करने के लिए की गई है। चिरंजीत बुढ़िया और बुड्ढे का उल्लेख हास्य प्रदर्शन हेतु ही किया है। बुढ़िया कट्टर वैष्णव एवं उसका पति शाक्त था। दोनों में विवाद होने पर लाठियाँ चलने लगती हैं। बुड्ढा घर से भाग जाता है और एक वर्ष बाद पुनः लौटकर आता है तब दोनों में प्रेम हो जाता है।

> " साल भरे के बाद कहीं से फिर आया बुड्ढा घर को।
> बुढ़िया तब तो रांध रसोई रखती भूखी दुपहर भर को।
> झगड़ा मिटा प्रेम वैसा ही देख पड़ा उनके दम्यान।
> बुढ़िया मिस्सी मलती, बुड्ढा साबुन मल करता स्नान ।।"[1]

---

१. द्विजेन्द्रलाल राय- अहल्या, द्वि०सं०,पृ० ५१, सन् १९३६

द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों के बारे में प्रसिद्ध कवि और समालोचक देव-कुमार राय का अभिमत है -"बंगाल में ऐसा कोई भी कवि नहीं हुआ जो हंसी गानों में, नाट्यसाहित्य में, व्यंग्य कविता में और जातीय भावों को दीप्त करने में द्विजेन्द्र की बराबरी कर सके। उनकी रचना कवित्व से कमनीय मौलिकता से उज्ज्वल, विशुद्ध रुचि परायणता से मनोज्ञ, और उद्भावों से परिपूर्ण है। वे एक साथ कवि, परिहासरसिक, दार्शनिक, समालोचक, प्रबन्धलेखक नाट्यकार थे।"[१]

---

१. द्विजेन्द्रलाल राय-पुत्र राय-रुस्तम, प्रथमबार, पृ० ६५

चतुर्थ अध्याय

भारतेन्दुकालीन नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(१८६५ ई० – १९०५ ई०)

(परिस्थितियाँ, हास्य-व्यंग्य — सामाजिक सुधार सम्बन्धी हास्य-व्यंग्य, वर्तमान अध:पतन के प्रति क्षोभ, भ्रष्ट राजकीय व्यवस्था के प्रति व्यक्त हास्य-व्यंग्य, शासन, न्याय, पुलिस, घूस, नौकरी आदि की अव्यवस्था पर हास्य, सामाजिक भ्रष्टाचार, मदिरापान, वेश्यागमन अन्धविश्वास पर व्यक्त हास्य-व्यंग्य, भारतेन्दुयुगीन अन्य व्यंग्यकार, निष्कर्ष ।)

अध्याय-४

भारतेन्दुकालीन नाटकों में हास्य और व्यंग्य(१८६५-१९०५)

परिस्थितियां

सन् १८५७ की क्रान्ति के अनन्तर भारत के शासन पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया। भारतीय जनता में व्याप्त असन्तोष, अविश्वास तथा अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा एवं कटुता को दूर करने के लिए महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा-पत्र निकाला जिसमें भारतीय जनता के उदारता एवं धार्मिक सहिष्णुता का आश्वासन दिया। यद्यपि इस घोषणा-पत्र से भारतीय प्रारम्भ में तो आश्वस्त रहे किन्तु धीरे-धीरे यह विक्टोरिया की राजनीतिक चाल सिद्ध हुई। महारानी विक्टोरिया ने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए जनता के सहयोग की आशा से ही यह कदम उठाया था उसमें दया एवं विश्वास आदि का अभाव था। इसलिए ब्रिटिश सरकार की नीति पूर्ववत् बनी रही।

देशभर में अंग्रेजों के पूर्ण छा जाने के कारण हिन्दू धर्म की दशा शोचनीय हो गई। हिन्दू धर्म के सूत्रधार ब्राह्मण, पुरोहित और पण्डों के रूप में परिवर्तित हो गये। दान लेना ही ब्राह्मणों का एकमात्र कर्तव्य था। अन्धविश्वास, धर्माडम्बर, पाखण्ड, अभिचार, भूतप्रेतादि में विश्वास आदि ने धर्म को पूर्णरूपेण कुत्सित कर दिया था। धर्म के बहाने अनेक पापाचार बढ़ रहे थे। हिंसा की प्रधानता बढ़ती जा रही थी। दूसरी ओर आर्थिक कठिनाइयों तथा ब्राह्मणों के अध:पतन के कारण समाज का नैतिक स्तर गिर चुका था। बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, जातिपाँति, छुआछूत, आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों ने समाज की आत्मा को कुण्ठित कर दिया था। सतीप्रथा एवं भ्रूणहत्या जैसी क्रूरप्रथायें भी समाज में प्रचलित थीं। समाज का नैतिक स्तर गिर चुका था। स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी।

अंग्रेजी शासन के कारण देश की आर्थिक दशा छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। किसानों का लाभांश करों के रूप में चला जाता था। लार्ड रिपन जैसे उदार

शासकों ने कृषि की दशा सुधारने का प्रयास किया, किन्तु इससे किसानों का कोई भी लाभ नहीं हुआ। देश में विदेशी वस्तुओं के विक्रय से यहां के उद्योग-धन्धों को काफी क्षति उठानी पड़ी। देश का सारा धन विदेश जाता रहा। लम्बे काल तक होने वाले युद्धों का व्यय-भार भी भारत को उठाना पड़ा। विदेशी सरकार की अनीति तथा शोषण ने भारतीय जनता को पूर्णरूपेण खोखला कर दिया था।[१]

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार से देश में बेरोजगारी बढ़ गई थी। इस काल में महामारी तथा अकाल के कारण देश के असंख्य लोग कालकवलित हो गये।

हास्य-व्यंग्य - देश की ऐसी विषम दुरवस्था के बीच भारतेन्दु का उदय हुआ। अंग्रेजों द्वारा लूटखसोट के कारण सोने की चिड़िया के पंख टूट चुके थे। ऐसे समय में भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने देश को आशा का सन्देश देकर अपने नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीयता का आवाहन किया साथ ही साथ सामाजिक आर्थिक, नैतिक बुराइयों की निन्दा की। अंग्रेजी साम्राज्य की लूट खसोट तथा देश की दुर्दशा को हास्य-व्यंग्य का आलम्बन बनाया। भारतेन्दु युग के नाटककारों ने समाज में होने वाली हिंसा, विलासिता, बाह्याडम्बर के आधार पर प्रहसनों की रचना करके समाज-सुधार का कार्य किया। "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके युग के नाटककारों ने अपने चारों ओर के जीवन तथा भारतीय पुराणों एवं इतिहास से सम्वेदना स्वीकार की और जीवन को पुष्ट कर जन-मन की वीणा से नवीन स्वर झंकृत करने का सराहनीय प्रयास किया।"[२] भारतेन्दुयुग के नाटककारों ने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। उनके नाटकों में जिन्दादिली का आधिक्य है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी नाटक साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी साहित्य में नाटक परम्परा का अभाव था। अतः

---

१. पामदत्त, इंडिया टुडे- पृ० २०७, (१९४९ ई०) संस्करण

२. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- भारतेन्दु की विचारधारा, पृ० २९३ पृष्ठ सं०

भारतेन्दु के समक्ष नाटकों का कोई भी आकार-प्रकार नहीं था । उस काल में अंग्रेजों ने भारत पर बहुत अत्याचार किये थे । समाज में भी अनेक पाखण्ड और भ्रष्टाचार प्रचलित थे । देश में उत्तरोत्तर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव बढ़ता जा रहा था । धार्मिक सामाजिक आदि दृष्टियों से समाज पतनोन्मुख था । "सच तो यह है कि मानसिक अध्यवसाय रहने पर भी भारतवासी जड़ पदार्थ में परिणत हो गये थे । जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त पण्डे, पुरोहित, ज्योतिषी, गुरु आदि जैसे अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित ब्राह्मण हिन्दू समाज पर छाये हुये थे । इसके साथ ही साथ विधवा विवाह निषेध, बहुविवाह, खानपान, सम्बन्धी प्रतिबन्ध, समुद्रयात्रा के कारण जातिबहिष्कार नशाखोरी, पर्दा, स्त्रियों की हीनावस्था, धार्मिक साम्प्रदायिकता, अफीम खाना आदि अनेक कुप्रथाओं का चलन हो गया था ।"[१] नये अंग्रेजी पढ़े लोग कालेजों में शेक्सपीयर, मिल्टन आदि की रचनाएं पढ़ते थे किन्तु उनके घरों में पण्डे पुरोहितों की आज्ञाओं का पालन होता था । मूर्तिपूजा और बाह्याडम्बर की प्रधानता थी ।

समाज में फैली हुई इन्हीं उभय विचारधाराओं के कारण प्रहसनों का जन्म हुआ । प्रहसन में विदूषक का विशेष स्थान है । हास्योत्पादन के लिए विदूषक को अपनी साज-सज्जा एवं वेष-भूषा का विशेष ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि वह अपनी वेषभूषा को परिवर्तित करके हास्य का सृजन करता है । विदूषक अपने कथन द्वारा हास्य की सृष्टि करता है । वह व्यंग्य, मजाक, उपहास आदि के द्वारा दर्शकों को मन्त्रमुग्ध करता है । संस्कृत तथा अंग्रेजी के नाटकों में विदूषक की प्रधानता है । अंग्रेजी नाटकों में विदूषक अपने वेष-विन्यास से सामाजिक को आकृष्ट करता है । वह सफल गायक एवं मदिराप्रेमी होती है तथा कारुणिक घटनाओं को हास्य-व्यंग्य के माध्यम से आनन्द में परिवर्तित कर देता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित "विषस्य विषमौषधम्" एक भाण है किन्तु उसमें वर्णित भण्डाचार्य की स्थिति विदूषक जैसी है ।

---

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय -भारतेन्दु की विचारधारा, पृष्ठ २६३ प्र०सं०

"भण्डाचार्य— बड़ा धन्य है सरकार ! यह बात कहीं नहीं है । दूध का दूध, पानी का पानी । और कोई बादशाह होता तो राज्य जप्त ही जाता । यह उन्हीं का कलेजा है । हे ईश्वर जब तक गंगा, यमुना में पानी है तब तक उनका राज स्थिर रहे । अहा ! हमारी तो पुरोहिती फिर जगी हमें मल्हारराव से क्या काम ? हमें तो उस गद्दी से काम है " कोउ नृप होय हमें का हानी ।" धन्य अंगरेज राज्य, युधिष्ठिर का धर्मराज्य, इस काल में प्रत्यक्ष कर दिखाया, अहा हा ।"[1]

राष्ट्रोत्थान की चेतना से इस प्रकार का कथोपकथन कहलवाना हिन्दी में भारतेन्दु का अभिनव प्रयोग है ।

हिन्दी नाटकों में हास्य-व्यंग्य की स्थिति भारतेन्दु के नाटकों से ही मिलती है । भारतेन्दु युग प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता का केन्द्रबिन्दु है । यह काल हास्य-व्यंग्य का आकर है । भारतेन्दुयुग में समाज कुरीतियों से ग्रस्त था । भारतेन्दु ने इस सामाजिक अवनति का कटु अनुभव किया । भारतेन्दु एक ओर नवचेतना से प्रभावित थे दूसरी ओर देश की विषमता , गुलामी उन्हें कष्टकारक प्रतीत हो रही थी ।

भारतेन्दु जी रससिद्ध साहित्य के जन्मदाता थे । प्रेम की स्वच्छ धारा उनकी रसप्रवाहिनी लेखनी से प्रसूत हुई , करुणा की बदली बन कर उनका प्रेमी हृदय बरसा, शृंगार की रसभीनी पिचकारियां उनके करकमलों से साहित्य में छूटीं और हास्य की गुदगुदी फुलझड़ियां भी भारतेन्दु जी ने छोड़ीं ।[2] भारतेन्दु जी हास्य-व्यंग्य के प्रसिद्ध लेखक और प्रहसनकार थे । उनके प्रहसन शिष्ट व उच्चकोटि के हैं । प्रेमयोगिनी, नील देवी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम् अन्धेरनगरी , भारत दुर्दशा इत्यादि नाटक हास्य की सफल व्यंजना करते हैं । भारतेन्दु ने प्रहसनों की भी रचना की थी । भारतेन्दु के प्रहसनों में शिष्ट संयत एवं लोट-पोट कर देने वाला हास्य है । उनमें तीखी व्यंजनाएं मिलती हैं ।

---

१. विषस्य विषमौषधम् - भारतेन्दुग्रन्थावली, पृ० ३६७,प्र०सं०

२. जयनाथ "नलिन" - हिन्दी नाटककार , द्वि०सं०, पृ० ५३

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" भारतेन्दु द्वारा लिखित प्रथम प्रहसन है । इसका रचनाकाल १८७३ ई० है । इसी समय हिन्दी नई चाल में ढली । उसमें नये-नये व्यंग्य प्रस्तुत किये गये ।

इस प्रहसन में चार अंक हैं जिनमें भारतेन्दु जी ने धर्म के नाम पर हिंसक , दुराचारी, अन्यायी पथभ्रष्ट पाखण्डियों का व्यंग्यात्मक चित्र खींचने का प्रयास किया है । प्रथम अंक में पुरोहितों पर अच्छा व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है । इस अंक में बलि, जुआ, मैथुन, मदिरा आदि को न्यायसंगत ठहराया गया है । पुरोहित, चोबदार, मन्त्री राजभवन में बैठकर वादविवाद करते हुए मांस भक्षण को शास्त्र-विहित सिद्ध करने का प्रयास करते हैं । द्वितीय अंक में भारतेन्दु जी ने विदूषक द्वारा धूर्त वैष्णवों की खिल्ली उड़वाई है जिसमें वाग्वैदग्ध्य का उत्तम उदाहरण मिलता है :

"विदूषक — क्यों वेदान्ती जी आप मांस खाते हैं या नहीं ?
वेदान्ती — तुमको इससे क्या प्रयोजन ?
विदूषक — नहीं कुछ प्रयोजन तो नहीं, हमने इस वास्ते पूछा है कि आप तो वेदान्ती अर्थात् बिना दांत के हैं अतः भक्षण कैसे करते होंगे ?"[1]

भारतेन्दु के समय में वेदान्ती लोग धर्म की आड़ में मांस भक्षण करते थे । भारतेन्दु जी ने वाक्छल द्वारा उन वेदान्तियों के ऊपर व्यंग्य प्रस्तुत किया है ।

प्रहसन के तृतीय अंक में पुरोहित जी का आगमन होता है । वह अपने हाथ में मदिरा की बोतल लिये हुए तथा माला धारण किये हुए उन्मत्त अवस्था में राजमार्ग पर आते हैं । वे मद्य-पान और मांसभक्षण का प्रबल समर्थन करते हैं । अन्ततः मदिरापान करके बेहोश होकर वहीं गिर पड़ते हैं । राजा एवं मन्त्रीगण प्रलाप करते हुए नशे में चूर होकर वहीं गिर पड़ते हैं ।

प्रहसन के अन्तिम अंक में यमलोक का दृश्य है जो और अधिक व्यंग्यात्मक है । चित्रगुप्त , राजा, पुरोहित, मन्त्री, गंडकीदास, शैव और वैष्णवों को पकड़कर यम के पास प्रस्तुत करता है । चित्रगुप्त कर्मानुसार फल देते हुए पाखण्डियों को नरक

---

१. "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ७६,७७, पृ०४०

भोगने की अनुमति प्रदान करता है । शैव तथा वैष्णवों को उनकी अकृत्रिम भक्ति पर कैलाश तथा बैकुण्ठ में जाने की अनुमति देता है ।

प्रस्तुत प्रहसन चरित्रप्रधान है । इसका उद्देश्य सामाजिक सुधार है । यमराज के सम्मुख चित्रगुप्त ने ऐसा व्यंग्य प्रस्तुत किया है -"महाराज ये गुरु लोग हैं, इनके चरित्र कुछ न पूछिए । केवल दंभार्थ इनका तिलकमुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा । कभी भक्ति से मूर्ति को दण्डवत न किया होगा पर मन्दिर में जो स्त्रियाँ आईं उन्हें सर्वदा तकते रहे । महाराज इन्होंने अनेकों को कृतार्थ किया है और इस समय तो मैं भी रामचन्द्र जी का श्रीकृष्ण दास हूँ पर जब स्त्री सामने आवे तो उससे कहेंगे मैं राम तुम जानकी मैं कृष्ण तुम गोपी , और स्त्रियों को ऐसी ही मूड़ कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं ।"[१]

उक्त कथन में वक्रोक्ति का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है । भारतेन्दु जी ने बलिप्रथा का विरोध करते हुए साथ में अंग्रेजी राज्य और उसके समर्थकों की व्यंग्यस्तुति की है । मन्त्री की व्यवस्था के बारे में चित्रगुप्त से कहलाया गया है कि --प्रजा पर कर लगाने में तो मन्त्री जी ने पहले ही सम्मति प्रदान कर दी परन्तु प्रजा की सुख-सुविधा का तनिक भी ध्यान नहीं दिया ।

इस नाटक में समाज की निन्दनीय बातों पर तीव्र आघात है । भारतेन्दु ने इस नाटक में पाश्चात्य कामेडी की शैली का अनुकरण किया है । उन्होंने तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक समस्या को लेकर उसकी कुरीतियों पर कटु व्यंग्य किया है । धर्म का आश्रय लेकर हिंसा करने वाले लोगों की तीव्र आलोचना की है । व्यंग्यात्मक कटाक्षों में सामाजिक एवं धार्मिक पाखण्ड से वितण्डावाद का नग्न चित्रण प्रस्तुत किया है । वेद, शास्त्र, पुराणादि के अर्थों की भ्रान्ति द्वारा हास्य की अवतारणा की है --

"लोके व्यवायामिषमद्य सेवा,
नित्यास्तिजन्तोर्नहि तत्र चोदना ।"[२]

---

१. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति - भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ८४.८०, पृ० सं०

२. ब्रजरत्नदास-भारतेन्दु ग्रन्थावली (प्रथम खंड), पृ० ७०, प्र० सं० २००७

अर्थात् 'संसार में मैथुन, मांस तथा मद्य की सेवा जीवमात्र के लिए अनिवार्य है । उसके लिये कोई नियन्त्रण नहीं है ।' यह कथन भागवत में लिखित बताया जाता है । पुरोहित और मन्त्री के कथन में इसी प्रकार विवादास्पद मनगढ़न्त सूत्रों का उल्लेख है जिसमें असंगति है किन्तु व्यंग्य की गरिमा निहित है । भिन्न कथोपकथन में व्यंग्यात्मक व्यंजना का परिचय मिलता है ।

"पुरोहित — सच है और देवी की पूजा नित्य करना इसमें कुछ सन्देह नहीं है और जब देवी की पूजा भई तो मांस-भक्षण या ही गया । बलि बिना पूजा होगी नहीं और जब बलि दिया तब उसका प्रसाद अवश्य लेना चाहिए । अभी भागवत में बलि देना लिखा है जो वैष्णवों का परम पुरुषार्थ है ।

धूपोपहार बलिभिः सर्वकामवरेश्वरी ।[1]

मन्त्री — और "पंच पंचनखा भक्ष्या" यह सब वाक्य बराबर से शास्त्रों में कहते आये हैं ।

पुरोहित — हाँ, हाँ जी इसमें भी कुछ पूछना है । अभी साक्षात् मनु जी कहते हैं—
न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।[2]

और जो मनुजी लिखते हैं —
स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ।"[3]

उक्त कथोपकथन से ध्वनित होता है कि नाटककार ऐसे घृणित विचारधारा वाले लोगों का उपहास करना चाहता है ।

प्रस्तुत नाटक हिन्दू जाति की सामाजिक कुप्रथाओं पर तीखा व्यंग्य है । भोग-वैभव की लालसा के वशीभूत होकर पुरोहितों को धर्म के विरुद्ध व्यवस्था देनी पड़ती है । धर्म के रूप में अव्यवस्था का साम्राज्य देखकर स्वार्थलोलुप मन्त्री भी छल-

---

१. सब इच्छा को पूर्ण करने वाली भगवती की धूप, उपचार, बलि से पूजा करनी चाहिए ।

२. मांस खाने, मदिरा पीने तथा मैथुन में दोष नहीं है ।

३. भारतेन्दु ग्रन्थावली (पु०खं०), पृ० ७१

कष्ट करता है । वह राजा को कुमन्त्रणा ही देता है । नाटककार ने समाज के धार्मिक ठेकेदारों का यथार्थ व्यंग्यचित्र प्रस्तुत करते हुए उन्हें चुनौती भी दी है । भारतेन्दु जी ने कहीं-कहीं सामाजिक व्यंग्यों के कटाक्ष से हटकर व्यक्तिगत आक्षेपों की ओर भी इंगित किया है । तत्कालीन अंग्रेजी राज्य की चाटुकारी के उपलक्ष्य में उपाधि पाये हुए लोगों के प्रति भी व्यंग्य किया है -

"चित्रगुप्त -महाराज । सरकार अंग्रेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको "स्टार आफ इंडिया" की पदवी मिलती है ।

यमराज- अच्छा , तो बड़ा नीच है, क्या हुआ मैं तो उपस्थित ही हूँ ।
अन्त: प्रच्छन्न पापानां शास्ता वैवस्वतो मनु ।"[१]

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" भारतेन्दु का उत्कृष्ट कोटि का प्रहसन है । प्रहसन-गत हास परिहास बौद्धिक है । सामाजिक कुरीतियों का तर्कों में व्यंग्य रूपक देना भारतेन्दु की कलात्मक सिद्धहस्तता का परिचायक है । इसे भारतेन्दु युग का व्यंग्य चित्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

"अन्धेर नगरी" भारतेन्दु जी का दूसरा प्रहसन है जिसका रचना काल १८८१ ई० है । इसमें छ: अंक है । नाटक की कथावस्तु से ही शीर्षक की सार्थकता व्यक्त हो जाती है । "अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा" से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इस नाटक में अन्याय से परिपूर्ण राज्य में मूर्ख शासक की हास्यपूर्ण व्यंजना प्रकट की गई है । इसमें जाति पाँति, राज्य व्यवस्था, उच्चवर्गों की आलस्यप्रियता एवं चापलूसी की तीव्र व्यंग्यात्मक आलोचना की गई है ।

यह नाटक एक ऐसे अन्यायी राजा के चरित्र को लेकर लिखा गया है जिसके राज्य में कोई समुचित व्यवस्था नहीं है । उस राज्य में सभी वस्तुएं टके सेर प्राप्त होती हैं । भारतेन्दु जी ने इस नाटक में अंग्रेजों द्वारा फैलाये गये अन्याय और भ्रष्टाचार के विरोध में तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करवाने का प्रयत्न किया है । अंधेर नगरी में नारंगी, मछली आदि सभी वस्तुएं समान रूप से वर्णित हैं । अंग्रेज शासक यहाँ का धूम खाकर चूनी रिश्वत पचा लेते हैं । हिन्दुस्तान का मेवा फूट

---

१. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ८८,प्र०सं०

और बैर टके सेर मिलता है। 'फूट और बैर' में वक्रोक्ति का उत्तम निदर्शन है। इस नगरी में कुलमर्यादा, बड़ाई, सच्चाई, वेद, धर्म सब टके सेर है। अन्त में इस अन्यायी शासक को फाँसी पर चढ़ा दिया जाता है। उदाहरण निम्न है-

(राजा, मन्त्री और कोतवाल आते हैं)

"राजा - यह क्या गोलमाल है ?

पहला सिपाही - महाराज चेला कहता है कि मैं फाँसी पढ़ूँगा, गुरु कहता है मैं पढ़ूँगा। कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बातह है ?

राजा-(गुरु से) बाबा जी बोलो, काहे को आप फाँसी पर चढ़ते हो ?

गुरु - राजा! इस समय ऐसी ही साइत है कि जो मरेगा, वह बैकुण्ठ जायगा।

मन्त्री - तब तो हमी फाँसी चढ़ेंगे।

गोवर्द्धन - हम-हम-हमको तो हुक्म है।

कोतवाल - हम लटकैंगे, हमारे सबब से तो दीवार गिरी।

राजा - चुप रहो सब लोग! राजा के होते और कौन बैकुण्ठ जायगा। हमको फाँसी चढ़ाओ, जल्दी! जल्दी!

गुरु - जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज।
ते ऐसेहि आपुहिंनस हैं जैसे चौपट राज।।"[1]

यह परिस्थिति प्रधान हास्य है। इसमें गुरु और शिष्य ने मिलकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि राजा,मन्त्री सब उसी में फँस जाते हैं और हास्य की सुन्दर सृष्टि होती है। व्यंग्य भी हास्य में मिश्रित सा हो गया है। जनसाहित्य का यह सुन्दर प्रयोग है। इसमें ग्राम्यता है। प्रहसन में प्रयुक्त व्यंग्य चित्ताकर्षक बन गयी हैं। जैसे -

'जातवाला (ब्राह्मण) - जात ले जात टके सेर जात। एक टका दो हम अभी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाय और धोबी को ब्राह्मण कर दें। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था कर दें, टके के वास्ते झूठ को सच कर दें। टके के वास्ते ब्राह्मण को मुसलमान, व टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान, टके के वास्ते पाप को पुण्य

---

१. अन्धेर नगरी (भारतेन्दुग्रन्थावली), पृ० ४५,प्र०सं०

मानें ।"[1]

भारतेन्दु ने इस प्रहसन में गीतों का प्रयोग भी किया है । घासीराम तथा चूरन वालों के लटके बड़े ही प्रसिद्ध हैं । इन गीतों में व्यंग्य की प्रधानता है ।

> "चूरन खाते लाला लोग । जिनको अकिल अजीरन रोग ।।
> चूरन खावै एडीटर जात । जिनके पेट पचै नहिं बात ।।
> चूरन साहेब लोग जो खाता । सारा हिन्द हजम कर जाता ।।
> चूरन पूलिस वाले खाते । सब कानून हजम कर जाते ।।"
> ले रन का ढेर, बेचा टके सेर ।।"[2]

अन्धेर नगरी में हास्य की व्यंजना आदि से अन्त तक है । राजा के चरित्र-चित्रण में भारतेन्दु जी विनोद की नैसर्गिक सीमा लाँघ गये हैं । विनोद एवं व्यंग्य मिश्रित कथोपकथन चित्ताकर्षक है । जहाँ धर्म और न्याय का नियन्त्रण न हो वहाँ नाट्यकार रहना असुरक्षित समझता है -

> "सेत-सेत सब एक से जहाँ कपूर कपास ।
> ऐसे देश कुदेश में कबहुँ न कीजै बास ।
> कोकिल बायस एक सम पंडित मूरख एक ।
> इन्द्रायन दाड़िम विषय जहाँ न नेकु विवेक ।।
> बसिए ऐसे देस नहिं कनक वृष्टि जो होय ।
> रहिए तो दुःख पाइये प्रान दीजिए रोय ।।"[3]

इस नाटक मेंभारतेन्दु जी ने एक ऐसे देश की परिकल्पना की है जहाँ सभी वस्तुएं समान हैं । जहाँ पर ज्ञान-अज्ञान में कोई विशेष अन्तर नहीं है । इस प्रकार

---

१. ब्रजरत्नदास- भारतेन्दु नाटकावली, पृ० ६६२ प्र०सं०
२. ब्रजरत्नदास - भारतेन्दु ग्रन्थावली - पृ० ६६३ प्र०सं०
३. ब्रजरत्नदास - भारतेन्दु नाटकावली, पृ० ५५६, प्र०सं०

की ध्वन्यार्थ व्यंजना सम्भवत: तत्कालीन शासन की स्थिति देखकर उत्पन्न हुई थी। गरीब सामाजिक को पग-पग पर कष्ट का अनुभव होता है। अपने कष्टों पर प्रतिवाद करने वाले को उचित न्याय नहीं मिल पाता है। भारतेन्दु जी ने तत्कालीन शासन से अपने असन्तोष को स्पष्ट रूप से पाँचवें अंक में गोवर्द्धन दास द्वारा इस प्रकार प्रकट करवाया है --

"अन्धेर नगरी अनबूझ राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।।
नीच ऊँच सब एकहिं ऐसे। जैसे भडुए पंडित तैसे।।
कुल मरजाद न मान बड़ाई। सबै एक से लोग लुगाई।।
जाति पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।।

x x x

साँचे मारे मारे डोलैं। छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं।।
प्रकट सभ्य अन्तर छलधारी। सोई राज सभा बल भारी।।
साँच कहै ते पनही खावै। झूठे बहुविध पदवी पावै।।
भीतर होय मलिन कि कारो। चहिए बाहर रंग चटकारो।।
धर्म अधर्म एक दरसाई। राजा करै सो न्याव सदाई।।
अन्धाधुन्ध मच्यो सब देशा। मानहुँ राजा रहत बिदेशा।।"[१]

स्पष्ट है कि गोवर्द्धनदास के उक्तगीत की उद्भावना से अंग्रेजी शासन की अव्यवस्थित साम्राज्यशाही नीति की कटु आलोचना व्यंग्य रूप में की गई है। ब्रिटिश सरकार ने चाटुकार अमीरों तथा अयोग्य लोगों को सदैव प्राथमिकता दी है जिसकी व्यंग्यात्मक आलोचना भारतेन्दु जी बराबर करते रहे। इसीलिए उन्हें सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा।

भारतेन्दु जी की यह नाट्यकृति हास्य व्यंग्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इसके सम्बन्ध में प्रो० जगदीश पाण्डेय का निम्नमत है -- "भारतेन्दु जी की यह छोटी

---

१. भारतेन्दु नाटकावली (प्रथम भाग), पृ० ५६३, पृ०सं०

और आज कुछ भद्दी और अर्द्धनग्न, अर्द्धसभ्य सी लगने वाली कृति एक शाश्वत दार्शनिक सत्य पर आधारित है इसलिए इसकी लोकप्रियता बनी है और बनी रहेगी।"[1]

"विषस्य विषमौषधम्" एक भाण है जिसका रचनाकाल सन् १८७७ ई० है। भाण में एक ही अंक होता है और एक पात्र द्वारा ही सारी कथा कही जाती है। इस नाटक में मल्हारराव के दुराचरण के कारण गद्दी से उतारे जाने की घटना है। इसमें अंगरेजी राज्य की स्वार्थपरक नीति तथा देशी राजाओं की अशक्तता पर व्यंग्य किया गया है। तत्कालीन राजाओं पर व्यंग्य करते हुए भण्डाचार्य का निम्नकथन द्रष्टव्य है -

"कलकत्ते राजा अपूर्वकृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होंने उत्तर दिया वैसे शतरंज के राजा जहाँ चलाइए, वहाँ चलें।"[2]

उपर्युक्त कथन से यह व्यक्त है कि अंगरेजी काल का राजा नाममात्र का होता था। इस प्रहसन में मल्हारराव के पतन का व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है। दुराचारी व्यक्तित्व के चित्रण द्वारा सामाजिकों में स्वतः हँसी आ जाती है। इस सामाजिक दुराचरण को दूर करने हेतु चेतावनी के रूप में भारतेन्दु ने इस प्रहसन की रचना की है।

प्रहसन को चुभीला बनाने के लिए भारतेन्दु ने व्यंग्योक्ति, अन्योक्ति, मुहावरों और लोकोक्तियों का सहारा लिया है जिससे नाटक सजीव हो उठा है। "परहस गोह करौंदा खाय", "हंसन ठठाई फुलावन गालू", "पाँसा पड़े सो दाँव, राजा करे सो न्याव", "कोउ नृप होय हमै का हानी," "कौन साहिब नु अवसें" आदि उक्तियाँ एवं यत्र-तत्र संस्कृत उद्धरणों से व्यंग्य तीखा हो गया है। मल्हारराव का चरित्र सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है और "विष की औषधि विष है" इस सिद्धान्त का सफल प्रतिपादन हुआ है।

"भारतदुर्दशा" छः अंकों का हास्यप्रधान रूपक है। इसमें प्राचीन भारत के गौरव का स्मरण दिलाते हुए वर्तमान हीनावस्था की ओर लक्ष्य करके उद्धार की प्रेरणा से पूर्णसुधारवादी दृष्टिकोण से इस नाटक की रचना की गई है। रूपक के प्रथम अंक में ही देश की पारस्परिक फूट, कलह के परिणामस्वरूप अंग्रेजी राज्य की

---

१. जगदीश पाण्डेय - हास्य के सिद्धान्त, पृ० १३६, प्र०सं०
२. भारतेन्दु नाटकावली (प्र०भा०), पृ० ३६१ प्र०सं०

स्थापना,और आर्थिक शोषण तथा दुरवस्था का चित्रण है । सत्यानाश, फूट, सन्तोष, डाह, लोभ, स्वार्थपरता, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि भारत के बल, विद्या आदि को नष्ट करते हैं । भारत, भारतदुर्दैव, निर्लज्जता, सत्यानाश, रोग, आलस्य,मदिरा, डिसलायलटी, भारतभाग्य आदि प्रतीक पात्र हैं । कथानक में नाटककार ने समसामयिक मनोवृत्तियां तथा वातावरण पर आलोचनात्मक विचार विमर्श किया है । भारत में सभी अंग्रेजी शासक शोषक की मनोवृत्ति लेकर आये हैं । वे भारत को चूसकर खोखला कर दे रहे हैं । नाटककार परतन्त्रता की मोहनिद्रा में पड़े भारतवासियों को सचेत भी करता है । साथ ही साथ अंग्रेजों की लूट-खसोट की प्रवृत्ति पर व्यंग्य भी करता है :-

> " अंगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी ।
> पै धन विदेश चलिजात इहै अतिख्वारी ।।
> ताहू पै महंगी काल रोग विस्तारी ।
> दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री ।।
> सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई ।
> हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।"[१]

इस व्यंग्य के माध्यम से भारतेन्दु जी समाज के प्रति उत्तरदायी कुसंस्कारों में परिष्कार करना चाहते थे । उन्होंने अनुभव किया कि कलह, आलस्य, धार्मिक अन्धविश्वास, अज्ञानता आदि ने भारत को पतनोन्मुख कर दिया है । उस पर महंगी, भ्रष्टाचार, छुआछूत, मदिरापान, अपव्यय, फैशन, आदि सामाजिक बुराइयां देश को विनाश की ओर अग्रसर कर रही हैं ।

पांचवें अंक में देशोद्धार के लिए योजना बनानेवाले लोगों की मन्त्रणा का उपेक्षापूर्ण व्यंग्य चित्रण है, जो निर्भीकता से सामाजिक बुराइयों का सामना नहीं करना चाहते तथा अंगरेजी सरकार का पिट्ठू बना रहना चाहते हैं । सरकार के विरोध में मुंह चुराते हैं तथा आपस में राष्ट्रोत्थान के लिए सहयोग नहीं करना

---

१. ब्रजरत्नदास - भारतेन्दु ग्रन्थावली (प्रथम भाग), पृ० ४७०,प्र०सं०(ना०प्र०सभा)

जाती हैं। भारतेन्दु जी ने देश के लोगों पर व्यंग्य किया है —

"अंगरेजहु के राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़।
स्वारथ पर विभिन्न मति भूले, हिन्दू सब है मूढ़॥
जग के देश बढ़त बदि-बदि के सब बाजी जेहि काल।
ताहू समय रात इनकी है ऐसे ये बेहाल॥"[1]

इस नाटक में प्रयुक्त भारतेन्दु की भाषा में भी उच्चकोटि का व्यंग्य निहित है। संवादों में रोचकता है। "पश्चिमी व्यंग्योक्तिपूर्ण प्रणाली के नाट्यकार बार्नड शा तथा गाल्सवर्दी की भाँति कौतुक व्यंग्यों में सामाजिक परिष्कार का मन्तव्यपूर्ण रूप से प्रकाशित कर देना उक्त नाटक के संवादों का विशेष चमत्कार है।"[2]

भारतेन्दु जी ने "पाखण्डविडम्बना" की रचना १८७२ ई० में की थी। यह कृष्ण मिश्र कृत "प्रबोधचन्द्रोदय" के तृतीयांक का गद्यपद्यमय अनुवाद है। लेकिन नाटक के बीच-बीच में भारतेन्दु जी ने अपने युग की समस्याओं को अभिमुख किया है। इसमें इन्द्रिय-जनित सुख के लोभ द्वारा सात्त्विक श्रद्धा से विमुख होने वाले लोगों पर लेखक ने व्यंग्य किया है। भारतेन्दु ने इस प्रतीक रूपक में भक्ति से परे सभी साधनाओं को पाखण्ड का व्यापार और बाह्याडम्बर कहा है। पाखण्डी निर्वाण के ध्येय से अनैतिक आचरण करता है। भोगों द्वारा मोक्ष को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। साधना के आड-म्बर विधान की आड़ में पाखण्डी-साधक साधना को भोग का माध्यम बनाकर भ्रम में डाल देते हैं। भारतेन्दु ने ऐसे पाखण्डी साधकों की निन्दा की है। दिगम्बर कापा-लिक के बहकावे में आकर मद्यपान करता है। वे स्त्री के मुख की जूठी मदिरा भी ग्रहण कर लेते हैं।

"दिगम्बर — हरे हमारे अर्हन्तानुशासन में मद्यपीवारी आज्ञा तो कोई नहीं।
भिक्षुक — अहो, कापालिक की जूठी मदिरा कैसे पीयेंगे ?
कापालिक— क्या सोचते हो ? अहे इन दोनों का पशुत्व अभी तक नहीं गया। ये हमारे पीने से मदिरा को जूठी समझते हैं, इससे तू अपने अधर के रस से इसको पवित्र करके इन दोनों को दे, क्योंकि कथावाले भी कहते हैं — "स्त्रीमुखं तु सदा शुचि।""[3]

१, ब्रजरत्नदास-भारतेन्दु ग्रन्थावली (प्रथम भाग), पृ० ४८५, प्र०सं०, (ना०प्र०सभा)

२, डॉ० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल-भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, पृ० २२४, प्र०सं०, १९५५ ई०

३, ब्रजरत्नदास भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ६२, प्र०सं०

कापालिनी बनी हुई श्रद्धा, मदिरा को पीकर पवित्र कर देती है और दिगम्बर तथा भिक्षुक उसे पीकर प्रसन्न होते हैं । भारतेन्दु जी ने इस रूपक के माध्यम से नास्तिकधर्मतावलम्बियों की मखौल उड़ाई है और वैष्णव भक्ति को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया है ।

"प्रेमजोगिनी" के प्रथम गर्भांक में वैष्णव साधुओं के भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया गया है । धर्म की आड़ में वैष्णव साधुओं के दुष्कर्मों की भारतेन्दु जी ने आलोचना की है । उन्होंने दासियों के साथ भोगलिप्सा करने वाले वैष्णवों का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है । धनदास बनितादास से अपने महाराज के बारे में कहता है -" गुरु, इन सबन का भाग बड़ा तेज है, मालौ लूटैं, मेहरुओं लूटैं[1]।"

नाटक के दूसरे गर्भांक में भारतेन्दु जी ने काशीनगरी का व्यंग्यचित्र उपस्थित किया है । उन्होंने परदेशी व्यक्ति के माध्यम से काशी की दुर्दशा का चित्रण करवाया है ।

"आधी काशी भाँट-भड़ेरिया ब्राह्मन औ सन्यासी ।
आधी काशी रंडी मुंडी राँड खानगी खासी ।।
लोग निकम्मे भंगी, गंजड़, लुच्चे बेबिसवासी ।
महाआलसी झूठे शुहदे बेफिकरे बदमासी ।।"[2]

"नीलदेवी" भारतेन्दु के श्रेष्ठ नाटकों में है । इसमें परिस्थितिजन्य हास्य का उदाहरण भठियारी, चपरगट्टू खाँ और पीकदान अली के वार्तालाप में मिलता है । लड़ाई के डर से चपरगट्टू दरबार में तीन-चार दिनों से बराबर नहीं गया । उसके न जाने का कारण भय है । वह कहता है -"सुना है लोग लड़ने जायेंगे । मैंने कहा जान थोड़ी ही भारी पड़ी है । यहाँ तो सदा भागतों के आगे मारतों के पीछे । जवान की तेग कहिये दसहजार हाथ भाँजू ।"[3]

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ३२६,प्र०सं०

२. वही, पृ० ३३३

३. वही, पृ० ५२५

नाटक के आठवें दृश्य में पागल के प्रलाप में अनेक निरर्थक शब्दों की पुनरावृत्ति द्वारा हास्य प्रकट होता है । पागल एक मियाँ को देखकर कहता है -" दूर-दूर-दूर - दूर-दूर-दूर - मियाँ की डाढ़ी में दोजख की दूर-दन तक - मियाँ की माई में मोची की मूँ - मार-मार-मार- मियाँ हार हार ।"[१]

"सबै जात गोपाल की" भारतेन्दु का लघुनाटक है । इसकी रचना १८७३ ई० में हुई थी । इसमें एक पंडित जी तथा एक क्षत्रिय का वार्तालाप है । पंडितजी सभी जातियों को समान सिद्ध करते हैं । दक्षिणा के लालच में वे डोम को ब्राह्मण एवं क्षत्रिय कुल से सम्बन्धित करते हैं । जैन, बौद्ध, कुम्हार, जाट, मुंहार, धरिकार सभी को ब्राह्मण कुल का सिद्ध करते हैं । इस नाटक में सहज हास्य की व्यंजना है कि उस समय ब्राह्मण लोग किस प्रकार जनता को मूर्ख बनाकर पैसा ऐंठते थे ।
नाटक के प्रत्येक वार्तालाप में हास्य प्रकट होता है । एक उदाहरण निम्न है -
"क्षत्रिय- महाराज देखिये बड़ा अन्धेर हो गया है कि ब्राह्मणों ने व्यवस्था दे दी कि कायस्थ भी क्षत्री हैं कहिए अब कैसे काम चलेगा ।
पंडित - क्यों, इसमें दोष क्या हुआ ? "सबै जात गोपाल की ।" और फिर यह तो हिन्दुओं का शास्त्र पनसारी की दुकान है और अक्षर कल्पवृक्ष है, इसमें तो सब बात की उपमता निकल सकती है पर दक्षिणा आपको बायें हाथ से रख देनी पड़ेगी फिर क्या है फिर तो सबै जात गोपाल की[२]।"

कलात्मक दृष्टि से भारतेन्दु के नाटक उच्चकोटि के हैं जिसमें व्यंग्य की तीव्रता , पात्रों का चयन, वस्तुविकास और शिष्ट हास्यव्यंग्य सराहनीय है । भारतेन्दु में कवि, नाटककार, पत्रकार तथा सुधारक की प्रतिभा थी । कवि कल्पना ने उन्हें हास्य को सांकेतिक बनाने में सहयोग दिया । नाट्यकार की कला ने परिस्थिति तथा वक्रोक्ति पूर्ण सम्वादों द्वारा हास्य के बहुविध आधार खोज निकाले । पत्रकार की तीक्ष्ण दृष्टि द्वारा उन्होंने सत्य की पहचान कर व्यंग्य का सफल

---

१. भारतेन्दुग्रन्थावली (प्रथम भाग), पृ० ५३४
२. भारतेन्दुकालीन व्यंग्य परम्परा - लै० ब्रजेन्द्रनाथ पाण्डेय, पृ० ५५, प्र०सं० २०१२

प्रयोग किया । सुधारक होने के नाते उन्होंने उपहास का अधिक आश्रय लिया । इस प्रकार भारतेन्दु की सम्मिलित प्रतिभा ने हास्य को समाज सुधार का सफल साधन बनाया । यद्यपि भारतेन्दु ने यत्र-तत्र अशिष्ट तथा अश्लील हास्य का प्रयोग किया है किन्तु इसका कारण उनका शृंगार के प्रति प्रेम था ।

भारतेन्दु के व्यंग्य में राष्ट्रीय भावना का प्राय: प्राधान्य है । नाटकों में वे जहाँ भारतवासियों की दुर्दशा का व्यंग्यात्मक चित्रण करते हैं वहीं राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख भी करते हैं । भारतेन्दु के व्यंग्य की यह विशेषता है ।

बालकृष्ण भट्ट ने "जैसा काम वैसा परिणाम" नामक हास्य रूपक की रचना की जिसमें तत्कालीन समाज में व्याप्त दुराचार, मदिरापान, वेश्यागमन के दुष्परिणामों का वर्णन किया है ।" भट्ट जी का यह उत्कृष्ट प्रहसन है । प्रहसन में वेश्या प्रेम की अस्थिरता तथा मनचाँचल्य का सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है । नाटक का नायक रसिक लाल मोहिनी वेश्या के प्रेमपाश में फँस जाता है और अपनी सारी सम्पत्ति उसी के प्रेम के पीछे गंवा देता है । मोहिनी वेश्या के प्रेम के कारण रसिकलाल अपनी पत्नी को बहुत यातनाएं देता ह । वेश्याओं की वृत्ति बताती हुई स्वयं मोहिनी कहती है -" हम लोग बाजार की बैठने वाली हैं, जिसे हम चाहें उसके लिए प्राण तक दे डालें सिर्फ जी आना चाहिए और जिसे हम बिगाड़ना चाहें उसका विस्तार भी कहीं नहीं है । हमारे स्वभाव को नहीं जानता । सुन -

> मन से करैं और का ध्यान हमसे करें और का भान ।
> अन्य पुरुष से करैं बिहार, तन से करैं और को प्यार ।।"[१]

रसिकलाल की पत्नी मालती अपने पति के इस दुर्व्यसन को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न करती है । एक बार मालती अपनी दासी को पुरुष के वेष में भेज कर उससे प्रेम का स्वांग रचती है । इसे देखकर रसिकलाल क्रोधित होता है और अपनी पत्नी को मारने के लिए तत्पर हो जाता है । तब उसकी पत्नी उत्तर देती है -

---

१. बालकृष्ण भट्ट - शिक्षादान- जैसा काम वैसा परिणाम-, पृ० २६,प्र०सं०

"मालती — क्यों नहीं ? क्या हम आदमी नहीं हैं, क्या हमारा मन नहीं है, क्या क्या हमारे इन्द्रियां नहीं हैं, क्या हमको सुख-दु:ख का ज्ञान नहीं है ?"[1]

रसिकलाल अपनी प्रियतमा की इस व्यंग्योक्ति को सुनकर अपने दुराचरण को त्याग देने का संकल्प लेता है क्योंकि उसे ज्ञात हो जाता है कि बुरे कर्म का परिणाम बुरा होता है ।

'वेणुसंहार' भट्ट जी का दूसरा नाटक है । इस नाटक में भट्ट जी ने वेणु के अन्यायपूर्ण शासन का वर्णन किया है । इस नाटक के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी शासन की अव्यवस्था पर हास्य प्रकट किया है । वेणु के शासन की सभी व्यवस्था विपरीत दिखाई पड़ती है । कलापी और कलकण्ठ नट [illegible] वेणु शासन से परेशान होकर परमेश्वर से अच्छी व्यवस्था की कामना करते हैं । उसी समय ढिंढोरा पीटते हुए एक पुरुष का प्रवेश होता है । वह महाराज वेणु की आज्ञा प्रसारित करता है जिसमें विपरीतता द्वारा हास्य की सृष्टि होती है ।

"सुनो, सुनो सब लोग सुनो, सावधान होकर सुनो, कान लगा कर सुनो । महाराजाधिराज वेणु की आज्ञा है जो न सुनेगा उसके कान और नाक दोनों काट लिये जायेंगे । तब उस नकटे, कनकटे को कहीं ठिकाना न रहेगा । खबरदार चौकस रहना 'न होतव्यम् न दातव्यम्' भूल के भी कोई ऐसे रास्ते पर न चले जिसमें स्वार्थ छोड़ परमार्थ की और झुक जाना पड़े । नहीं जानते महाराजा वेणु का कैसा उग्र शासन है । शेर और बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं । बड़े-बड़े हैकड़ भी सब हेकड़ी भूल गये । प्रत्यक्ष छोड़ परोक्ष की चर्चा जो कोई करेगा तो उसका उच्छेद कर दिया जायगा ।"[2]

वेणु की आज्ञा हास्योत्पादक है । इस नाटक के माध्यम से तत्कालीन शासन , समाज पर तीखा व्यंग्य किया गया है । भारतेन्दु युग में अनेक भारतीय

---

१. बालकृष्ण भट्ट, शिक्षादान-जैसा काम वैसा परिणाम, पृ० ४१ , पृ०सं०

२. वेणु संहार- (भट्टनाटकावली), पृ० ५६,पृ०सं०,सं०२००४ वि०

उपाधियों तथा धन के लोभ में देशद्रोह करते थे ऐसे लोगों पर भट्ट जी ने व्यंग्य का प्रहार किया है -

" जे हूबे खिताब के लोभी करें जाति अपमान ।
स्वारथवश नित करें खुशामद त्यागि देश अभिमान ।
हाँ जी हाँ जी को ही जानें सुख को परमनिधान ।
माँगत माँगत जनम गवावें करें उपाय न आन ।।
मेल मुहब्बत भाई चारा सबको करि के पान ।
परदेशिन के है पालक बनि भारी करें गुमान ।।
देश भक्ति महिमा के ऊपर धरे न कबहूं ध्यान ।
करि भारत अपमान कहावें भारत के सन्तान ।।"[1]

भट्ट जी ने परस्पर प्रेम के अभाव के कारण व्यंग्य का आश्रय लिया । स्वार्थपरता एकमात्र भारतीयों का ध्येय हो गया था । समाज पतनोन्मुख हो चला था । उच्च वर्णों की दशा दयनीय थी । ब्राह्मणादि अपने पथ से हट चुके थे । भट्ट जी ने तत्कालीन ब्राह्मणों का पर्याप्त उपहास किया है -

"ब्राह्मण घर-घर फिरें माँगते गुरु बैठ पुजवाते हैं ।
पैसा दो दक्षिणा लेन हित पकरौं सीस भ्रमाते हैं ।।
ब्रह्मभोज सुन बिना बुलाये कोसों दौड़े जाते हैं ।
वेदपाठ , हरिभजन योग को कुधर्म कहलाते हैं ।।
सबको छोड़ वृथा धनिक की घुड़की झिड़की खाते हैं ।
नीचन के घर पके रसोई पहले उन्हें खिलाते हैं ।।"[2]

वेणु के राज्य में ऋषिमुनि विद्रोह करके उसे पदच्युत कर देते हैं जिससे वह गतप्राण हो जाता है । इस नाटक के माध्यम से भट्टजी ने यह आवाहन किया है कि अन्यायी और अव्यवस्थित राज्य को नष्ट कर देने का अधिकार जनता को है । इसीलिए ऋषिसमूह मदोद्धत वेणु के लिए कहते हैं -

---

१. वेणु संहार (भट्टनाटकावली), पृ० ५६ ,प्र०सं०, सं० २००४वि०
२.वही, पृ० ७२

"ऋषिसमूह -- (क्रोध से) अरे यह कुलपांसक, कुलकुठार, कुलांगार बड़ा दुष्ट है। इसका जीवित रहना बड़ा हानिकारक होगा, इसे शीघ्र नष्ट करो।"[१]

इस नाटक में यत्र तत्र स्मित, हसित के उदाहरण मिलते हैं किन्तु व्यंग्य की प्रधानता है। अंग्रेजी शासन के अन्याय, लूटखसोट की तुलना वेण् के शासन से स्पष्ट हो जाती है।

प्रतापनारायण मिश्र ने 'कलिकौतुकरूपक' नामक प्रहसन की रचना १८८६ ई० में की थी। इस प्रहसन में चार दृश्य हैं। इस नाटक का ध्येय बड़े लोगों की बड़ी लीलाओं का वर्णन तथा नगरनिवासियों का गुप्त चरित्र चित्रण करना है।

मिश्र जी ने इस प्रहसन के माध्यम से तत्कालीन समाज में फैले हुए अनाचार की निन्दा की है। समाज में कुछ ऐसे भी वर्ग हैं जिनका ध्येय मात्र पैसे की आराधना करना है। प्रहसन में मिश्र जी ने भ्रष्ट संस्कृति, रिश्वत चोरी आदि की खिल्ली उड़ाई है। वेश्यागमन, तथा अन्य चरित्र सम्बन्धी दुर्बलताओं का भण्डाफोड़ भी किया गया है।[२] अंग्रेजों के जोर जुल्म तथा अत्याचार का भी व्यंग्यात्मक चित्रण इसमें किया गया है।[३] अश्लीलता का आधिक्य है। यत्रतत्र वार्तालाप में वाक्छल का अच्छा प्रयोग हुआ है।

'भारतदुर्दशा' प्रहसन में मिश्र जी ने तत्कालीन साधु सन्यासियों के पाखण्ड का सजीव वर्णन किया है। साधु होते हुए भी मांस और मदिरा के सिमायती सन्तों पर व्यंग्य किया गया है। मिश्र जी के इस नाटक पर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। दोनों नाटकों के विषय एवं अभिव्यक्ति में साम्य अधिक है। मिश्र जी ने इस

---

१. वेणु संहार (भट्टनाटकावली), पृ० ७७, प्र०सं०, सं० २००४ विक्रमी

२. प्रतापनारायण मिश्र, कलिकौतुक रूपक, पृ० ३३, प्र०सं०१८८६ई०

३. वही, पृ० ४०

नाटक में धर्म की आड़ में वध और हिंसा को प्रश्रय देने वाले तथा मदिरा के द्वारा अपने प्रभु का स्तवन करने वाले पाखण्डी साधुओं का पर्याप्त परिहास किया है। भारतीय समाज की दुरवस्था के लिए इन्हीं बाह्याडम्बरों को दोषी बतलाया गया है। इस प्रहसन में मिश्र जी ने कठोर व्यंग्य का सहारा लिया है। जब इन दुराचारी एवं पाखण्डी साधुओं के पास स्त्रियाँ जाती थीं तब ये सन्तान देने का व्यापार करते थे। इसी दुराचार को आलम्बन बनाकर चम्पा भक्तिन से कहलाया गया है -" तू भी बाबा जी को जाने है? भाई बड़े पहुँचे हु एक दिन मैं गई हो कहैं क्या हैं कि सन्तान तो लिखी है पर गृहस्त से नहीं -मैं तो सुन के रह गई[1]।"

ऐसे पाखण्डी अपने को त्रिकालदर्शी बताते हुए उसकी आड़ में परस्त्रीगमन करते थे। इस नाटक में वाग्वैदग्ध्य तथा व्यंग्य का सफल प्रयोग हुआ है। लस्करीजान वेश्या तथा शंकर के वार्तालाप में वाक्छल का उदाहरण मिलता है। हास्य ग्रामीण बोली द्वारा उत्पन्न किया गया है -

"लस्करी० -कौन खुशनसीब है बेटा ?

शं० - वस ! लब पर है जिसके नाम बगल में हबीब है।

उसके सिवा भी और कोई खुशनसीब है ॥

सब- यह इनके बेटा बोले। हाः हाः हाः हाः।

ब०- तो फिर अब विलम्ब केहि काज ?

ल० - इस भडुए की गंवारी बोली न गई ?।

ब० - तो का ! हम तुरुक आहिन ?

शं०- क्या साहब ! हम लोग तुरुक है जो उर्दू बोलते हैं

ब०- उर्दू छिनारि के बोलिया सब सार तुरुके आही।

(सब हंसते हैं शंकर लज्जित हो जाता है।)

मिश्र जी फक्कड़ और मनमौजी थे इसलिए उनके नाटकों में शिष्टता पर ध्यान कम ही दिया गया है।

---

१. प्रतापनारायण मिश्र - भारत दुर्दशा, प्र०सं०, पृ० २६

२. वही, पृ० ३०

राधाचरण गोस्वामी "भारतेन्दु" नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन करते थे। उनके सभी प्रहसन इसी पत्रिका में सर्वप्रथम प्रकाशित हुए थे। "भंगतरंग" जिसका रचनाकाल १८८२ ई० है एक वर्ष बाद इसी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

"भंगतरंग" प्रहसन छ: दृश्यों में लिखा गया है। प्रहसन में भाँग पीने वाले लोगों की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की गई है। नाटक में प्रयुक्त पात्रों के नाम भी हास्यात्मक हैं। हू हू चौबे, उस्ताद, बुलबुल, भोंड़ी, सुरजी, नारायण, कच्चीसिंह इत्यादि प्रयुक्त पात्र हैं। भंगेड़ी खूब भाँग पीकर मस्त हो जाते हैं। नशे में चूर भंगेड़ियों को गिरफ्तार करने के लिए जब पुलिस का दरोगा आता है तब ये भंगेड़ी उससे भी हँसी मजाक करने लगते हैं और मौका पाकर भाग भी जाते हैं। कुछ समय बाद वेश्यागमन करते हुए पकड़े जाते हैं और अवसर पाकर पुन: भाग निकलते हैं।

प्रस्तुत प्रहसन के कथोपकथन और सम्वाद बड़े ही रोचक हैं। प्रथम दृश्य में ही यमुना के पीलू-चिटपों में लहलहाती हुई कुंजों में भंगेड़ियों की मंडली विराजमान है। उसमें उस्ताद और शागिर्दों का वार्तालाप चलता है जो हास्य की पुष्टि करता है -" बुलबुल--

"बुलबुल -(गाता है -भैरवी में) धन बाकी सेजड़िया पै रात रही, मापै की बैंधी बात रही।

घूर - वोली, लड्डू कचौरी खात रही।

हूहू -अबे यों गाओ - ब्रज के दंगल में मथुरा की मात रही और कुंची सिंह के साथ ख्यालात रही। धन बाकी सेजड़िया पै रात रही।

सब - हा: हा।"[१]

इस प्रहसन की कथावस्तु दैनन्दिनजीवन से ली गई है। भंगेड़ियों की गोष्ठी प्राय: सभी स्थानों पर मिल जाती है। व्यक्ति जब नशे में रहता है तो उसे बाधी

---

१. "भारतेन्दु" ११- ११ सितम्बर १८८३ ई०, पृ० ६२

चींटी प्रतीत होता है । उन्हें स्थिति का सही भान नहीं होता है एक भंगेड़ी कोतवाल के महत्व का वर्णन करते हुए कहता है -

"बीबी -(घप्पा से) गुरु, कुतवाल तुम्हें कर दें ।

घप्पा -ना, कुतवाल तौंय कर दें, हम तौ कुतवाल के ऊपर-कौन हौय-सिप्टूर कर दें ।

कुलबुल -उस्ताद को सिप्टूर कर दें, और तुम्हें कल्टूर कर दें ।

घप्पा -कल्टूर को कहा महीना होय है ?

कुलबुल - बाइस से ।

घप्पा -हैं, बाईस से की तौ हम एक दिन में ठंढाई ही पी जायेंगे, घर के कहा खायेंगे ?" १

प्रस्तुत प्रहसन चरित्र प्रधान है । प्रहसन में वर्णित हास्य में यत्र तत्र स्मित, हसित एवं विहसित के उदाहरण मिलते हैं । प्रहसन समयोचित ही है ।

"बूढ़े मुंह मुहासे" गोस्वामी का दूसरा प्रहसन है । इसका रचनाकाल १८८७ ई० है । यह "भारतेन्दु" में १८८३ ई० में प्रकाशित हुआ था । इस नाटक की कथावस्तु दो अंकों में विभक्त है । इस नाटक में गोस्वामी जी ने उन नेताओं का वर्णन किया है जो वास्तव में मूर्ख थे तथा ऊपर से धर्म, भक्ति का आवरण पहने रहते थे । यह गोस्वामी जी का व्यंग्यप्रधान नाटक है । इसमें उन व्यक्तियों पर व्यंग्य किया गया है जिनके हृदय में माया, मोह, लोभ आदि की भावना रहती है ।

इस नाटक के पात्र भोला, कल्लू, लाला, नारायणदास, सितारो, हुन्नी और विद्याधर पंडित इत्यादि हैं । इसमें दुराचारी नारायणदास का व्यंग चित्रण किया गया है । नारायणदास हुन्नी को वश में करने के लिए आतुर हो जाता है और इस कार्य के लिए सितारों को नियुक्त करता है ।

इस नाटक में हास्य का अभाव है लेकिन व्यंग्य और वाग्वैदग्ध्य का अच्छा

---

१. "भारतेन्दु" -१६ सितम्बर १८८३ ई०, पृ० ६५

प्रयोग हुआ है । शिक्षा, धर्म, दुराचार पर व्यंग्य किया गया है ।

नारायणदास ऊपर से जितना भक्त एवं उपदेशक है मन से कहीं उससे अधिक कपटी और भोगलिप्सु है । वह हुन्नी लड़की से सन्ध्या समय मिलाने के लिए सिताबो को कहता है किन्तु सन्ध्यासमय रामनारायण बाबू के आने पर चिन्तित हो उठता है और कल्लू से इशारों द्वारा बात करता है । रामनारायण अंग्रेजी पढ़ने वाला नवयुवक है । लाला जी उसे समझाते हैं कि आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से हिन्दू धर्म का ह्रास हो रहा है क्योंकि लड़के मुसलमान बावर्चियों के हाथ का बनाया हुआ भोजन कर लेते हैं । उसके इस पाखण्ड पर लाला के नौकर कल्लू द्वारा निम्नवार्तालाप में गोस्वामी जी ने व्यंग्य करवाया है -

"नारायणदास- अच्छा रामनारायण ! सुनते हैं कि इलाहाबाद में कोई-कोई बड़े आदमी हिन्दू-मुसलमान बावर्ची रखते हैं ।

रामनारायण - जी हां, सुना है कि कोई-कोई रखते हैं ।

नारायणदास- थू ! थू ! क्या कहा ? हिन्दू होकर मुसलमान की रोटी खाते हैं राम ! राम! छि: ! छि: !

कल्लू- (मन में) मुसलमान की रोटी खाने से तो जात जाय और वाकी लुगाई रखने से कछू नाय । वाह! वाह ! लाला साहब की बड़ी समझ है ।"[१]

रात्रि के समय सिताबो और हुन्नी शिवाला में प्रवेश करती हैं । पंडित विद्याधर और मौला को इस दुराचार की सूचना पहले ही मिल जाती है और वे दोनों लाला जी की पिटाई करने के लिए पहले से वहां पहुंचे रहते हैं । लाला ऐ नारायणदास के वहां पहुंचने पर सारा भेद खुल जाता है तब वह मौला तथा विद्याधर को रुपये देने का वादा करके माफी मांगता है और अपने कुकर्मों पर प्रायश्चित करता है और कहता है -

"तुम लोगों से आज बहुत उपदेश मिला । यह उपकार मैं सदैव मानूंगा । मैं जैसा महापापी था, वैसा ही दण्ड भी पाया । अब भगवान सेयही प्रार्थना है कि

---

१. राधाचरण गोस्वामी, बूढ़े मुंह मुंहासे- पृ० २४,प्र०सं०, सं० १९४४ वि०

ऐसी दुर्नीति फिर कभी न हो। बस। मेरी वही कहावत हुई कि — बूढ़े मुंह मुंहासे-लोग देखें तमासे।"[१]

यह नाटक गोस्वामी की अच्छी कृति है। इसमें संयत व्यंग्य और शिष्ट हास्य का प्रयोग हुआ है। नाटक के मुखपृष्ठ पर ही निम्न व्यंग्यात्मक दोहा उद्धृत है —

" कंकर पत्थर जे चुगैं, तिनहि सतावत काम।
मालमलीदा खात जे तिनकी मालिक राम।।"[२]

"बूढ़े मुंह मुंहासे" के सम्बन्ध में डॉ० रामविलास शर्मा का निम्न कथन सत्य है —" भारतेन्दुयुग के नाटकों में राधाचरण गोस्वामी की यह रचना श्रेष्ठ है। इसका सा नपा तुला व्यंग्य, सधा हुआ शिष्ट हास्य, गठा हुआ कथानक, स्वाभाविक वार्तालाप आदि अन्य नाटकों में मिलेंगे परन्तु हिन्दू मुसलमान किसानों की एकता और जमींदार के प्रति उनकी विद्रोही भावना हिन्दी साहित्य में नई है।"[३]

"तन मन धन श्री गोसाई जी के अर्पण" का रचनाकाल सन् १८६० ई० है। इस प्रहसन में अन्धभक्तों का परिहास किया गया है जो दुराचारी गुरुओं की अन्धभक्ति के कारण अपनी पत्नियों तथा बहुओं को उनके पास भेजते हैं। इसमें पाखण्डी गुरुओं की चरित्रहीनता का हास्यचित्र प्रस्तुत किया गया है।

सेठ रूपचन्द, गुसाईं, रामा, कुटनी, सेठानी जी तथा नव शिक्षित गोकुल इसके मुख्यपात्र हैं। इसमें गुसाइयों का जीता जागता चित्र खींचा गया है एवं उनके पाखण्ड, पाप एवं चरित्रहीनता पर परिहास किया गया है। गुसाईं जी के अन्धभक्त सेठ रूपचन्द अपनी सेठानी को भेंटस्वरूप गुंसाईं जी को देने के लिए तत्पर हो जाते हैं लेकिन उनका पुत्र गोकुल बाधक हो जाता है। इस प्रहसन के प्रत्येक संवाद

---

१. राधाचरण गोस्वामी—बूढ़े मुंह मुंहासे, पृ० ४०, प्र०सं०, संवत् १६४४ वि०
२. वही, मुखपृष्ठ
३. डॉ० रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग, पृ० ८७, प्र०सं०

में हास्य का अतिरेक है। कथा सुंदर नहीं है। नाटक में हल्कापन है। हास्य की दृष्टि से यह उत्कृष्ट है। इसमें "स्मित" की प्रधानता है। नाटक के प्रारम्भ में ही गोस्वामी जी का निम्न हास्य कथन है -

" तन-मन-धन श्री गुसाई जी के अर्पण ।
भेड़ चरित्र का दर्पण, गुरु लोगों का तर्पण ।
भेड़ भक्तों का सर्वस्व समर्पण ।
होली की भेंट, अपने में टू लेट ।
हास्यनगर का सदर गेट ।।"[1]

देवकीनन्दन त्रिपाठी ने आठ प्रहसन लिखे हैं - रक्षा बन्धन (१८७८ ई०) एक एक के तीन-तीन (१८७९ ई०) स्त्रीचरित (१८७९) वेश्याविलास, बैल छः टके को, जयनार सिंह की (१८८३), सैकड़े में दस-दस तथा कलयुगी जनेऊ (१८८३) हैं) । इनमें से "जैनार सिंह की" को छोड़कर सभी प्रहसन अप्रकाशित हैं।

"रक्षाबन्धन" में मदिरासेवन तथा वेश्यागमन से होने वाले दुष्परिणामों का हास्यमय चित्रण मिलता है। "एक एक के तीन-तीन में समाज में प्रचलित सूदखोरी का वर्णन है अधिक व्याज लेने वाले सूदखोरों पर व्यंग्य किया गया है जिनका बद-माश लगुआ मिलने पर मूलधन भी चला जाता है। ऐसे सूदखोर एक के अनेक करते हुए व्याज लगाकर समाज का शोषण करते हैं। "स्त्री चरित्र" तथा "वेश्याविलास" में वेश्यागामी, चरित्रहीन स्त्रियों के दूषित चरित्र चित्रित किये गये हैं तथा उनके इस कृत्य के दूषित सामाजिक परिणामों पर अफसोस व्यक्त किया गया है। "बैल छः टके को" में एक लोभी मनुष्य का परिहास किया गया है जो कि केवल छः टके में बैल खरीदना चाहता था। वह भ्रमण करते-करते बैल खरीद नहीं पाता और अन्त में उसके पैसे भी ठग लिये जाते हैं। इस नाटक में लोभी होने के दुष्परिणामों पर व्यंग्य किया गया है। "कलयुगी जनेऊ" में तत्कालीन समाज में प्रचलित बुराइयों एवं कुप्रथाओं का व्यंग्य चित्र है।

---

१. राधाचरण गोस्वामी - तन मन धन श्री गुसाईं जी के अर्पण - पृ० १,प्र०सं०, सन् १८९१ ई०

"जैनारसिंह की" में समाज में जादू -टोना करने वाले लोगों पर व्यंग्य किया गया है । ऐसे लोग किस प्रकार समाज को आकृष्ट कर अपनी बनावटी कला द्वारा तबाह कर देते हैं इसका हास्यपूर्ण चित्रण किया गया है । तत्कालीन अन्ध विश्वासों की खिल्ली उड़ाई गई है ।

इस नाटक के पात्र ग्रामीण अनपढ़ लोग हैं जो ओझाई इत्यादि में ही विश्वास करते हैं । रुक्मिया का लड़का बीमार है जो औषधि करने पर भी अच्छा नहीं होता है । रुक्मिया उसे ले आकर जयनार सिंह बाबा की चौरी में पटक देती है । गक्क नीच जाति का ओझा है जिस पर जयनार सिंह बाबा प्रकट होते हैं । वह रुक्मिया को प्रलोभन देकर उसके पुत्र को अच्छा कर देने का वादा करता है और उससे काफी पूजा की सामग्री लेता है ।

त्रिपाठी जी ने इस प्रहसन में तत्कालीन सामाजिक अन्धविश्वास का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है । गक्क के झाड़ने के मन्त्रों में हास्य की सृष्टि होती है । हास्य का एक उदाहरण निम्न है --

" ए पढ़ि पढ़ि मरिहैं पारसी अरबू अंग्रेजी हो माय ।।
ए हमरे देव का पार न पावै वेदरी के पाछे पाछे धावैं हो माय ।।
ए हमरे देव एक नरसिंह बाबा नित-नित कलिया खावैं हो माय ।।
ए दिन के मजूरी रात के पुवैरी दौहरी रकम घर लावैं हो माय ।।"[१]

त्रिपाठी जी ने सभी प्रहसनों में घरेलू व्यसनों एवं सामाजिक बुराइयों के प्रति व्यंग्य प्रस्तुत किया है । उनके प्रहसनों में समाजसुधार की भावना झलकती है । वे १९ वीं शताब्दी के प्रमुख व्यंग्यकार हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं पं० बालकृष्ण भट्ट की ही तरह इनके प्रहसनों में यथार्थ एवं कटुता अधिक है । निश्चय ही त्रिपाठी जी भारतेन्दुयुग के तीव्र चिन्तक हैं । इनमें राष्ट्रीयता का स्वर है तथा सामाजिक बुराइयों को दूर कर लोकमंगल की कामना निहित है । उनका परिहास संयत और

---

१. देवकीनन्दन त्रिपाठी --जयनार सिंह की , पृ० १३-१४, पृ० सं०

स्वाभाविक है। उनके व्यंग्यकौशल के सम्बन्ध में डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है कि -"त्रिपाठी जी भारतेन्दु युग के प्रमुख व्यंग्यकार थे। उनके प्रहसन बहुत ही संयत और जीते जागते हैं।" भारतेन्दु के बाद यदि तीव्र और कठोर व्यंग्य मिलता है तो वह देवकीनन्दन त्रिपाठी का।...... ...... प्रहसनों द्वारा समाजसुधार का कार्य भारतेन्दु ने शुरू किया और देवकीनन्दन त्रिपाठी ने उसे आगे बढ़ाया।"[१]

लालखड्गबहादुर मल्ल ने सन् १८८८ ई० में "भारत-आरत" नामक हास्यरूपक की रचना की। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें भारतवर्ष की तत्कालीन दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण मिलता है। भारत की शिक्षा, संस्कृति, कला, स्वाभिमान सब कुछ नष्ट हो चुका है। सभी दृष्टियों से हम अंग्रेजों के गुलाम हो चुके थे। फैशन, कला, शिक्षा आदि पाश्चात्य ढंग की हो गई थी। हमारी संस्कृति लुप्तप्राय थी। नाटककार ने व्यंग्यपूर्ण ढंग से तत्कालीन दुर्बल और दु:खी हिन्दुस्तान का चित्र खींचा है। इस प्रहसन में चार दृश्य हैं। नाटककार ने दुर्बलताओं पर व्यंग्योक्ति करते हुए राष्ट्रीय जागरण का स्वर ऊँचा किया है।

आलोच्य नाटक में दु:खी पंडित तथा जोरावर सिंह जमींदार का हास्य-परक वर्णन मिलता है। पंडितजी को पंडितानी घर से निष्कासित कर देती हैं और उन्हें परदेश जाने के लिए कहती हैं। रास्ते में पंडित जी की भेंट जमींदार से हो जाती है। जमींदार पंडितजी को मीरपुर ले जाता है। जोरावर सिंह मीरपुर के डिप्टी साहब का लश्कर है। डिप्टी साहब अपनी अदालत में बैठकर मुकदमों का मनमाना निर्णय करते हैं।[२] चौथे दृश्य में मजिस्ट्रेट साहब भी इसी तरह का न्याय करते हैं।[३] नाटककार इसके माध्यम से ब्रिटिश न्यायप्रणाली पर व्यंग्य करता है।

मल्ल जी भारत पर हो रहे तत्कालीन इस अत्याचार से दु:खी हैं इसीलिए इस व्यवस्था के प्रति व्यंग्य का सहारा लेकर सफल चित्रण किया है। नाटककार ने

---

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० २५१, ५३, प्र०सं०

२. लालखड्ग बहादुर मल्ल -भारत आरत, पृ० ६, प्र०सं०

३. वही, पृ० २४

देश के आलसी पुरुषों, भारतीयों की अंगरेजों के प्रति प्रदर्शित भक्ति, अन्ध-विश्वास, भूतपूजा आदि पर व्यंग्य एवं हास्य प्रस्तुत किया है।

" भारत जननी गोद सून करि कहाँ सिधारे।
रहिगे कूर कपूत आलसी कायर सारे।।
वेद धर्म प्रतिपाल शास्त्र विधि कहाँ नसाई।
रहिगई भरत मध्य हाय इक भूत पुजाई।।"[1]

इसके अतिरिक्त सरकारी अधिकारियों, पुलिस आदि की धाँधली और भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया गया है। इस नाटक में उन लोगों पर भी व्यंग्य किया गया है जो मौके बे मौके विदेशी भाषा बोला करते हैं। एक बंगाली बाबू को अदालत में अंगरेजी बोलते सुन कर अंगरेज मजिस्ट्रेट गाली देते हुए कहता है -" सूअर। हम तुमसे अंगरेजी बोलना नहीं माँगता। अपना मुलुक का बोली बोलो।"[2]

विज्ञानन्द त्रिपाठी भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध हास्यकार हैं। उनका 'महाअन्धेरनगरी' हास्य की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना है। इस नाटक की मूलकथा के साथ-साथ महन्त और अंकलदास का वार्तालाप भी हास्यात्मक है। इस नाटक की तुलना भारतेन्दु के 'अन्धेरनगरी' से की जा सकती है। बाजार का दृश्य, चूरन के लटके आदि पर भारतेन्दु का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

'महा-अन्धेरनगरी' का शासक अभयसिन्धु दुराचारी है जो अपने राज्य को छोड़कर अन्यत्र वेश्याविलास करता रहता है। उसके राज्य छोड़ने के बाद राज्य व्यवस्था ही बदल जाती है। जब वह पुनः अपनी नगरी में पहुँचता है तो चर से वहाँ का समाचार पूछता है। चर कहता है -

" इस समय सभी कुमार्गी देख पड़ते हैं। देखिये..... रईसों के दरबार में गुणी कलाज्ञों का अनादर कर नीतिनिपुण और सुकर्मों की खातिरदारी होती है। सभी के पिता माता दुख भोगते हैं और भांड़ भगतिये तथा ससुरारि के लोग मजा मारते हैं। साध-समाज में आल्हा, मझौआ, बिरहा, कजरी इत्यादि उपकारी मनोहर-

---

१. लालखड्ग बहादुर मल्ल- भारत आरत, पृ० १५, प्र०सं०
२. वही, पृ० २५

गीतों के बदले गीता, भारत, भागवत, रामायण इत्यादि कल्याणनाशी विषयों की चर्चा होती है। बरांडी, माध्वी, गौड़ी इत्यादि पवित्र बलवर्द्धक वस्तुओं को छोड़ गंगाजल, कूपजल, चरणामृत इत्यादि स्वास्थ्य नाशक द्रव्य पान करते हैं। स्त्रियाँ के विपरीत क्या कहें आँख में अंजन देती हैं, कंधों में नहीं, पाँव में महावर लगाती हैं, आँख में नहीं, बिंदी भाल में साटती हैं नाभी में नहीं, करधनी कटि में पहनती हैं गले में नहीं, सिन्दूर विधवा नहीं देती सधवा माँग रंगाये कोने में बैठी रहती हैं। ऐसा वेश-विपर्यय घर घर बड़े कष्ट से हमने देखा।"[1]

पर धारा नगरी की यह दुर्दशा हो जाने पर राजा अभयसिन्धु इसे अपनी असावधानी बताते हुए तथा पश्चात्ताप करते हुए सुमतिवर्मा नामक मन्त्री को राज्य में उचित व्यवस्था करने का आदेश देता है। इसी बीच एक भेड़वाला अपना न्याय कराने आता है। उसकी एक भेड़ धनपतदास के तालाब में डूब गई थी। उसे महाराज फाँसी की आज्ञा देते हैं और उसके फाँसी पर न चढ़ने पर किसी मोटे आदमी को फाँसी देने की आज्ञा देते हैं। सिपाही अबेतदास को पकड़कर लाते हैं। उसी समय महन्त पहुँच कर स्वयं फाँसी चढ़ना चाहता है। पूछने पर वह बताता है कि इस समय जो फाँसी पर चढ़ेगा उसे इन्द्रासन मिलेगा। ऐसा सुनकर राजा स्वयं फाँसी पर चढ़ना चाहता है। परिस्थितिजन्य हास्य का उदाहरण अधोलिखित है-

"राजा —तो कुछ डर नहीं अभी चढ़ो, रानी और राजकुमार को जल्दी बुला लो, जल्दी! जल्दी! (सिपाहियों से) चढ़ाओ सबसे पहले हम चढ़ेंगे, फिर रानी, राजकुमार, मन्त्री, सेनापति, थानेदार वगैरह को पारापारी फाँसी चढ़ा देना। भूलियो मत नहीं तो तुम लोगों को भी फाँसी दिलवा देंगे। फन्दा दुरुस्त करो। जल्दी! जल्दी!

सिपाही —बहुत अच्छा महाराज।

महन्तजी —(मन में) जहाँ विवेकमति नीति नहिं धरम न कारज विचार
तहँ आपद आगार पुनि नसत न लागे बार॥"[2]

इस प्रकार महन्त अपनी बुद्धिमानी से राजदरबार के सभी सदस्यों को फाँसी दिलवा देता है। भारतेन्दु के "अन्धेरनगरी" में महन्त केवल राजा को फाँसी

---

१. विजयानन्द त्रिपाठी - महाअन्धेरनगरी, पृ० १०-११, प्रथम संस्क०
२. वही, पृ० ७१, प्र०सं०

दिखाता है किन्तु त्रिपाठी जी के प्रहसन ने राज्यपरिवार की इन्द्रासन मैत्री का लघुप्रयास किया है । इसीलिए त्रिपाठी जी ने इस नाटक का नामकरण "महा-अन्धेरनगरी" किया है । हास्य की दृष्टि से प्रहसन उच्चकोटि का है । इसमें प्रयुक्त हास्य शिष्ट और संयत है ।

देवकीनन्दन तिवारी ने "कलयुगीविवाह" प्रहसन में तत्कालीन विवाह प्रथा का हास्यात्मक चित्रण किया है । समाज में अनमेल विवाह के कारण भयानक दुर्घटनाएं हुआ करती थीं । इन्हीं सामाजिक बुराइयों का आधार लेकर तिवारी जी ने इस नाटक का कलेवर निर्मित किया है । भौंभवि पाड़े जो एक धाकर जमींदार हैं अपनी सोलहवर्षीया पुत्री का विवाह पांच वर्ष के लड़के से कर देते हैं । विवाह के समय वर को मण्डप में देखकर स्त्रियाँ गीत गाती हुई हास्य प्रकट करती हैं । वर का रूप लावण्य तथा वरकन्या की अनमेल जोड़ी ही उक्त अवसर पर हास्य का कारण है । गीत का उदाहरण -

" मड़ए के नीचे आये हैं दुलहा रामा,
    पीड़ निकाई सुन्दरि रे ।
मुंह मुंह फुलवा आंखि टेपरिली रे,
    मुखिवाँ टेढ़ि अधि कारि रे ।
देखि के कुलीनीसौं वर जी भौंभवि रामा
    छोट दुलहा बड़ नारि रे ।।"[१]

समाज में प्रचलित बुराइयों पर तिवारी जी ने कटु व्यंग्य किया है । समाज में प्रचलित बुराइयों के कारण ऐसे अनेक लोग हैं जो कुलीन घरों में बिना विचार किये अपनी कन्या ब्याह देते हैं । प्रहसन में उन्होंने इस अनमेल विवाह को समाप्त करने का आवाहन किया है । उन्होंने कुलीन ब्राह्मणों पर अच्छा व्यंग्य किया है -

" गर्ग और गौतम शांडिल्य नाम से बैठहु कुल कुलीन कहाओ ।
वेद और शास्त्र पुरानहु को तुम धूरि प्रपंच से धूरि मिलाओ ।।

---

१. देवकीनन्दन तिवारी- कलयुगी विवाह, पृ० १७, प्र०सं०सन् १८६२ ई०

तीन बरो बारहुं पाँच बरिस्य के बालक व्याहि कुरीति बढ़ाओ ।
नारि बड़ी वर छोटहुं तापर भारत के मुँह खाक लगाओ ।।"[१]

बाबू नानकचन्द जी ने "जौनपुर का काजी" नामक प्रहसन की रचना की थी जो राधाचरण गोस्वामी द्वारा सम्पादित "भारतेन्दु" पत्रिका के तीन अंकों में क्रमश: प्रकाशित हुआ था । इस प्रहसन की कथावस्तु बहुत ही हास्यास्पद है । एक कुम्हार के पास एक गधा था जिसे आदमी बनाने के लिए कुम्हार ने मौलवी साहब के पास छोड़ दिया । थोड़े दिनों के बाद जब कुम्हार मौलवीसाहब के पास से गधा लाने गया तब मौलवी साहब ने कहा कि वह तो "जौनपुर का काजी" हो गया है । कुम्हार जौनपुर जाता है और उसे देखकर काजी साहब हैरान रह जाते हैं । कुम्हार को जब काजी का चपरासी धक्का देकर निकाल देता है तब कुम्हार का कथन हास्यात्मक है --

"कुम्हार -- अरे भैया हट जा । क्यों जोरावरी करे हैं । मोय है है बात तो कर लेन दे । यार्हे इसी दीसे है काजी बन कैसो आय के बैठ गयो है । मामा लोहारी (मुँह बनाकर) गधा कूं निकाल दो, हं सबरई नाहे किलेक रुपैया तरचा भयो है जब गधा से आदमी करायो है । लोरई कैसे फूल जब ही तो तेरो पलान केबरा धरो है ज्यों की त्यों लाऊं का ? और तेरे हाँकिने की छन्टी मेरे हाथ में ही है । बेब ई रहो तेरी नानी आते तेरी खाल उढ़ाई ही ।"[२]

नाटक के कथनों में हास्य का उद्रेक है । इसके लिखने का उद्देश्य मात्र मनोरंजन है । इसके हास्य में पेट फुलाने वाली शक्ति है ।

बलदेव प्रसाद मिश्र द्वारा लिखित "लल्लाबाबू" प्रहसन हास्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा प्रतापनारायण मिश्र के बाद प्रहसनों का होना एक प्रकार से बन्द हो गया था जिसे पुनरुज्जीवित करने के लिए बलदेव - प्रसाद मिश्र ने इसको रूपसे व्यय किए थे ।

---

१. देवकीनन्दन तिवारी - कलयुगी विवाह, पृ० ३० प्र०सं०,सन् १८६२ ई०
२. "भारतेन्दु" - राधाचरण गोस्वामी, अंक ६,७,८ (सम्मिलित) सन् १८८३ ,पृ०१२५

प्रहसन में रामदयाल, भैरवराम, लल्ला की अम्मा, ललूला बाबू इत्यादि पात्र हैं। लल्लाबाबू और उसकी माँ मिलकर रामदयाल को बन्दर बनाकर नचाती हैं। रामदयाल में अपनी पत्नी की एक भी बात इनकार करने की सामर्थ्य नहीं है। पाँच महीने में लल्लाबाबू बाग में तम्बू लगाकर सम्बू सोना चाहते हैं। वहीं एक बन्दर दिखाई देकर गायब हो जाता है। बन्दर के लिए लल्ला बाबू रोने लगते हैं। लल्ला की माँ उनके पिता को बन्दर बनाकर नचाती है जिससे हास्य की सृष्टि होती है। प्रहसन के अन्त में रामदयाल अपनी पत्नी से परेशान होकर कहता है -

" बीबी को जो मुँह चढ़ावे उसका है यह हाल।
बालक उनके करें ढिठाई जी को हो जंजाल।।"[१]

इस प्रहसन में रामदयाल के मूर्खतापूर्ण कार्य द्वारा हास्य प्रकट होता है। प्रहसन की प्रवृत्ति उपदेशात्मक है। हास्य में शिथिलता अधिक है।

नवलसिंह चौधरी ने "वेश्यानाटक" में विषयीपुरुषों की दुर्दशा का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। नाटक का नायक बनवारी वेश्याओं के चक्कर में फँस कर अपनी सारी सम्पत्ति गँवा देता है और अनेक रोगों का शिकार बन जाता है।[२] इंदन वेश्या उसकी सारी सम्पत्ति चूसकर उसे छोड़ देती है। इस कुकृत्य के ज्ञात होने पर पुलिस बनवारी को बुरी तरह परेशान करती है। अन्त में बनवारी अपने बुरे कर्मों पर पश्चाताप करता हुआ फकीर बन जाता है और हास्य का आलम्बन बनता है।[३] चौधरी जी ने विवाहादि अवसरों पर वेश्याओं को बुलाने वाले लोगों पर व्यंग्य किया है। इससे समाज पतनोन्मुख होता है।

गोपालराम गहमर ने "देशदशा" नाटक में तत्कालीन समाज पर हो रहे पुलिस पोस्ट आफिस आदि के भ्रष्टाचारों का हास्यात्मक वर्णन किया है। सर्वभोगदास दरोगा अपने स्वार्थवश मुंशी तथा बखौरी और घटोरी सिपाहियों से जनता को परेशान करके धन लाकर देने को कहता है। एक महाजन का लड़का हो

---

१. बलदेवप्रसाद मिश्र - लल्ला बाबू, पृ० २८, प्र०सं०

२. नवलसिंह चौधरी, वेश्यानाटक, पृ० ५६, प्र०सं०, १८६३ ई०

३. वही, पृ० ७०

जाता है । जब वह उसकी रिपोर्ट थाने में करने जाता है तो पुलिस उसे परेशान करके घूस पैसा ऐंठती है । इस नाटक में कचहरी और पोस्टआफिस इत्यादि के अन्याय और लूटखसोट का व्यंग्य चित्रण किया गया है । हरसोंधा किसान रविवार को पोस्टआफिस जाकर अपना मनीआर्डर लेना चाहता है लेकिन पोस्टमास्टर उससे अफीम के लिए पैसा लेना चाहता है । जब किसान उसे घूस देने को तैयार नहीं होता तो उसे पोस्ट आफिस के कर्मचारी परेशान करते हैं । हास्य का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है -

"पियून - सुनिये हम जो धीरे से कहते हैं वह कीजिए तो आज रुपया पा जाइएगा और नहीं तो यों हुल्लवपाड़ करते महीनों टहलते रहिएगा पर रुपया से भेंट नहीं होगी ।

हरसोंधा - अरे भाय । कवों तो कि मने में रखिहों ।

पियून - कहते हैं कि डाकमुंशी बाबू को कुछ अफीम के लिए और हमको कुछ पान-पता को दो तो ठीक हो जाय ।

हरसोंधा - तो भाय । हम तो भूंजा सतुरी लिहे आटी और कुछ नहीं आय चाहो तो ले लो ।"[१]

गहमर जी ने इस नाटक के बहाने से तत्कालीन सरकारी व्यवस्था पर अच्छा व्यंग्य प्रस्तुत किया है ।

"जैसे को तैसा" नाटक में गहमर जी ने वृद्ध विवाह के कुपरिणामों को चित्रित किया है । इस नाटक में अतिहास की प्रधानता है । रैसा अपनी लड़की की दूसरी शादी कर देती है । पहला दामाद आकर पुलिस में रिपोर्ट करता है उसके साथ कान्स्टेबिल आकर बहू को परेशान करता है । वह अपनी वृद्धावस्था में विवाह करके पश्चाताप करने लगता है । दामाद अपनी पत्नी भनीरा को देखना चाहता है, लेकिन उसकी जगह मुखिया रैसा को दिखाती है । दामाद को सन्देह हो जाता है कि उसकी पत्नी इतनी जल्दी कैसे सयानी हो गई ? घूंघट खोलने पर सारा भेद

---

१. गोपालराम गहमर- देशदशानाटक - , पृ० १८,प्र०सं०

खुल जाता है ।[१]

नाटक में सामाजिक बुराइयों पर व्यंग्य किया गया है । यत्र तत्र अति-हास की प्रधानता है ।

भारतेन्दुयुगीन अन्य व्यंग्यकार

किशोरीलाल गोस्वामी का "चौपट चपेट" प्रहसन की कोटि में आता है । इस नाटक में वैश्यागमन के भयंकर परिणामों का वर्णन किया गया है साथ ही साथ घूतक्रीड़, मद्यपान आदि दुर्व्यसनों की निन्दा की गई है । प्रहसन में व्यंग्य और वाग्छल[२] का उदाहरण मिलता है किन्तु कथावस्तु बहुत गन्दा है ।

देवदत्त शर्मा का "अति अन्धेर नगरी" (१८९५ ई०) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के "अन्धेरनगरी" के आधार पर लिखित है । इसमें भी मूर्ख एवं अन्यायी शासक के शासन काल की अव्यवस्था का वर्णन है और अंग्रेजी शासन व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है ।

श्री राधाकान्त जी ने १८९८ ई० में "देशी कुत्ता विलायती बोल" नामक प्रहसन लिखा था इसमें अंग्रेजी भक्त भारतीय लोगों पर कटु व्यंग्य किया है ।[३] कुछ भारतीय लोगा सभ्यता, संस्कृति, फैशन , शिक्षा में अंग्रेजों का अनुकरण करते थे उन्हीं पर व्यंग्य रूप में उक्त नाटक की रचना की गई है ।

भारतेन्दुयुगीन अन्य नाटकों में पन्नालाल का" हास्यार्णव" (१८८५ई०) रामलाल शर्मा का "अपूर्व रहस्य" (१८८८ ई०) हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ का" ठगी का चपेट" (१८८४ ई०) उल्लेखनीय हैं । इन नाटकों के विषय मद्यपान , वैश्यागमन, दुराचार, फैशनपरस्ती धार्मिक पाखण्ड आदि हैं जिनमें यत्र-तत्र व्यंग्य, हास्य, वक्रोक्ति का उदाहरण मिलता है ।

---

१. गोपालराम गहमर- बेधे की लैला - पृ० १२, प्र०सं०
२. किशोरीलाल गोस्वामी - चौपट चपेट- पृ० २१, प्र०सं० १८९७ ई०
३. राधाकान्त - देशी कुत्ता विलायती बोल -पृष्ठ १७, प्र०सं० १९०२ ई०

निष्कर्ष

भारतेन्दुयुगीन इन समस्त नाटकों पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करने पर यह प्रकट होता है कि इन नाटकों के विषय तत्कालीन समाज से संगृहीत किये गये थे। इन नाटकों के माध्यम से भारतेन्दु जी समाज सुधार करना चाहते थे यही कारण है कि समाज विरोधी तत्त्वों पर व्यंग्य अधिक किया गया। इस काल में प्रहसनों की रचना अधिक हुई। सांस्कृतिक दृष्टि से जो संक्रान्ति इस युग में थी वह प्रहसनों की संरचना के अनुकूल थी। पूर्वी और पश्चिमी संस्कृति के आदान-प्रदान से एक ओर जहां नव-जागरण का आलोक फैला, वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति की सुरक्षा, का प्रयत्न किया गया। तत्कालीन प्रहसनों में नवीन वैचारिक आलोक के परिणामस्वरूप प्राचीन रूढ़ि परम्पराओं, एवं अन्धविश्वासों पर व्यंग्य प्रस्तुत किया गया। धर्म के आड़ में भ्रष्टाचार करने वाले पंडे, पुरोहित धर्मगुरु, वैश्यागामी पुरुष आदि हास्य के आलम्बन बने।

भारतेन्दुयुगीन हास्य-व्यंग्य नाटकीय अभिनव प्रयोग था इसलिए भारतेन्दुयुगीन प्रहसन प्राय: असफल हैं। भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, देवकीनन्दन त्रिपाठी, राधाचरण गोस्वामी के अतिरिक्त प्राय: अनेक प्रहसनों के विषय सामग्री में मौलिकता नहीं है। गोस्वामी जी का हास्य शिष्ट तथा उच्चकोटि का है, उनके व्यंग्य में तीखापन अधिक है। अश्लील वाक्यों का प्रयोग बिल्कुल नहीं है। शेष प्रहसन निम्नकोटि के ही हैं क्योंकि उनके हास्य में स्वाभाविकता नहीं है। कृत्रिम हास्य कभी भी अच्छा नहीं हो सकता। प्रहसनों में नाटकीयता का अभाव खटकता है। परिस्थितियों द्वारा हास्योत्पादन जितना अधिक भारतेन्दु में है उतना इस युग में किसी भी नाटककार में नहीं है।

इस काल के प्रहसनों के विषय में भी मौलिकता नहीं है जिन विषयों पर भारतेन्दु दृष्टिपात किया था वे ही विषय शेष नाटककारों ने अपनायें। विषय-वैविध्य इस काल में नहीं था। वैश्यागमन, दुराचार, फैशनपरस्ती, पाखण्डी आदि

ही इस काल के प्रमुख विषय थे । यद्यपि इन विषयों के अवलम्बन से समाज सुधार का कार्य अवश्य हुआ है किन्तु हास्य-व्यंग्य के अपेक्षित सन्दर्भ में कोई विशेष अर्थ-सिद्धि नहीं हुई है । भारतेन्दु युग को हास्य व्यंग्य का आधारकाल माना जा सकता है फिर भी विषय प्रतिपादन, कलात्मक कौशल की दृष्टि से जिन नाटकों की संरचना हुई वे उत्कृष्ट कोटि के हैं ।

पंचम अध्याय

रंगमंचीय नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(सन् १८६५ — १९२५ ईसवी)

(परिचय, हास्य-व्यंग्य-प्रहसनों में हास्य-व्यंग्य, सामाजिक बुराइयों का चित्रण, मनोविनोद हेतु हास्य-व्यंग्य का प्रयोग, निष्कर्ष ।)

अध्याय - ५

रंगमंचीय नाटकों में हास्य और व्यंग्य (१८६५ — १९२५ ईसवी)

परिचय

हिन्दी नाटकों के दो रूप मिलते हैं —साहित्यिक और रंगमंचीय । साहित्यिक नाटकों में पाठ्यसामग्री की अधिकता होती है किन्तु रंगमंचीय नाटकों में अभिनय पर विशेष ध्यान दिया जाता है । नाटक दृश्यकाव्य है इसलिए उसका अभिनय होना आवश्यक है । इस दृष्टि से रंगमंचीय नाटक को हिन्दी साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता । रंगमंचीय नाटक भी नाट्यसाहित्य के एक प्रमुख अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं । रंगमंच सम्बन्धी उपकरणों का विकास इनमें अधिक मात्रा में मिलता है । ये नाटक परवर्ती नाटकों के लिए प्रेरणास्वरूप हुए और अतीत एवं वर्तमान के विकास सम्बन्ध की आवश्यक शृंखलाएं बन गई हैं ।[१]

हिन्दी भाषा में अभिनीत होने वाला सर्वप्रथम नाटक "जानकी-मंगल" था जो बाबू ऐश्वर्यनारायण सिंह के प्रयत्न से बनारस थियेटर में सन् १८६८ ई० में बड़ी धूमधाम के साथ खेला गया था ।[२] किन्तु यह नाटक अब प्राप्य नहीं है । उपलब्ध रंगमंचीय नाटक में सबसे पुराना नाटक "इन्दरसभा" (१८५३ ई०) है । यद्यपि इस नाटक में उर्दू का प्रयोग अधिक है किन्तु हिन्दी उर्दू-मिश्रित भाषा होने के कारण इसकी गणना रंगमंचीय नाटकों में की जाती है । कहा जाता है कि "इन्दरसभा" के अभिनय के लिए लखनऊ के कैसरबाग में रंगमंच बनाया गया था और स्वयं नवाब वाजिदअली शाह ने उसमें राजा इन्दर का अभिनय किया था ।[३] वास्तव में रंगमंचीय नाटकों का प्रादुर्भाव "पारसी थियेट्रिकल कम्पनी" के जन्मकाल से मानना चाहिए।

---

१. डॉ० सोमनाथ गुप्त - हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास , पृ० ४, तृतीय सं०

२. नाटक- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु ग्रन्थावली), पृ० ७५५ प्र०सं०

३. रामबाबू सक्सेना - ए हिस्ट्री आफ उर्दू लिटरेचर-, पृ० ३५१ प्र०सं०

रंगमंचीय नाटकों का इतिहास जानने के पूर्व नाटक मंडलियों का इतिहास जानना अत्यावश्यक है । हिन्दी रंगमंच का आदि रूप स्पष्टतया पारसी रंगमंच से मिलता जुलता है । प्रारम्भ में जिन नाटकमंडलियों द्वारा रंगमंचीय नाटकों का विकास हुआ है दो प्रकार की थी --व्यवसायी कम्पनियां तथा अव्यवसायी । इनका रंगमंच अस्थायी होता था । व्यवसायी कम्पनियां घूम-घूम कर नाटकों का प्रदर्शन किया करती थीं । अव्यवसायी कम्पनियों का भी कोई स्थायी रंगमंच न था । यदा-कदा आवश्यकता पड़ने पर प्रेक्षागृहों का निर्माण कर लिया जाता था ।

व्यवसायी नाटक मंडलियों में पारसी नाटक मंडलियों का नाम सर्वप्रथम आता है । इन कम्पनियों का उद्देश्य धनोपार्जन था । धीरे-धीरे उन्हीं प्रभावों से भारतीय लोगों ने भी धनोपार्जन हेतु नाटकमंडलियां खोलीं । इसी ध्येय से श्री पेस्टन जी फ्राम जी की अध्यक्षता में बम्बई में सन् १८७० ई० में "ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी" खोली गई । खुरशेद जी बल्लीवाला, कावसजी खटाऊ, सोहराब जी और जहांगीर आदि पारसी कलाकारों ने इस कम्पनी में अभिनय करके काफी ख्याति प्राप्त की थी ।

पेस्टन जी की मृत्यु के बाद यह कम्पनी टूट गई । खुरशेद जी बल्लीवाला ने सन् १८७७ ई० में दिल्ली में "विक्टोरियन थियेट्रिकल कम्पनी" खोली । इसी
अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी खोली। चौथी कम्पनी न्यू –
वर्ष कावसजी खटाऊ ने भी "अल्फ्रेड कम्पनी" के नाम से खुली, इसके मालिक मोहम्मद अली "नाखुदा" और सोहराब जी थे । सोहराब जी स्वयं अभिनेता थे और विशेषतया हास-परिहास का अभिनय करते थे । सन् १९१४ ई० में खटाऊ की मृत्यु के बाद उनकी कम्पनी मि० मदन को बेच दी गई । इसके "अहसान" और "बेताब" प्रसिद्ध नाटककार थे । इसी समय "न्यू अल्फ्रेड कम्पनी" शिथिल पड़ गई । आगा हश्र काश्मीरी ने उसे छोड़कर "शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी" नाम से अपनी अलग कम्पनी खोल ली । इसी समय पारसी नामसे खुलने वाली कम्पनियों की बाढ़ सी आ गई जिसके परिणामस्वरूप "ओल्ड पारसी थियेट्रिकल कम्पनी (लाहौर) "कुविली कंपनी" (देहली), "इम्पीरियल कम्पनी" आदि नाटक मंडलियों का निर्माण हुआ । लेकिन ये कम्पनियां चिरस्थायी न हो सकीं ।

पारसी नाटक कम्पनियों के अतिरिक्त काठियावाड़ की "सूरविजय" और मेरठ की "व्याकुलभारत" नामक व्यावसायिक कम्पनियां प्रसिद्ध थीं। यद्यपि इन कम्पनियों पर पारसीपन का प्रभाव था किन्तु इन कम्पनियों का ध्येय हिन्दी नाटकों का अभिनय करना था। मेरठ की "व्याकुलभारत" कम्पनी ने हिन्दी नाटक साहित्य की पर्याप्त सेवा की। राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद "बेताब" आगा हश्र काश्मीरी, तुलसीदत्त शैदा, हरिकृष्ण जौहर, बलदेव प्रसाद खरे, श्रीकृष्ण हसरत आदि नाटककारों ने हिन्दी नाट्यसाहित्य को समृद्ध किया है।

अव्यवसायी कम्पनियों में प्रथम नाम प्रयाग की "रामलीला नाटक मंडली" का आता है, जिसकी स्थापना सन् १८९८ ई० में हुई थी। कुछ समय बाद यह कम्पनी समाप्त हो गई। सन् १९०८ ई० में माधव शुक्ल ने "हिन्दी नाट्य समिति नाम से इसकी पुनः स्थापना की। दूसरी कम्पनी की स्थापना सन् १९०९ ई० में काशी में "नागरी नाट्यकला प्रवर्तन मंडली" नाम से की गई। कुछ समय बाद यह मंडली दो भागों में विभक्त हो गई। एक थी --"भारतेन्दु नाटक मंडली" और दूसरी "काशीनागरी नाटक मंडली"। इसके अतिरिक्त कलकत्ता में "हिन्दी नाट्य परिषद्" की स्थापना पं० माधव शुक्ल की अध्यक्षता में की गई। इन मंडलियों के अतिरिक्त हिन्दी रंगमंच के अस्थायी रूप में "विद्यार्थी रंगमंच" की स्थापनाएं हुईं। विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं कालेजों में इन मंडलियों के रूप में देखे जा सकते हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय का "ड्रैमेटिक हाल" उल्लेखनीय है। प्रत्येक वर्ष दीक्षान्त समारोह के अवसर पर यहां नाटक खेले जाते रहे हैं। इन कम्पनियों और पारसी कम्पनियों के नाट्यविधान में कोई अन्तर नहीं है। विषय की दृष्टि से हिन्दी नाटककारों ने पौराणिक विषयों पर सर्वाधिक नाटक लिखे हैं।

हास्य-व्यंग्य

पारसी नाटक कम्पनियों के नाटकों में जो हास्य प्रारम्भिक अवस्था में प्रयुक्त किये गये थे वे बड़े ही अशिष्ट थे। कम्पनी के प्रत्येक नाटक के साथ एक कामिक (प्रहसन) रहता था। पहले इन प्रहसनों का कोई भी सम्बन्ध मूल नाटक

से नहीं रखता था । इसका उद्देश्य करुणादि रसों से ऊबे हुए दर्शकों का मनोरंजन मात्र था । साथ ही साथ पात्रों को तैयार करने का अवसर भी मिल जाता था । कला की दृष्टि से यह कामिक बहुत ही भद्दे थे । इनमें निम्नश्रेणी की बातें होती थीं । इन प्रहसनों में प्रेमी-प्रेमिका अथवा पति-पत्नी में चुम्बन आदि के लिए झगड़े होते थे या जूतों, चप्पलों की बौछार पड़ती थी । फिर वे एक दूसरे का हाथ पकड़े मंच के भीतर चले जाते थे । जनता "वाह वाह" कर देती थी और तालियों से सारा वातावरण गूंज उठता था । वास्तव में नाटकों के प्रति कुरुचि उत्पन्न करने में ये कामिक ही सर्वाधिक उत्तरदायी थे । इन्हीं कारणों से पारसी रंगमंच की ओर से शिष्ट लोग उदासीन हो गये थे । सन् १८८३ ई० में भारतेन्दु जी ने इनके प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है -

"काशी में पारसी नाटक ~~को अभिनीत करने~~ वालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटक कर नाचने और "पतली कमर बल खाय" यह गाने लगा तो डा० थीबो, बाबूप्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान् यह कह कर उठ आये कि अब देखा नहीं जाता । ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं ।[1]"

पारसी कम्पनियों का मुख्य ध्येय धनोपार्जन करना था । वे रंगमंचीय व्यवस्था पर ध्यान नहीं देते थे । भाषा, साहित्य आदि के प्रचार का इनका उद्देश्य नहीं था । पैसे के लालच में ये कम्पनियां पात्रों से अनावश्यक अभिनय कराया करती थीं ।

पं० राधेश्याम कथावाचक और आगा हश्र काश्मीरी ने आगे चलकर कामिक और मूल नाटकों में सम्बन्ध स्थापित करना शुरू किया । यहीं से पारसी नाटकों का उद्धार प्रारम्भ हुआ । वीर अभिमन्यु में "राजाबहादुर" तथा हश्र के सिलवर किंग में "चीटक" तथा बेताब के महाभारत में हास्य-व्यंग्य का परिष्कृत रूप सुगमता पूर्वक पाया जाता है ।

श्रीकृष्ण "हसरत" का "सावित्री सत्यवान" प्रसिद्ध पौराणिक नाटक

---

१. नाटक-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु ग्रन्थावली), प्र०भा०, पृ० ७५३, प्र०सं०

है और अपने समय में कई बार पारसी नाटक कम्पनियों में खेला जा चुका है। सावित्री सत्यवान का परिणय एवं सत्यवान का वनगमन और मरण यमराज का सावित्री द्वारा पीछा किया जाना आदि इसकी कथा है। यह करुण रस प्रधान नाटक है किन्तु नाटक को रोचक बनाने के लिए बीच में प्रहसन जोड़ा गया है। प्रथम अंक के पांचवें दृश्य में भक्कड़ और फक्कड़ का प्रवेश होता है। दोनों मार्ग में एक दूसरे को धक्का देकर गिर पड़ते हैं और एक दूसरे का मुंह देखने लगते हैं। दोनों अविवाहित हैं इसलिए शादी की प्रशंसा करते हैं। दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में फक्कड़ और उसकी पत्नी वैवाहिक वेष धारण करके आते हैं फक्कड़ के सामने से बिल्ली गुजर जाती है। फक्कड़ उसी बिल्ली को इधर-उधर ढूंढता है। उसका कथन हास्योत्पादन करता है -

चम्पा - प्राणनाथ! यह क्या करते हो?

फक्कड़ --तेरी मां की बिलाड़ी, सगुरी ने सकुन में अपशकुन डाली। अब जो सामने आ जाय तो इतनी लातें मारूं कि उसका भुरता निकल जाय। (लात फटकारता है और चम्पा गिरती है।)[१]

दूसरे अंक में आठवें दृश्य में फक्कड़ और चमेली का वार्तालाप भी हास्य परक है। इस नाटक में हास्य केवल नाटक से ऊबने वाले दर्शकों के मनबहलाव के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्राय: इन दृश्यों में अपहसित और अतिहसित की सृष्टि हुई है। प्राय: ये हास्य अस्वाभाविक ही हैं।

बलदेवप्रसाद खरे का 'सम्राट् परीक्षित' एक पौराणिक नाटक है। इसमें राजा परीक्षित द्वारा समाधिस्थ ऋषि के सिर में सर्प डालना, कलियुग का अवतार, परीक्षित द्वारा भागवतश्रवण तथा उनकी मृत्यु का मार्मिक वर्णन है। पहले इस नाटक में हास्य का प्रयोग नहीं था किन्तु 'हिन्दी नाट्य समिति' ने अभिनय करते समय इसमें प्रहसन जोड़ने की प्रार्थना की। परिणामत: इसमें फाटकेबाजी का प्रहसन जोड़ दिया गया जो हास्य की सृष्टि करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

---

१. श्रीकृष्ण हसरत-सावित्री सत्यवान, द्वि०सं०,पृ० ५७,१९२३ ई०

प्रहसन में पहले लड़का और सेठ का वार्तालाप रोचक है। पुन: धींगड़, लौंडा और फक्कड़ का प्रवेश हास्यात्मक है। प्रहसन में प्रयुक्त लतीफे भी हास्योत्पादक हैं--

"अजब आफत ये आई है गजब की खींचतानी है।
पड़ी तकदीर की बिगड़ी बड़ी टूटी कमानी है।
पुलिस को द्रव्य लेने की अभी घिन्नी घुमानी है।
लतीफे का लतीफा है कहानी का कहानी है।"[१]

ये लतीफे हास्यात्मक एवं चित्ताकर्षक हैं। अभिव्यक्ति की दृष्टि से खरे के हास्य में मौलिकता अधिक है।

"राजाशिवि" खरे जी का दूसरा पौराणिक नाटक है। इसमें दानवीर शिवि की कथा को नाटक के साँचे में ढाला गया है। मनोरंजन की दृष्टि से इसमें भी एक प्रहसन जोड़ा गया है किन्तु वह नाटक के उद्देश्य से मिलता-जुलता है। खरेजी ने इस प्रहसन को बाबू रिखबदास जी बाफिली के बताये हुए प्लाट के आधार पर लिखा है। इस प्रहसन में डांडूमल्द नामक सूम सेठ का चरित्र चित्रित कर हास्य की सृष्टि की गई है। सेठ जी दीन दु:खियों को एक कौड़ी दान देना उचित नहीं समझते। उनके अनुसार वेश्याओं को धन लुटा देना धर्मविरुद्ध नहीं है।

रंडियों को धन लुटा दें धर्म्म के अनुकूल है।
पर दु:खियों को एक कौड़ी दान देना भूल है।"[२]

सेठानी धार्मिक प्रवृत्ति की है। वह गंगा स्नान करना चाहती है किन्तु सेठजी की आज्ञा नहीं है। सेठ जी स्वयं गंगास्नानार्थ जाते हैं। तटपर पंडित बैठा रहता है। वह स्नान के पूर्व ही दान लेना चाहता है। सेठजी चक्कर में

---

१. बलदेवप्रसाद खरे-सम्राट परीक्षित, पृ० ३२,प्र०ई० संवत् १९७९
२. बलदेवप्रसाद खरे --राजाशिवि-पृ० २४,प्र०ई० १९२२ ई०

पहुंच जाते हैं और कहते हैं -

'कहाँ से यह दुष्ट भिखारी आ पहुँचा -
है पुरोहित दुष्ट पूरा यह मुझे तिरशूल है ।
दुष्ट से फिर दुष्ट में दान देना भूल है ।।'[1]

अन्त में लालाक पुरोहित जबर्दस्ती दान ले लेता है । दान लेते समय पंडित जी का संकल्प भी हास्यपूर्ण है -"ओम् पुण्डरीकाक्षाय् जम्बूद्वीपे, भारत-खण्डे , आर्यावर्ते, भट्ठाये, नीलाधारे, स्मशान पारे, पण्डितवारे, ओम् मंगलम् गरुड़ध्वज । एक कौड़ी दानम् महादानं शुभम् । जय हो यजमान की ।"[2] यह ज्ञात रहे कि आजकल के गंगाघटी पुरोहित ऐसा ही संकल्प पढ़ते हैं उनपर भी व्यंग्य किया गया है ।

इस प्रकार जबर्दस्ती एक कौड़ी दान ले लेने से सेठ को चिन्ता हो जाती है और वह कहता है -

'गरुण कथा से दान लेना यह कहाँ का न्याय है ।
इस तरह से भाखुओं को दान देना भूल है ।'[3]

हरि जी ने सेठ के माध्यम से कृपणों पर कटु व्यंग्य किया है । उनके प्रहसनों में सजीवता और गुदगुदी भरा विनोद है जो पाठक को बलात् आकर्षित कर लेता है ।

हरि जी ने 'सत्यनारायण' नाटक में एक प्रहसन मूल कथा से जोड़ दिया है जिससे नाटक में रोचकता आ गई है । कथा के धार्मिक प्रसंग के साथ ही वर्तमान कथा पद्धति पर अच्छा व्यंग्य भी हुआ है । एक यजमान आकर पुरोहित जी से कथा सुनने की इच्छा प्रकट करता है । पण्डित जी यथोचित व्यवस्था करने की आज्ञा दे देते हैं । जब यजमान व्यवस्था करने चला जाता है तो वह मूर्ख पुरोहित अपने दो मोटक शिष्यों को पढ़ाने का स्वांग करता है। उसी

---

1. बलदेवप्रसाद खरे- राजा सिंह, पृ० ८३, १९२३ ई०
2. वही, पृ० ८४
3. वही, पृ० ८५

समय यजमान अपने साथियों सहित आकर पंडित जी के पास चौकी रख देता है पंडित जी उन शिष्यों को हटाकर कथारम्भ करते हैं । उनकी प्रवचन शैली से ही हास्य की छटा प्रस्फुटित होती है । उदाहरण --

(कथाप्रारम्भ करके)

"श्रीगणेशायनम: । सूत जी कहते भये, जो है सो कि पहले गणेश जी की पूजा करे, चन्दन चन्दन करें और सामने कुछ टका धरें । इसका भी कई पौराणों में प्रमाण लिखा है जो है सो । ओम विष्णोर विष्णोर मंगलम् भगवानम् पैसा ।"[1]

उसी समय एक लड़की आती है । पुरोहित जी उसे देखते हुए मन-मानी कथा कहते जाते हैं और यजमान से पैसा लेते जाते हैं । पंडित जी कथा में ही कहते हैं -" दुनिया है अचरज की माया, इसका कोई थाह न पाया ।"[2] लड़की बाहर चली जाती है तब पुरोहित का पहला अध्याय समाप्त हो जाता है । जब पुन: आकर बैठ जाती है तब पंडित जी का दूसरा अध्याय श्रोताओं को दी गई सूचना में ही समाप्त हो जाता है । पंडित जी पेटदर्द का बहाना करते हैं और यहीं प्रसाद वितरण हो जाता है । पुरोहित जी का उद्देश्य पैसा मात्र ही है --

" पैसा है यजमान बिचारा किसका गौरव कैसा है ।
मुझको है क्या मतलब भाई मेरा ईश्वर पैसा है ।।"[3]

खरे जी के हास्य में मौलिकता अधिक है । पौराणिक नाटककार होने के नाते उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाली लूट का हास्यात्मक वर्णन किया है । समाज के अनपढ़, आडम्बरी तथा चरित्रहीन पुरोहितों पर भी व्यंग्य किया है ।

---

१. बलदेवप्रसाद खरे - सत्यनारायण ~~कृष्णक विजय~~-पृ० ~~२५~~ २६,प्र०सं० संवत् १९७९

२. वही, पृ० ~~२३~~ २६

३. वही, ~~प्रस्तावना पृष्ठ (ग)~~ २३

उनके हास्य के सम्बन्ध में उमादत्त शर्मा का यह कथन उचित प्रतीत होता है - "नाटक में जो कौमिक (प्रहसन) दिखाया गया है, हंसी के लिहाज से वह बुरा नहीं हुआ है उसे देखकर कहीं लोग हंसेंगे कहीं शेम, शेम के नारे लगायेंगे।"[१]

जमुनादास मेहरा द्वारा लिखित "विश्वामित्र" नाटक में वसिष्ठ और विश्वामित्र का बड़ा रोचक वर्णन है। बीच में एक प्रहसन जोड़ा गया है जिससे कथाक्रम में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती और सामाजिकों का मनोरंजन भी हो गया है। आनन्दी पात्र का प्रयोग जान बूझ कर हास्य के लिए ही नाटककार ने किया है। उसका सारा कार्यव्यापार विदूषक जैसा है लेकिन नाटककार ने विदूषक रूप में उसका प्रयोग नहीं किया है। आनन्द क्षुत्क्षामपीड़ित वन में परिभ्रमण करता है उसी समय नारद जी आकर उससे पूछते हैं कि वह कहां घूम रहा है? आनन्दी उत्तर देता है कि "क्षुधारूपी जंगल" में घूम रहा हूं। वह नारद जी से पूछता है कि जब आप इतना भी नहीं जानते तो आप को त्रिकालदर्शी क्यों कहा जाता है।[२] आनन्दी के इन कथनों में वाग्छल और परिहास का प्रयोग किया गया है।

जंगल में आनन्दी प्रसन्न मुद्रा में विचरण करता है। वह उल्टा होकर तपस्या करने की बात सोचता हुआ कहता है -

"हा: हा: हा: हा:। पूरी, कचौरी, लड्डू, पेड़े, जलेबी, इमरती के वृक्ष लग जायेंगे, मेरे भगवान "लक्ष्मई" (दूध की खीर) का मेह बरसायेंगे। बस, जहां मैंने उल्टे होकर तपस्या करनी प्रारम्भ की तहां पहले तो इन्द्र महाराज मेनका को हाथ पांव जोड़ कर मनायेंगे । फिर मेरी तपस्या भंग करने के उपाय में लग जायेंगे।"[३]

उसी समय लालचवश आनन्दी समाधिस्थ होकर बैठ जाता है। दो ब्राह्मण भोजन लेकर आते हैं। वे आनन्दी को पहचान कर उसके सम्मुख थोड़ा भोजन रखकर

---

१. बलदेवप्रसाद खरे -- सत्यनारायण - पृ० (ग) प्रस्तावना

२. जमुनादास मेहरा -विश्वामित्र, पृ० ४८, प्र०सं० १६२१ ई०

चले जाते हैं । आनन्दी भोजन को देखकर चिन्तित होता है कि इतना भोजन तो वह खाने के बाद भी खा जाता है । वह फिर समाधि लगाता है ताकि ईश्वर उसे पूर्ण भोजन दें । उसी समय दोनों ब्राह्मण उसके ढोंग को देखकर भोजन हटा लेते हैं । आनन्दी आँखें खोलकर देखता है और आश्चर्य व्यक्त करता है --उसके लालच और मूर्खतापूर्ण कार्य से हास्य की सृष्टि होती है -

"आनन्दी --(स्वत:) हैं । यह क्या । । भगवान् रुष्ट होकर वह
भोजन भी ले गये ? हाय हाय । यह तो बुरा हुआ --
टेका मस्तक भूमि पर टाँगे करी उतान ।
लालच वश दोनों गये भोजन अरु भगवान् ।।"[1]

इस नाटक का प्रहसन इसकी मूलकथा से सम्बद्ध है । हास्य की जो मनोवैज्ञानिक अवतारणा की गई है वह सहज है । प्रहसन में उपदेशात्मकता है । हास्य कहीं भी असंयत नहीं है । इसके हास्य में दर्शकों के प्रभूत मनोरंजन की शक्ति है ।

"कृष्णासुदामा" हास्यरस के कई दृश्यों से परिपूर्ण है । इसमें सेठ सूमदास के दो पुत्र पिता की पूँजी हड़पने में दो साधुओं की सहायता लेकर सफलता प्राप्त करते हैं । सेठ सूमदास अपनी इन करतूतों पर पश्चाताप करता है और रसायन बनाकर उस पूँजी को पुन: एकत्रित करना चाहता है । वह रसायन बनाने की लालच में अपना शेष धन भी नष्ट कर देता है ।[2] यह दृश्य हास्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है । जमुनादास जी के हास्य हँसाकर पेट फुला देते हैं । इनके हास्य में "अतिहसित" की प्रधानता है ।

"पाप परिणाम" जमुनादास मेहरा का प्रसिद्ध नाटक है । इसमें हफालचन्द्र वकील को हास्य का माध्यम बनाया गया है । उनके पास कभी कोई मुवक्किल नहीं आता है । एक दिन मनोरंजन नामक व्यक्ति, जिसके खिलाफ पुलिस का

---

१. जमुनादास मेहरा-विश्वामित्र,पृ० ८८-८९

२. जमुनादास मेहरा- कृष्णा सुदामा, पृ० ११, प्र०सं० १९२३ ई०

बारन्ट है, आकर वकील साहब के आफिस में बैठ जाता है और वकील साहब से मसविदा लिखवाने लगता है। वकील के फीस माँगने पर दोनों आपस में मार-पीट करने लगते हैं। इस प्रकार वकील और मुवक्किल को आलम्बन बनाकर हास्य की सृष्टि की गई है। नाटक के दूसरे दृश्य में हकालानन्द और उनकी पत्नी में भी लड़ाई होती है। उसी समय पंडित बगलीलानन्द आकर कल्लू नौकर से अपने यजमान और यजमानिन को पूछते हैं तो कल्लू कहता है -" वह दोनों मुकदमा लड़ रहे हैं।" कल्लू और पंडित जी के वार्तालाप में हास्य की सृष्टि होती है --

"बगलीलानन्द -- हैं। क्या मेरे यजमान ने अपने घर में ही न्यायालय स्थापित किया है ?

कल्लू-- नहीं, वकील साहब न्यायालय में तो दिन के वक्त मुकदमें लड़ते हैं और रात में जोरू के इजलास में घर के झगड़े निपटाते हैं। बस, आप इस समय जाइये, नहीं तो इस गरमागरमी में आपकी कुशल नहीं।"[१]

इस नाटक में मेहरा जी ने सामाजिक व्यवस्थाओं को उपस्थित कर हास्य की सृष्टि की है। समाज में ऐसे दृश्य प्राय: देखने को मिलते हैं जिन्हें हास्य का आलम्बन बनाया जा सकता है।

पं० नारायणप्रसाद बेताब ने "महाभारत" नाटक में महाभारत युद्ध की कथा का संक्षिप्तांश नाट्यरूप में प्रस्तुत किया है। इस नाटक में व्यंग्य का प्रयोग अधिक मिलता है। यत्र-तत्र हास्य भी प्रयुक्त है। नाटक के प्रारम्भ में ही धृतराष्ट्र ने "जुआ" की निन्दा करते हुए उस पर व्यंग्योक्ति की है -

" जड़ है जुआ कुकर्म की, दुराचार को यार।
इसमें हारे हार है जीते भी है हार ।।"[२]

---

१. जमुनादास मेहरा - पाप परिणाम, पृ० १६२, तृ०सं० १६२४ ई०

२. नारायणप्रसाद बेताब - महाभारत, पृ० २८, प्र०सं०

इस नाटक में व्यंग्यात्मक शैली में कहा गया है कि जुआ एक सामाजिक दुर्गुण है । इससे धन, धान्य, धर्म आदि का नाश होता है । यह नाश का मूल तथा पाप की जड़ है अत: इससे बचना आवश्यक है । नाटक में प्रयुक्त दल्लू तथा किसानों के वार्तालाप में हास्य की सृष्टि होती है । 'महाभारत' नाटक में बेताब के अन्य नाटकों की तरह प्रहसन का प्रयोग नहीं किया गया है । नाटक में वार्तालाप में ही पात्रों के कथोपकथन में हास्य-व्यंग्य के सूक्ष्म उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

बेताब का 'रामायण' नाटक एक पौराणिक आख्यान पर लिखित रूपक है । नाटक में पंचवटी के प्रसंग में राम और शूर्पणखा के वार्तालाप में हास्य के दर्शन होते हैं । शूर्पणखा राम से विवाह करने की इच्छा प्रकट करती हुई अपने गुणों का स्वत: वर्णन करती है । वर्णन में व्याप्त वैपरीत्य 'स्मित' को प्रकट करता है —

" सुर किन्नर मेरे पती बने इतनी उनकी औकात कहाँ ?
गन्धर्वों में यह हुस्न कहाँ, यह रूप कहाँ, यह गात कहाँ ?
मैं कहाँ फूल ब की सी पती वो आक ढाक के पात कहाँ ?
हो लाख हसीन जमाने में लेकिन फिर भी यह बात कहाँ ?
हाँ, तुम कुछ कुछ इस काबिल हो जो पती बनो और प्यार करो ।
मैं तुमको अंगीकार करूँ तुम मुझको अंगीकार करो ।। "[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में शूर्पणखा द्वारा अपने सौन्दर्य की आत्मप्रशंसा और उसके लिए पति रूप में राम का कुछ-कुछ उपयुक्त होना ही हास्य में परिणत हो जाता है । रामचन्द्र जी द्वारा प्रणय प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिये जाने पर शूर्पणखा वाक्छल का आश्रय लेती है । वह सीता को राम के अयोग्य ठहराने का प्रयास करती है । हास्य-व्यंग्य का निम्न वार्तालाप रोचक है —

---

१. नारायण प्रसाद 'बेताब' रामायण, पृ० १२६,प्र०सं०

"राम -वास्तव में तुम सब प्रकार हमसे श्रेष्ठ हो परन्तु भद्रे । एक स्त्री के होते हुए हम दूसरी को अर्द्धांगिनी किस तरह बना सकते हैं ?

शूर्पणखा - जिस तरह तुम्हारे बाप ने बिना किसी झिझक के बना रक्खी है । बड़े ब्रह्मचारी मेरे ही सामने शेखी बघारी, मुफ्त की बात बनाते हो पिता ने तो तीन-तीन विवाह कर लिये तुम दो से घबराते हो ।

राम - कुछ हो परन्तु राम को सीता के सिवाय.... .... . ।

शूर्पणखा - अभी इसे चूल्हे में डालो, निगोड़ी, कुरूपा कराला काली-काली टेढ़े पेट वाली ।"[१]

नारायणप्रसाद बेताब एक उच्चकोटि के कलाकार थे । उन्होंने अपने नाटकों में हास्य का जो स्वरूप प्रदर्शित किया है उसमें अश्लीलता और अतिरंजना का अभाव है । हास्यात्मक कथोपकथन सजीव हैं और उनमें हास्य की सहज सृष्टि हुई है । रंगमंचीय नाटककारों की तरह बेताब ने भड़ौआ का आश्रय न लेकर स्वच्छन्द हास्य की सृष्टि की है । बेताब के हास्य शिष्ट और संयत हैं ।

राधेश्याम कथावाचक का 'मशरिकी हूर' उर्दूभाषाप्रधान हिन्दी नाटक है । इसमें यत्र-तत्र वाग्वैदग्ध्य का प्रयोग किया गया है । गजनी खाँ शादियाबाद का एक नृशंस सुल्तान है । वह गरीब किसानों से फसल खराब हो जाने पर भी जबर्दस्ती लगान वसूल करता है । शादियाबाद का शहरपदर रहनुमा जलाल उसे डाकू कहकर सम्बोधित करता है । सलामत और जमाल के वार्तालाप में वाग्वैदग्ध्य का उदाहरण मिल जाता है -

"सलामत- हैं, शरीफ डाकू सुलतान को भी शरीफ डाकू कह डाला ।

जलाल - हाँ - अब तक शरीफ डाकू कहा था अब कमीन डाकू कहने को तैयार हूँ । बतलाओ-बतलाओ, गरीब किसानों की फसल न पैदा होने पर भी जबर्दस्ती लगान लिया जाता है क्या यह उनकी कमाई पर डाका नहीं है ?....

---

१. नारायणप्रसाद 'बेताब' - रामायण, पृ० १३०, प्र०सं०

यही इन्साफ़ है शहज़ोर कमज़ोरों को खाते हैं ।
इसी पर डाल कर डाका इन्हें डाकू बताते हैं ।
गुनहगारों सुनो एक दिन ख़ुदा का सामना होगा ।
गुलाम होंगे तुम्हारे और ख़ुदा का सामना होगा ।।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण से गज़नी खाँ के शासन का सारा चित्र स्पष्ट हो जाता है । नाटककार ऐसे अन्यायी शासकों पर व्यंग्य करने से भी नहीं चूका है । गज़नी खाँ की शासन-व्यवस्था के माध्यम से कथावाचक जी ने अंगरेज़ी शासन की दुर्व्यवस्था पर व्यंग्य किया है । शिष्ट हास्य का उदाहरण इस नाटक में नहीं प्राप्त होता है ।

कथावाचक का 'वीर अभिमन्यु' नाटक पारसी कम्पनियों का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है । इसकी कथा पौराणिक है । इसका आख्यान महाभारत से लिया गया है । इस नाटक में राजाबहादुर का समावेश प्रहसन के रूप में किया गया है । प्रहसन के प्रारम्भ में ही राजाबहादुर ख़ुशामद की प्रशंसा करता है । ख़ुशामद से ही आज उसे बहादुर की उपाधि मिली है । उसकी बहादुरी ही हास्य का कारण बन जाती है -

"बिजली जब कहीं चमकती है तो हम कमरे में छिपते हैं ।
बिल्ली जब म्याऊँ करती है तब अपने प्राण निकलते हैं ।
चूहे जब खटपट करते हैं तो हम मुँह ढाँके रहते हैं ।
यारो हम ऐसे नाज़ुक हैं और लोग बहादुर कहते हैं ।।"[2]

राजाबहादुर और खटपट सिंह का वार्तालाप भी हास्यपूर्ण है । खटपट सिंह चला जाता है तब पत्नी अपने पति की हरकत पर दुःख प्रकट करती है । राजाबहादुर पाण्डवों के युद्ध में जाने से इनकार कर देता है तो उसकी पत्नी सुंदरी

---

१. राधेश्याम कथावाचक- मशरिकी हूर, पृ० ७१,७२, सन् १९३५

२. राधेश्याम कथावाचक - वीर अभिमन्यु, पृ० ५१ एका०सं० १९५० ई०

स्वयं सैनिक का वेष धारण करती है। सुन्दरी एक जगह छिप जाती है। राजा बहादुर अपनी शेखी मारता है। वह बहादुरों के प्रकार भी कहता है - "दुनियां में कई तरह के बहादुर होते हैं एक तो वह हैं जो हथियार से लड़ते हैं, दूसरे वह हैं जो कलम से लड़ते हैं, तीसरे वह हैं जो ज़ुबान से लड़ते हैं। कोई हमसे पूछे कि इनमें से कौन सा बहादुर बढ़िया है तो हम यही कहेंगे -ज़बान से लड़ने वाले सबसे बढ़िया हैं उससे कम कलमवाला और सबसे घटिया तलवार वाला।"[1]

द्रोणाचार्य के सेनापति होने पर राजा बहादुर व्यंग्य करता है -

" ब्राह्मण सीधी जाति भला क्या लड़ना जानें।
जो कोई जोड़े हाथ उसे आशीष बखानें ।।

× ×

ऐसी सीधी जाति लड़ाई और लश्कर में।
रसगुल्ला भी कहीं दिया जाता है ज्वर में ।।"[2]

यत्रतत्र परिहास के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं जिन दुर्गुणों के कारण पारसी कम्पनियों के नाटक से लोग उदासीन हो गये थे। उन दोषों का परिष्कार कर कथावाचक जी ने शिष्ट, परिष्कृत हास्य-व्यंग्य का उपयोग किया।

'परमभक्त प्रह्लाद' नाटक में मूल कथा के साथ ही प्रहसन जोड़ कर हास्य की पुष्टि की गई है। लोभीलाल उसके पुत्र प्रमोद का दौलत और नाम के सम्बन्ध में विवाद और उसकी पत्नी द्वारा निपटारा, प्रह्लाद के साथ प्रमोद का स्कूल जाना और अध्ययन करना आदि हास्यात्मक प्रसंग है। बीच में ब्राह्मणों का वार्तालाप व्यंग्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

लोभीलाल और प्रमोद मुवक्किल की हैसियत से बेगला के न्यायालय में जाते हैं। लोभीलाल स्वयं अपने कथनों द्वारा मूर्ख बनकर उपहासास्पद बनता है।

---

१. राधेश्याम कथावाचक - वीर अभिमन्यु, पृ० १२६, एका०सं० १९५०
२. वही, पृ० ५५

एक उदाहरण निम्नलिखित है —

" चंचला-बस, फिजूल बातें मत करो- मामला पेश हो।

लोभीलाल— अच्छा तो सुनिये—मैं मुन्शी लोभीलाल वल्द क्रोधीलाल वल्द कामीलाल वल्द मोहीलाल वल्द भोगीलाल.....।

प्रमोद - (झुंझलाकर) इतने कायदों की पाबन्दी न करके मतलब पर ही आइये न ?

लोभीलाल— देखिये हुजूर ! यह बेवकूफ का बच्चा दखल-दर-माकूलात करता है।"[1]

पात्रों की सजीवता, हास्य की मधुरता, वार्तालाप का संयत माध्यम, यत्र-तत्र व्यंग्य की छटा आदि इस नाटक की विशेषताएं हैं। इसमें प्रयुक्त हास्य कहीं भी अरुचिकर नहीं है। संवादों में सजीवता अधिक है। हास्य में सहजता एवं गुदगुदीपन का आधिक्य है।

"द्रौपदी स्वयम्वर" नाटक न्यू अल्फ्रेड नाटक मंडली के स्टेज पर खेले जाने वाला अन्तिम नाटक है। यह मण्डली स्टेज नाटक दीपावली सम्वत् १९८८ को अभिनीत हुआ था। इस नाटक में प्रवीन सनाचित, भीम, बकासुर, नारद, कृष्ण आदि के वार्तालाप में हास्य मिलता है। विदुर और शकुनि के वार्तालाप में परम्परागत हास्य है। एक उदाहरण निम्नलिखित है —

"विदुर —शकुनि जी, यदि तुम हमारे भाई साहब धृतराष्ट्र के साले न होते.....
तो इस रंगभूमि में घुसने तक के भी अधिकारी न होते। किसी ने सच कहा है - दीवार खोई आलों ने और घरबार खोया सालों ने।

शकुनि- विदुर मुंह सम्हालो। जानते नहीं साले की पहुंच चूल्हे की जड़ तक हुआ करती है। हम अगर चाहें तो तुम्हारी रोटियां तक बन्द हो जायें।

विदुर -- हां भाई ठीक है, "बहन घर भाई और ससुर घर जमाई" बड़ी आदर की वस्तु समझी जाती है।"[2]

---

१. राधेश्याम कथावाचक-परमभक्त प्रह्लाद-पृ० ५६, चतुर्थ सं० १९५० ई०

२. राधेश्याम कथावाचक - द्रौपदी स्वयंवर, पृ० २६ ,तृ०सं०

प्राय: नाटककार दर्शकों के अनुरंजन के लिए विदूषक की परिकल्पना करते हैं । वे सामाजिकों के हृदय में गुदगुदी पैदा करके हास्य की वर्षा करते हैं किन्तु राधेश्याम कथावाचक इस दोष से मुक्त हैं । उन्होंने विदूषकजनित हास्य की सृष्टि सामान्य पात्रों से ही कर ली है । कृष्णा के विवाह के सम्बन्ध में नारद द्वारा कृष्णा पर किये गये कटाक्ष व्यंग्य की कोटि में आते हैं । इसमें हास्य की प्रधानता है --

"श्रीकृष्णा -- मालूम होता है आपका हँसोड़पन अभी तक समाप्त नहीं हुआ ।
नारद- मेरा हँसोड़पन तो आपके विवाहों के साथ-साथ है । जब तक आपके विवाह जारी रहेंगे मेरा हँसोड़पन भी जारी रहेगा ।
श्रीकृष्णा - आज की हँसी तो आपकी बड़ी गम्भीर है ।
नारद -- आपकी तो यह बहुविवाहवाली लीला गम्भीर है ।"[१]

कथावाचक जी ने "श्रवणकुमार" नाटक में कल्पना का अधिक आश्रय लिया है । इसलिए कथा का विस्तार प्रहसन को विस्तृत करके किया गया है । प्रहसन में विस्तार हास्यमय प्रसंगों को जोड़कर किया गया है । नाटक के प्रारम्भ में ही चमेली और लल्ली का वार्तालाप हास्यास्पद है । इसमें समाज में प्रचलित "सासबहू" सम्बन्ध पर अच्छा व्यंग्य किया गया है । नाटक के तृतीय दृश्य में महन्त चैतनदास और रामजीदास का वार्तालाप हास्यप्रधान है । चैतनदास साधु रामजीदास को बहकाकर शिष्य बना लेता है और उसके सहयोग से चमेली को शिष्या बनाता है । चैतनदास का ध्येय लोगों को बुद्धू बनाकर धन एकत्रित करना है ।

" जटा बढ़ा के तिलक चढ़ा के बाबा जी कहलायेंगे ।
कानफूंक के, हाथ देख के, माल मुफ्त का खायेंगे ।
गांजा, सुलफा, भंग, पियेंगे घर-घर अलख जगायेंगे ।
दुनियां के भोले जीवों को उल्लू खूब बनायेंगे ।।" [२]

---

१. राधेश्याम कथावाचक - द्रौपदी स्वयंवर, पृ० ६२,६३
२. राधेश्याम कथावाचक- श्रवणकुमार, पृ० २१, पं०सं० (१९२६ ई०)

चैतनदास चमेली को शिष्या बनाकर उसका सारा धन लूट लेने की बात सोचता है-

"फक्कड़ बाबा के लिए है बस किसकी चाह ।
युक्ति और ही है यहाँ है और ही सलाह ।।
मालदार कामिनी पै, डाल प्रेम का जाल ।
लूट लेयेंगे किसी दिन उसका सारा माल ।।"[१]

समाज में ऐसे अनेक ढोंगी, पाखण्डी साधु मिलते हैं जो बाह्याडम्बर के माध्यम से सम्पत्ति एकत्रित करने का व्यापार करते हैं । ऐसे साधुओं को हास्य का आलम्बन बनाया गया है । चैतन दास स्वयं ठग है लेकिन दूसरों को उपदेश देता है -

" वेदपुराण का पाठ करो, तुलसी का कंठ धरो बाबा ।
हरिनाम को सुमिरो अष्ट-प्रहर मन का सब पाप हरो बाबा ।
जहँ सन्त महंत निवास करें तहँ कर सत्संग क तरो बाबा ।
कटु बैन कहो मत साधुन से हो जाओगे भस्म डरो बाबा ।।[२]

चैतनदास के भजन करते समय रामजीदास का पिता बैचरदास आता है और रामजीदास को घर चलने के लिए कहता है । रामजीदास के न जाने पर बैचर-दास चला जाता है और कहता है -

" हैं कहाँ नेता हमारे देश के आगे पधार ।
क्यों नहीं करते हैं ऐसे साधुओं का वे सुधार ।।"[३]

बैचरदास के इस कथन में ढोंगी साधुओं पर व्यंग्य है । कुछ समय बाद रामजीदास अपने गुरु की वंचक वृत्ति समझ उसका साथ छोड़ देता है । अन्त में चमेली बाबा जी से भी अधिक होशियार निकल जाती है । वह चैतनदास की झोली खाली करके

---

१. राधेश्याम कथावाचक - श्रवणकुमार, पृ० १०१, पंच० सं० १६२६ ई०

२. राधेश्याम कथावाचक- श्रवणकुमार, पृ० ४० बारहवां संस्क०, १६५० ई०

३. वही, पृ० ४१

उसकी हत्या भी कर देती है ।

कथावाचक जी ने इस नाटक के माध्यम से समाज में फैले हुए बाह्याडम्बर पर तीखा व्यंग्य किया है और हास्य का पर्याप्त प्रयोग किया है ।

राधेश्याम कथावाचक ने 'ऊषा अनिरुद्ध' नाटक में शैव और वैष्णव के झगड़े के माध्यम से ऐसे हास्य की सृष्टि की है जिसमें व्यंग्य प्रधान है । वह मूर्खों का हास्य न होकर शिक्षित लोगों का हास्य बन गया है । इस हास्य के परिणामस्वरूप कुछ सोचने विचारने की आवश्यकता पड़ जाती है । इसमें वर्णित हास्य केवल मनोरंजन मात्र की वस्तु नहीं है इसमें एक सन्देश है जो अपना गम्भीर अर्थ रखता है । नाटककार ने इस हास्य के माध्यम से देश के पाखण्डी, साधुओं और महन्तों की अविद्या, अन्धविश्वास, कपट और छल का वास्तविक चित्र सामने प्रस्तुत किया है । कथावाचक जी ने यह भी संकेत किया है कि यदि हिन्दू जाति के नेता, समाजसुधारक चाहें तो उन पाखण्डियों में प्रचार करके उनको आत्मोत्थान और राष्ट्रोन्नति की ओर अभिमुख कर सकते हैं ।

शैव और वैष्णव आदि धार्मिक सम्प्रदाय आपस में लड़ते झगड़ते हैं । उनका यह कार्य हास्य का आलम्बन है । कट्टर वैष्णव विष्णुदास सम्प्रदाय के नाम पर बलिदान हो जाता है। धार्मिक कर्मकाण्ड के नाम पर कत्ले आम के विरोध में कथावाचक जी ने हास्य की अवतारणा की है । कट्टर-पन्थी धर्म के नाम पर कितना बड़ा अत्याचार करते हैं । इसको व्यंग्यचित्र में प्रदर्शित करने के लिए ही राधेश्याम ने इस प्रसंग को जोड़ा है । सभी वैष्णव एकत्रित होकर शैवों को वैष्णव बनाते हैं । धार्मिक विश्वास ही यहाँ हास्यव्यंग्य का मूल है । कृष्णदास वैष्णव सम्प्रदाय में एकता की बात कहता है –

" करो तुम संगठन ऐसा कि जिससे जग में विस्मय हो ।
करो तुम संगठन ऐसा कि जिससे जाति निर्भय हो ।।
अनाचारी के अत्याचार की जड़ मूल से क्षय हो ।
कहीं से आसमां तक एक वैष्णव धर्म की जय हो ।।"[१]

---

१. राधेश्यामकथावाचक- ऊषा अनिरुद्ध, पृ० २०,प्र०ई० १९२५ ई०
२. वही, पृ० ३५

धर्म के नाम पर एकत्र होने वाले वैष्णावों की मूर्खता ही हास्य का कारण है । माधोदास वैष्णाव वाल्मीकि रामायण की कथा कहता है । श्रोताओं से उसका वार्तालाप हास्योत्पादक है ।

"सरयू - हाँ महाराज, बालकाण्ड के बाद कींष्किंधा काण्ड आता है ।

माधो —हाँ बच्चा छठा काण्ड बालकाण्ड उसके आगे सातवाँ काण्ड कींष्किंधा काण्ड आता है । इस काण्ड में नारद जी और सनत्कुमार ऋषि का संवाद है । जहाँ में बरसात का पानी नहीं सूखा था , वही कीष्किंधा थी । इ। इसी से वाल्मीकि जी ने इस काण्ड का नाम कींष्किंधा रक्खा है ।"[1]

इस प्रसंग में वैष्णावों की मूर्खता प्रकट करके हास्य का अतिशय प्रयोग किया गया है । निम्नवार्तालाप द्रष्टव्य है —"गोमती ० —एक बात और बता दीजिए गुरु जी । राम राक्षस थे या रावण राक्षस था ?

माधो —यह बड़ी साधारण बात है । क्योंकि रामायण जी में लिखा है कि -

रामो दाशरथि: साक्षाद्भगवान् विश्वव्यापक: ।

आत्मा वै सर्वभूतानां प्राणा: वै सर्व प्राणिनाम् ।।

इस प्रमाण से रावण भी राक्षस था और राम भी..... ।"[2]

नन्दकिशोरलाल का "महात्माविदुर" एक शिक्षाप्रद नाटक है । इसमें शिवनारायण सिंह द्वारा लिखित "कलयुगी साधु" नामक प्रहसन जोड़ा गया है । छबीलानन्द एक पाखण्डी महात्मा है । वह ठोढ़ाई को शिष्य बनाकर उससे सेवा करवाता है । टकौरदास भी उसी प्रकार का साधु है । वे तीनों एक साथ मिलकर एक तालाब के पास डेरा गिराकर सिद्ध साधु होने का पाखण्ड करते हैं परिणामत: चम्पा नामक बाँदी ~~पत्नी~~ अपनी मालकिन शान्ति सहित उनके चंगुल में फँस जाती है ।

---

१. राधेश्याम कथावाचक - ऊषा-अनिरुद्ध, पृ० ३१, प्र०सं० १६२५ ई०

२. वही, पृ० ३६,३७

शान्ति अभी कौड़शी है और उसका पति अस्सी बरस का है। अलबेलानन्द शान्ति के घर रात में जाकर उसे भगा ले जाता है। सेठ जी पुलिस द्वारा उन साधुओं को पकड़वा कर शान्ति को पुनः प्राप्त करते हैं। इस प्रहसन में ऐसे पाखण्डी साधुओं पर व्यंग्य द्वारा हास्य की सृष्टि कराई गई है। कलियुग में ऐसे साधु सर्वत्र मिलते हैं। साधुओं के चरित्र पर सेठ भगवानमल कहता है -

"कहिए तो भला, साधुओं का ऐसा कर्म ? साधुओं की प्रतिष्ठा इसलिए न घटती जाती है। ऐसे-ऐसे बेहूदों को घर में रखते क्या होता है ? जटा बढ़ाया टीका लगाया कि साधु हो गये। शैतान! योग, जप, ध्यान का ठिकाना नहीं और साधु बन गये। पूजा पाने लगा।"[१]

अलबेलानन्द शान्ति को लिये गाते हुए आता है। जमादार उन्हें पकड़कर पूछता है कि कैसे साधु हो ? तो अलबेलानन्द कहता है -

"हम लोग दोनों शाम गंगास्नान करते हैं। कुशासन पर कमलासन साध, आँखों को मूंदकर ध्यान करते हैं। विभूति सम्पूर्ण शरीर में लगाते हैं। गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। कमंडल से पानी पीते हैं, फिर भी साधु कैसे नहीं हैं ?"[२]

टकौरदास भी अपनी साधुता सिद्ध करता है - "भात को प्रसाद कहते हैं, दाल को बैकुण्ठी कहते हैं, नमक को रामरस कहते हैं, तरकारी को साग कहते हैं फिर साधु कैसे नहीं है, रामजी के आसरे से तुम भी कहो जमादार।"[३]

'श्रीमतीमंजरी' दुर्गाप्रसाद गुप्त का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें नाटककार ने हिन्दू मुस्लिम एकता की समस्या उठाई है। बीच में उधारचन्द का प्रकरण हास्य की सृष्टि करता है। चम्पा और मैना साथ ही साथ गाती हुई आती हैं। उनके गीत में ही हास्य प्रकट होता है।

---

१. नन्दकिशोर लाल - महात्मा विदुर, पृ० १११, प्र०सं० संवत् १९८०

२. वही, पृ० १२५

३. वही, पृ० १२६

'चम्पा -- जा रे कामै लला आँख ना मार रे ।
हत्यारे हो पूरे ऐयार रे ।

नैना -- आँख है कामी पंछी प्रम जल्मी ,
पिंजरे में पलकों के डाला रे ।'[१]

चम्पा और नैना का वार्तालाप रोचक है । उधारचन्द्र अपने मकान को नीलाम करके दूसरे मकान में रहने लगता है । उसके ऊपर कर्ज अधिक है मकान की नीलामी की सूचना सुन कर रोकड़चन्द्र और मरोड़चन्द अपने उधार रुपये ले लेता है । उधारचन्द्र की बैचेनी में हास्य की सृष्टि होती है ।

बाबू दुर्गाप्रसाद का हास्य ऊहामूलक है । इसमें भौंड़ापन अधिक है । इसका हास्य प्रभावोत्पादक नहीं है ।

गोपाल दामोदर तामस्कर के 'राजा दिलीप नाटक' में राजा दिलीप के पुत्रेच्छा हेतु वशिष्ठ के आश्रम में जाकर उनके गोचारण का वर्णन है । बीच में राजा, सुताशन, कुताशन, कुबजा आदि पात्रों की उपस्थिति हास्योत्पादन के लिए की गई है । कुताशन और उसकी पत्नी की लड़भगड़ हास्य की भीनी फुहार प्रदान करती है । समाज में ऐसे दृश्य उपस्थित होते रहते हैं जिनसे हास्य की सृष्टि होती रहती है । इसके अतिरिक्त कुताशन द्वारा सुताशन की राह देखना, कुताशन का भूत बनना , सुताशन द्वारा भूत की पूजा किया जाना हास्योद्रेक का कारण बन गया है । निम्न वार्तालाप हास्य प्रकट करता है --

'सुताशन -- अब कहिए मेरे लड़का कब होगा ?
कुताशन -- अच्छा मैं अब तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हूं इसलिए वर देता हूं कि तेरी पत्नी की अवस्था जब पचास साल की समाप्त होकर इक्कावनवां साल लगेगा तब तेरी पत्नी को एक पुत्र नहीं तो एक पुत्री जरूर होगी ।'[२]

---

१. दुर्गाप्रसाद गुप्त - श्रीमती मंजरी, प्र०सं०, पृ० ३१

२. गोपालदामोदर तामस्कर-राजादिलीप नाटक,पृ० ३८,३६, प्र०सं० १६२७ ई०

नाटककार ने सामाजिक भूतपूजा का आलम्बन लेकर हास्य की सृष्टि की है किन्तु हास्य नाममात्र का ही है। हास्य की जो संवेदना अपेक्षित है उसका अभाव इस नाटक में है।

पं० रेवतीनन्दन "भूषण" ने "कर्मवीर नाटक" नामक पौराणिक कृति की रचना की है। इस नाटक में महाराज परीक्षित द्वारा ऋषि शृंगी के गले में सर्प डालना तथा उनके पुत्र द्वारा शाप का चित्रण है। नाटक के पांचवें दृश्य में चरसी, भंगड़, शराबी का दृश्य हास्य के लिए उपस्थित किया गया है। बाजार के चौराहे पर चरसी हाथ में चिलम लिये हुए आता है और "बम बम लगे दम, चिन्ता न गम, अब दम की दम"[1] करने लगता है। भंगड़ और शराबी भी अपनी अपनी भाषा का प्रयोग करने लगता है। इस नाटक में हास्य की सृष्टि तो होती है किन्तु उसका माध्यम भद्दापन है। प्रवचन में शराबी एक स्वप्न देखता है जिसमें शंकर भगवान निम्न रूप में दिखाई पड़ते हैं -" वह एक पीपल के पते पर शम्भू भोलेनाथ विराजमान थे। एक हाथ में बोतल थी एक में प्याला था और घटा-घट पी रहे थे। पीते-पीते सारे पानी को भी पी गये फिर उन्हें गोष आई तो बोतल को पत्थर पर दे मारा, बस उसके टूटते ही सारी की सारी दुनियाँ वैसी की वैसी हो गई।"[2]

रेवतीनन्दन जी ने अतिरंजना द्वारा हास्य की सृष्टि की है जिसमें अशिष्टता तथा भद्दापन है। इनका यह हास्य अश्लीलत्व दोष से युक्त है।

बाबू आनन्दप्रसाद कपूर द्वारा लिखित "गौतमबुद्ध" प्रसिद्ध ऐतिहासिक आख्यान को आधार लेकर लिखा गया नाटक है। यह नाटक पूर्णरूपेण करुणा एवं

---

१. रेवतीनन्दन भूषण -कर्मवीर नाटक, पृ० ९७, प्र०सं० संवत् १९८२
२. वही, पृ० १०२

वीभत्स रसों से परिपूर्ण है । लेकिन करुणा में डूबे हुए दर्शकों की मनोरंजन की सामग्री आवश्यक होती है । इसलिए इस नाटक में यत्र-तत्र हास्य की भी अभिव्यंजना की गई है । नाटक में प्रयुक्त पुरोहित पात्र हास्य की सफल अवतारणा करता है । वह वीतरागी सिद्धार्थ के मन को बदलने के लिए वेश्या को बुलाता है । उसके साथ पुरोहित का वार्तालाप हास्यात्मक है । पुरोहित विदूषक की भाँति कहता है -

" या जग में जनमाय कै भगवन करौ सहाय ।
षड्रस भोजन नित मिलै सरिता हँसी बहाय ।।"[१]

इसमें पुरोहित के लालच और पेटूपन के प्रदर्शन में हास्य प्रकट होता है । नाटकीय हास्य का एक उदाहरण तीसरे अंक में प्राप्त होता है । इसमें सेठ यश के मदिरापान और वेश्यागमन पर व्यंग्य किया है । यश और मित्र दोनों शराब पीते हैं । मित्र वेश्या के हाथ से शराब लेकर पीते हुए कहता है -

" जो करे पीने से इनकार कमीना होगा ।
क्योंकि तुमप्यार से कहती हो कि पीना होगा ।।"[२]

नाट्यकार ने समाज में फैली हुई इन बुराइयों के प्रति सामाजिकों को सजग करना चाहता है । इसीलिए उसने व्यंग्य का प्रयोग किया है । नाटककार के व्यंग्य प्रयोग में समाजसुधार की भावना निहित है ।

निष्कर्ष

पारसीकम्पनियों का ध्येय धनोपार्जन मात्र था । इसलिए इनके नाटककारों ने पौराणिक आख्यानों के आधार पर ही सर्वाधिक नाटकों की रचना की । धार्मिक खेलों के प्रति जनता स्वतः आकृष्ट हो जाती थी । इसलिए इन

---

१. आनन्दप्रसाद कपूर- गौतम बुद्ध, पृ० ५६,पृ०८०
२. वही, पृ० ८६

नाटकों के द्वारा मंडलियों के मालिकों ने धन और यश दोनों का पर्याप्त अर्जन किया। कम्पनियों के नाटककारों ने सामाजिकों की मनोवृत्ति का ध्यान रखते हुए मनोरंजन हेतु हास्य-व्यंग्य की सामग्री आवश्यक समझकर नाटककारों ने मूल नाटक में प्रहसनों को जोड़ना शुरू किया। किन्तु व्यवसायी नाटकों में अश्लील एवं भद्दे कामिक ही सर्वाधिक प्रयुक्त हुए हैं। आगे चलकर नारायणप्रसाद बेताब राधेश्याम कथावाचक, आगा हश्र काश्मीरी आदि कलाकारों ने समाज का ध्यान रखकर हास्य-व्यंग्य का उपयोग किया। इनके नाटकों में हास्य-व्यंग्य का शिष्ट और परिष्कृत रूप पाया जाता है। हास्य की दृष्टि से इनके प्रहसन अच्छे बन पड़े हैं। हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से रंगमंचीय नाटकों के महत्व को इनकार नहीं किया जा सकता। आलोच्य विषय के सन्दर्भ में रंगमंचीय नाटकों का महत्वपूर्ण योगदान है।

षष्ठ अध्याय

प्रसादकालीन नाटकों में हास्य और व्यंग्य (१९०६ ई०–१९३५ ई०)

(परिस्थितियाँ– राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, हास्य व्यंग्य-परिष्कृत हास्य व्यंग्य का प्रारम्भ, हास्य-व्यंग्य पर पाश्चात्य प्रभाव, विदूषक प्रधान हास्य का अभाव, संस्कृति एवं शिक्षा की दुर्दशा पर हास्य-व्यंग्य, आर्थिक संकट सामाजिक अव्यवस्था एवं आध्यात्मिक नैतिक पतन एवं उसके विरोध में व्यंग्य का प्रयोग, निष्कर्ष।)

अध्याय- ६

प्रसादकालीन नाटकों में हास्य और व्यंग्य (१६०६- १६३५ ई०)

परिस्थितियाँ- राजनैतिक

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ही भारतीयों में अंगरेजी शासन के प्रति प्रबल विरोध का बीज अंकुरित हो उठा । दुर्भिक्ष, महामारी, पक्षपातपूर्ण शासन, दूषित आर्थिक नीति आदि के कारण सम्पूर्ण देश में असन्तोष की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और भारतीय राजनीति अपना उग्र रूप धारण करने लगी ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में देश की राजनैतिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी । देश में स्वाधीनता के लिए संग्राम किये जा रहे थे । अंगरेजों ने देश के साथ कुछ ऐसे बुरे कार्य किये जिनके विरोध में राष्ट्रीयता का तीव्र स्वर मुखरित हुआ । अंगरेजों ने कांग्रेस की बढ़ती हुई शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के लिए मुसलमानों में धार्मिक अलगाव की प्रेरणा प्रदान की । १६०५ ई० में मुस्लिम-लीग की स्थापना तथा बंग-विच्छेद का उद्देश्य मुसलमानों की अलगाव की भावना को उभारना ही था । इस उभार से देश की राष्ट्रीयता को गम्भीर धक्का लगा । मार्ले मिन्टो सुधार में मुसलमानों को अलग मताधिकार की सुविधा प्रदान की गई । सर सैय्यद अहमद खां ने अलीगढ़ में मुस्लिम कालेज की स्थापना करके मुसलमानों के लिए अलग शिक्षा की व्यवस्था की । इसी समय हिन्दुओं में भी सांस्कृतिक आन्दोलन शुरू हुए । उनकी प्रतिक्रिया के रूप में अंग्रेजों के इशारे पर मुसलमानों ने अपनी संस्कृति को भारतीय संस्कृति से अलग समझना प्रारम्भ किया । सन् १६०५ई० हमारे स्वातन्त्र्य आन्दोलन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है । इस वर्ष जनता में नवजीवन का संचार हुआ और वह अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करने के लिए

उत्सुक हो उठी ।[१]

प्रथम महायुद्ध के बाद भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । विश्वयुद्ध के बाद देश की आर्थिक स्थिति क्षीण हो चली । अंगरेजों ने देश के शोषण की नई नीति निकाली, यह बैंकपूंजी द्वारा शोषण की नीति थी । सन् १९१४ ई० के बाद अंगरेजों का यह शोषण और भी तीव्र हुआ । भारतीयों द्वारा इसके प्रतिकूल आवाज बुलन्द करते हुए देखकर अंगरेजों ने कुछ प्रमुख भारतीयों को अपनी ओर आकृष्ट करना प्रारम्भ किया । कुछ लोगों को धन, सम्मान, नये पद, प्रदान करके अपनी ओर आकृष्ट किये । सन् १९२७ में भारतीय शासन में सुधार के लिए साइमन कमीशन बैठाया गया जिसमें एक भी भारतीय सदस्य नहीं रखा गया । देश भर में इसका घोर विरोध हुआ । कांग्रेस ने इस कमीशन के विरोध में हड़तालें आरम्भ की । भारत सरकार ने दमन का रास्ता अपनाया । लाहौर में प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज हुआ जिसके फलस्वरूप लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई । प्रदर्शनकारियों का विरोध बढ़ने लगा और सन् १९३० ई०में असेम्बली में भगतसिंह ने बम फेंककर विरोध की आवाज सरकार तक पहुंचाई । इसी समय जगह-जगह किसानों और मजदूरों का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । १९३१ ई० में लार्ड विलिंगटन वाइसराय होकर भारत आये । इन्होंने और भी जोरदार दमन करना शुरू किया । कांग्रेस को गैरकानूनी संस्था घोषित कर दी । देश में इस प्रकार के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही साथ पूंजीपति अपनी तिजोरी ही भरने में लगे रहे । ऐसे समय में हिन्दी साहित्य की स्थिति भी संक्रमण की रही है ।

आर्थिक

देश की अर्थव्यवस्था पहले की ही भांति अब भी शोचनीय दशा में थी । कृषि और उद्योग-धन्धे पूर्णरूपेण नष्ट हो चुके थे । अंगरेज तथा राजेमहाराजे आर्थिक शोषण में तल्लीन थे । नौकरी करने वाले भारतीय अंग्रेजी सरकार के

---

१. आचार्य नरेन्द्रदेव - राष्ट्रीयता और समाजवाद , पृ० ९४,प्र०सं०

आश्रित थे। श्रमजीवियों की आर्थिक स्थिति बड़ी कष्टसाध्य थी। इसी समय प्रथम युद्ध के अनन्तर २६ लाख पौण्ड के घाटे को पूरा करने के लिए सीमा टैक्स बढ़ाया गया। विदेशों में भी भारतीय सेना पर हुए व्यय का भार देश पर ही पड़ा। भारतवर्ष द्वारा ब्रिटेन को १० करोड़ की सहायता देनी पड़ी जिससे देश पर कर भार अत्यधिक बढ़ गया।

इसी समय उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहित किया गया। किन्तु वह सामान्य जन के लिए लाभदायक सिद्ध न हो सका। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, गुजरात आदि में औद्योगिक केन्द्र खोले गये किन्तु इससे अर्थव्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सका। टाटा ने १९११ ई० में जमशेदपुर में लोहे का कारखाना खोला किन्तु सरकार ने इसकी भी उपेक्षा की। कारखाने में काम करने वाले मनुष्यों का जीवन पशुओं की तरह व्यतीत होता था।

कृषि पर आश्रित जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही। जमीन्दारों के अत्याचारों के अतिरिक्त दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि आदि के कारण अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। इसके परिणामस्वरूप किसानों ने चम्पारन में आन्दोलन शुरू कर दिया। चम्पारन में नील की खेती होती थी। वहाँ के किसान विदेशी - मालिकों के अत्याचारों से पीड़ित थे। गांधी जी ने १९१७ ई० में वहाँ पहुंचकर किसानों को अनेक सुविधाएं दिलाकर सहायता की। खेड़ा में किसानों ने गान्धीजी के निर्देशन में लगान बन्द कर दिया। अन्ततः वहाँ के किसान लगान से मुक्त कर दिये गये।

शिक्षा की उत्तरोत्तर वृद्धि से बेरोजगारी की समस्या बढ़ी मध्यमवर्ग, जिसका जीवन नौकरी पर आधारित था उनमें असन्तोष और निराशा की वृद्धि हुई। इसी समय गान्धी जी ने किसानों तथा मध्यवित्त परिवारों के सामने खद्दर और चर्खे की योजना प्रस्तुत की। इस दुरवस्था के अनेक चित्रण साहित्य में मिलते हैं।

<u>सामाजिक-धार्मिक</u>

आलोच्यकाल में समाज में धर्म के नाम पर अनेक पापाचार तथा अत्याचार हो रहे थे। जनता अनेक बाह्याडम्बरों के पीछे आँख मूंदकर चल रही थी। इन

रूढ़ि परम्पराओं के विरोध में अनेक सामाजिक तथा धार्मिक सुधार, अनेक संस्थाओं द्वारा किये जा रहे थे । आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण-मिशन आदि धार्मिक सुधारक थे । वेद, उपनिषदों से प्रेरणा लेकर धर्म के स्वरूप को विस्तृत किया जा रहा था । जनता किसी भी धार्मिक सिद्धान्तों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी । इस प्रकार समाज में एक ओर धार्मिक अधोगति दिखाई पड़ती थी तो दूसरी ओर जनता में सुधार की भावना भी उत्तरोत्तर अभिवृद्ध हो रही थी ।

सामाजिक व्यवस्था में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रारम्भ हो गये थे । समाज-सुधार राजनीति का प्रधान अंग बन गया था । अनेक सामाजिक संस्थाओं द्वारा सुधार कार्य हो रहा था । स्त्री शिक्षा का प्रचार व्यापक हो रहा था । दहेज-प्रथा , बाल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किये जा रहे थे । समाज का शिक्षित वर्ग सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में लगा था फिर भी ग्राम्यजीवन सामाजिक अभिशाप से मुक्त न हो सका । जाति-पाँति, छुआछूत जैसे अन्धविश्वास समाज में बने रहे । अविद्या, आलस्य, रोग आदि से समाज कुंठित था । दहेज प्रथा, विधवाविवाह, वेश्यावृत्ति आदि समाज में भयंकर रूप में विद्यमान थीं । सम्प्रदायभेद तथा धर्मभेद समाज में बढ़ रहे थे । समाज में अछूतों की समस्या शोचनीय थी । अंग्रेजों की नीति के परिणामस्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर घृणा की भावना उत्पन्न हो चुकी थी । अनेक भीषण साम्प्रदायिक दंगे भी इसी समय में हुए ।

हास्य-व्यंग्य

भारतेन्दुयुग में हास्य-व्यंग्य का जो बीजांकुर हुआ था उसका उत्तरोत्तर विकास होता रहा । किन्तु बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता का उग्र स्वर मुखरित हो जाने के कारण हास्य-व्यंग्य की वैसी प्रगति न सम्भव हो सकी जैसी भारतेन्दु युग में थी । इसी समय भाषा-सम्बन्धी आन्दोलन भी प्रारम्भ हो गये थे । महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा परिष्कार का आन्दोलन प्रारम्भ किया । इसलिए भारतेन्दु युग में जो हास्यशैलियों की बाढ़ आ गई थी वह इस युग [illegible] हो चली ।

द्विवेदी जी ने खड़ीबोली की प्रतिष्ठा एवं भाषासंस्कार में अपनी सारी शक्ति लगा दी । इस युग में व्यंग्यचित्रों का प्रचलन अवश्य हुआ । इस युग में हास्य-व्यंग्य की कोई प्रमुख पत्रिका भी नहीं निकलती थी । आगे चल कर 'सरस्वती' में 'विनोद और आख्यायिका' कालम का निर्माण हुआ किन्तु कुछ समय बाद इस शीर्षक को भी हटाना पड़ा । आगे चलकर प्रसाद के नाटकों में पाश्चात्य कामेडी के अनुसार हास्य-व्यंग्य की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । इस युग के अनेक नाटकों में सामाजिक कुप्रथाओं पर हास्य-व्यंग्य प्रयुक्त किये गये हैं ।

प्रसादकालीन प्रारम्भिक नाटककारों में बदरीनाथ भट्ट का प्रमुख स्थान है । उन्होंने कई प्रहसनों की रचना की है — (लबड़धोंधों ' (१६२६ ई०), विवाह-विज्ञापन (१६२७)' मिस अमेरिकन (१६२६), चुंगी की उम्मेदवारी आदि ।

'विवाह विज्ञापन' नाटक में पाँच दृश्य हैं । इस नाटक में एक ऐसे व्यक्ति को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो अपनी प्रियतमा की मृत्यु के अनन्तर पुन: विवाह न करने की इच्छा प्रकट करता है किन्तु उसकी आन्तरिक इच्छा है कि उसका विवाह किसी सर्वोत्तम राजकुमारी से हो जाय । एक पत्र-सम्पादक उससे रुपया ऐंठकर, विवाह के लिए एक विज्ञापन निकाल देता है जिसके फल स्वरूप उसका एक पुरुष से विवाह करा दिया जाता है जब वह पुरुष स्त्रीवेष त्यागकर प्रकट होता है तो हास्य की सृष्टि तत्कालीन परिस्थिति द्वारा होती है । प्रहसन में पत्र में प्रकाशित विज्ञापन हास्य की सृष्टि करता है जो निम्नलिखित है —

" एक अत्यन्त सुन्दर, सुशिक्षित, सुप्रसिद्ध, सुलेखक, सुकवि, सुस्वास्थ्य, समृद्धिशाली, लड़के के लिए एक अत्यन्त रूपवती, गुणवती, सुशिक्षिता, विनम्रा, आज्ञाकारिणी, साहित्य प्रेमिका सुकन्या की आवश्यकता है । लड़के की मासिक आय १०,००० रुपये है । लड़का गद्य व पद्य लिखने में तो कुशल है ही इंजीनियरी, डाक्टरी, प्रोफेसरी, एडीटरी आदि कलाओं में भी एक ही है । अपने घर में अवतार समझा जाता है । स्थावर व जंगम सम्पत्ति कई लाख की है । करोड़ कहना भी अत्युक्ति न होगी । घराना वेदों के समय का पुराना और लोक परलोक में

नामी है। लड़का समाज सुधारक होने के नाते जाति-बंधन से मुक्त है अर्थात् किसी जाति की भी कन्या ग्राह्य होगी, यदि वह इस योग्य समझी गई। पत्र-व्यवहार फोटो के साथ कीजिए। पता....... सम्पादक, बांगडू समाचार कार्यालय।"[१]

"लबड़धोंधों" भट्ट जी के छः प्रहसनों का संग्रह है -(१) हिन्दी की खींचातानी, (२) पुराने हाकिम साहब का नया नौकर (३) रंगड़ समाचार के एडीटर की धूलदच्छना (४) घोघा बसन्त विद्यार्थी (५) ठाकुर दानी सिंह साहब और (६) आयुर्वेद कलंक वैद्य बंगनदास जी कविराज।

"हिन्दी की खींचातानी" प्रहसन में उर्दू भाषा पर कठोर व्यंग्य किया गया है क्योंकि उस समय लोग हिन्दी भाषा को भी उर्दू के उच्चारणानुरूप बोलते थे। यह प्रहसन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सत्रहवें अधिवेशन भरतपुर (सं०१९८३) में मंच प्रस्तुतीकरण हेतु लिखा गया था किन्तु कतिपय कठिनाइयों वश उसका मंचन न हो सका। इसमें प्रयुक्त व्यंग्य का एक उदाहरण निम्न है -

"दलाल - तो क्यों महाराज, आप परचारक हैं परचारक ? आपका नाम शोरांकिर तो नहीं है शोरंकर।

परदेशी - "शोरंकर" क्या ? अरे तुम हिन्दू होकर और आर्य वंशज होकर एक बाहरी लिपि की बदौलत अपने आप अपने नाम बिगाड़ते हो। मेरा नाम शिवशंकर है शिवशंकर।"[२]

"पुराने हाकिम साहब का नया नौकर" प्रहसन में ऐसे मालिक और मालकिनों को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जिनके कड़े व्यवहार के कारण उनके यहाँ कोई भी नौकर टिक नहीं पाता। इस प्रहसन में तीन दृश्य हैं। हास्य का शिष्ट प्रयोग हुआ है। इसका उद्देश्य नौकर से ही व्यक्त करा दिया गया है।

---

१. बदरीनाथ भट्ट-विवाहविज्ञापन, पृ० १६, संवत् १९८४ वि०

२. बदरीनाथ भट्ट - हिन्दी की खींचातानी (लबड़धोंधों), पृ० ६७,सं० १९९१ई०

"नौकर —सच बात तो यह है कि कलट्टर, डिप्टी कलट्टर, ~~डिप्टी कलट्टर~~, टिकटकलक्टर, इंसपेक्टर, मास्टर, एडीटर, वगैरह बीसियों टरों के यहाँ मैंने नौकरी की, पर जो बढ़िया गाली यहाँ खाने को मिली, वे और जगह नहीं।

जरा घर में घुसा कि दोनों की दोनों बिल्लियों की तरह मेरे ऊपर टूटीं। जरा बाहर आया कि बुड्ढे खूसट ने खाया। बेतरह हैरान हूं। वाह री नौकरी! तू भी कैसे-कैसे तमाशे दिखाती है। लीजिए, अब हाल की हाल में, न कुछ बात थी न चीत, दोनों की दोनों मेरे ऊपर झाड़ू लेकर टूट पड़ीं और झट्टम-पैली करके मेरा कुरता फाड़डाला और मुझको नोंचा, खसोटा और कचोटा भी।"[१]

रैगड़ समाचार के एडीटर की धूलदच्छना" में उम्मीदवारों द्वारा सम्पादक की दुर्दशा का हास्यात्मक चित्रण है। हिसाब में छेद् जाने की भूल रह जाने के कारण एडीटर और एडीटराइन में झगड़ा हो गया और वे बिना खाये कार्यालय में चले गये वहाँ उन्हें डाकिया डाक देता है उसमें से पहला पत्र पढ़कर सम्पादक जी शेख को सड़क पर फेंक देते हैं। पुन: उनके सम्मुख मतलब सहाय नामक उम्मीदवार आता है। उससे सम्पादक जी की परेशानी और बढ़ जाती है। अन्तत: सभी उम्मीदवार एडीटर साहब को घेरकर परेशान करते हैं तब एडीटर साहब कहते हैं — घर से भागकर यहाँ आया हूं, अब यहाँ से कहाँ जाऊं, जहन्नुम में।"[२]

अब उम्मीदवार शोरगुल और खींचातानी करते हैं तब एडीटर साहब उन लोगों को चिट्ठियाँ फेंककर तथा धूल फेंक-फेंक कर मारते हैं और गला फाड़कर कहते हैं — अरे कम्बख्तों! मुझे छोड़ो मैं एडीटरी से भी अस्तयीफा कर दूंगा।"[३]

'योग्य बसन्त विद्यार्थी' एक दृश्य का नाटक है। इसमें भट्ट जी ने शिकारपुर के रहने वाले एक विद्यार्थी का चित्रण किया है। उसके साथी उसे परेशान करने के लिए पूछते हैं —तुम कहाँ के रहने वाले हो? कुछ कहते हैं —आया

पुराने हाकिम साहब का नया नौकर

१. बदरीनाथ भट्ट-~~हिन्दी की खींचातानी~~ (लबड़धोंधों), पृ० ~~४७~~ २५,सं० १९९१,

२. बदरीनाथ भट्ट - रैगड़ समाचार के एडीटर की धूलदच्छना (लबड़धोंधों),पृ०७८

३. वही, पृ० ७९

शिकारपुरी भी । इन प्रश्नों को सुनकर वह विद्यार्थी मित्रों को गाली देता हुआ भाग जाता है ।

'पोंगा बसन्त -- यहां के लोग गुणावली तो देखते नहीं, घर का पता पूंछते हैं कि कहां के रहने वाले हो ? कहां के रहने वाले हो ? अरे, रहने वाले हैं तुम्हारे घर के । कहो क्या कर लोगे तुम हमारा ? कह दिया करता था कि जिला बुलन्दशहर का रहनेवाला हूं । पर अब किसी कम्बख्तने भगवान उसे सौ बरस तक सब विषयों में फेल करे और सत्यानाश जाय उसका -- आस्तीन का सांप, कुल्हाड़ी का बेंट कहीं का । और फिर आपको बोलना हो, बोलिये- जी हां, न बोलना हो न बोलिए । अपना रास्ता नापिये, चाल दिखाइये, हवा खाइए, सवारी के बढ़ाइए वगैरह-वगैरह और भी अच्छे वाक्य हैं । हम अलन्नम के रहने वाले सही, क्या कर लेंगे हमारा ।'[१]

'ठाकुरदानी सिंह साहब' भी एक दृश्य का प्रहसन है । इसमें नाटकीय अतिरंजना द्वारा हास्य की सृष्टि हुई है । इस प्रहसन में कठपुतली के तमाशे का वर्णन है । ठाकुर दानीसिंह कठपुतली का खेल देखते हैं । कठपुतली के खेल में मैं महाराज अकबर की आज्ञा लेकर मानसिंह चित्तौड़ जीतने के लिए जाता है और वह बादशाह को कई बार सलाम करके जाने के लिए पीठ फेरता है । ठाकुर साहब इसे वास्तविक घटना समझ कर कहते हैं --

'ठाकुर - (खड़े होकर, बड़े जोश के साथ) ठहर । पहले बतला कि कौन कहां और क्यों जाता है ?

पुतलीवाला -- हुजूर, ये (पुतली को बताता हुआ) राजा मानसिंह जैपुर-वाले बादशाह से हुक्म लेकर, चीतौड़गढ़ को जीतने --

ठाकुर - (क्रोध और जोश में) अरे जातिद्रोही । कलंकी । व पचारा । पहले मुझसे तो जान बचा ले, फिर कहीं जाने का नाम लीजे । मैं अभी लाशों को ढेर....... ।'[२]

---

१. बदरीनाथ भट्ट- पोंगा बसन्त विद्यार्थी (लबड़धोंधों) पृ० ८१, संवत् १९९१ विक्रमी
२. बदरीनाथ भट्ट - ठाकुरदानी सिंह साहब (लबड़धोंधों), पृ० ९८

ऐसा सोचकर ठाकुर साहब मानसिंह पर लाठी लेकर टूट पड़ते हैं और उसे तोड़कर अन्यपुतलियों को भी तोड़ देते हैं। दो एक हाथ पुतली वाले को भी जमाते हैं। तब पुतलीवाला चीखने लगता है -

" पुतलीवाला - हाय मैं मरा।

ठाकुर - हाय हाय कैसी ? साला चीतोड़ चीतेगा।

पुतली० - मैं मरा, हाय मेरा रुजगार गया।

ठाकुर - (कुछ ठन्डे होकर) क्या कहा ? क्या हुआ, क्या हुआ।"[१]

यह प्रहसन अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है। इसीप्रकार का एक दृश्य अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यास "डान क्यूक्ज़ोटी" में भी प्राप्त होता है।

"आयुर्वेद अजीरन वैद्य बैंगनदास जी कविराज" में एक मूर्ख वैद्य का चरित्र-चित्रित कर हास्य की सृष्टि की गई है जो जिन्दगी भर अनेक पेशा अपनाने के बाद अन्त में वैद्य बन जाता है। प्रहसन का उद्देश्य इसके नाम से ही स्पष्ट है कि नीम हकीम कैसे किस प्रकार भोली-भाली जनता से रुपये ऐंठ लेते हैं। बैंगनदास जी इसी प्रकार के एक वैद्य में जो जिन्दगी भर अनेकों पेशा करते हैं। उन्होंने कचौड़ी और पकौड़ियाँ भी बेची हैं लेकिन आज वैद्य बन बैठे हैं। उनकी दुकान में एक तपेदिक का रोगी आता है और अपनी कठिनाई प्रस्तुत करता है। तब वैद्य जी उससे कहते हैं कि -" मुझसे एक माफ धनवा लो, दवा तो दवा उससे दम तक निकल जाय।" धीरे धीरे वैद्यजी रामसहेली नामक स्त्री को फंसाकर उसके माध्यम से लड़कियों को पकड़कर व्यभिचार करते हैं और पंसारियों से साथ व्यापार करते हुए पुलिस द्वारा पकड़ लिए जाते हैं। इस प्रहसन में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार पर भी व्यंग्य किया गया है। वैद्य जी का सारा कार्यव्यापार प्रहसन के प्रारम्भ में दिये पद से ही स्पष्ट हो जाता है -

" वैद्य जी - (गाना)

धन-धन तिर्कहाजी, महाराज, हमको वैद्य कहाने वाले।

पहले बेचा कचौड़ा कलेवा

यों कीनी पब्लिक की सेवा,

पीछे पड़ गये उधार के देवा -

---

१. बदरी नाथ भट्ट - लबड़ धोंधों, पृ० ६८, १९९१ विक्रमी

तराजू बाँट छिनाने वाले । धन-धन०
मैंने कितने ही काम चलाये,
पर क्या कहूं, सब में गोते खाये,
उधार लेके रुपये डुबाये,
ऐसे थे हम भोले-भाले । धन०धन०
हैं, अब सबकी जान बचाते,
मुरदों तक को हैं बैठाते,
जिसे जो चाहिए सो दिलवाते,
हम "डकराज" कहाने वाले । धन० -धन० ।"[१]

"मिस अमेरिकन" भट्ट जी का सर्वोत्कृष्ट प्रहसन है । इस प्रहसन के पात्र पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक हैं । इसमें भट्ट जी ने पश्चिमी सभ्यता का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है । भट्ट जी ने उन कवियों पर भी व्यंग्य किया है जो सौन्दर्य का वीभत्स रूप अपने काव्यों में चित्रित करते हैं ।[२] प्रहसन में प्रयुक्त अमेरिकन पात्रों का ध्येय रुपया है । वे अपनी पुत्री का विवाह किसी से भी कर सकते हैं केवल उन्हें धन मिलना चाहिए । अमेरिकन पात्र भारतीय संस्कृति को नहीं जानते हैं उनके अनुसार हिन्दू समाज में नारी का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है । प्रहसन का पात्र मोहनलाल पूर्वी सभ्यता का प्रतीक है । वह कवि भी है । वह काव्यकला पर विचार करते हुए कहता है कि अश्लीलता काव्य की आत्मा है । अश्लीलता ही हिन्दी कविता में नहीं है । इसलिए वह नीरस है ।

इस प्रहसन में अमेरिकन जीवन के प्रति अन्याय किया गया है । अमेरिकन पात्रों का चरित्र इतना अतिरंजित हो गया है कि व्यंग्य का दुरुपयोग प्रतीत होने

---

१. बदरीनाथ भट्ट-लवड़धोंधों, पृ० ३७,१९९९ विक्रमी संस्कर०
२. बदरीनाथ भट्ट - मिस अमेरिकन, पृ० १८,१९२९ई०

लगता है। प्रहसन में वर्णित हास्य सीमा का अतिक्रमण कर गया है। भट्टजी ने इस नाटक के पात्रों के साथ निष्ठुरता का बर्ताव किया है। भट्ट जी का व्यंग्य मौलियर से भी बढ़ गया है क्योंकि मौलियर अधिकाधिक विपरीतता का चित्रण करते हुए भी सदय है, लेकिन भट्ट जी में करुणा नहीं है। हास्य में जिन करुणा-पूर्ण भावनाओं एवं मंगल की आवश्यकता पड़ती है उसका इसमें अभाव है। निश्चित रूप से प्रहसन उत्कृष्ट है लेकिन हास्य अधम है।

भट्ट जी का 'चुंगी की उम्मेदवारी' हास्य की दृष्टि से उत्कृष्ट है। सेठ चुगनलाल और कृष्णचन्द्र वकील मेम्बरी के उम्मीदवार हैं। शकूर और अहमद सेठ जी का साथी और मुसलमानों का नेता है। उसकी चालाकी से सेठजी चुनाव में विजयी हो जाते हैं। उर्दू जानकार होने के नाते वह नत्थू वल्द बुद्धू की अनुपस्थिति में उसकी जगह कद्दू वल्द लद्दू को खड़ा कर अपनी राय दिलवा कर विजयी हो जाता है। इस विजय के लिए सेठजी पर्याप्त धन भी बांटते हैं पंडित कृष्ण-चन्द्र के विरोधी होने पर मौलवी की चलाकी से सेठजी विजयी होते हैं। प्रहसन के बीच में बाबा जी ने हास्य की अवतारणा की है। प्रहसन का प्रारम्भिक प्रार्थना हास्योत्पादक है सूत्रधार प्रवेश करते ही हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है -

"शुक्ल श्यामांग शोभाढ्यां गौन साड़ी विभूषिताम्।
महामोह लघुभालां कराला काल सोदराम्।
बन्दा चुंगी विधिन्चर्तीं कुड़ी नाली निकालतीम्।
डालती च नजर अपनी चारो जानिब रुआब से।
टौन होले महाभीमे टेबिलु चेयर् शताञ्चिते।
लेम्प लौलुप सन्दीप्ते, प्यून भृत्य निषेविते।
उच्चासन समासीनां चेयर मैन बलत्कराम्।
महाविचार में मग्नां मनो लग्नां धनागमे।
तां श्रीमहाम्युनिसिपैलिटीति,
स्यातां सतीं भारतभाग्य देवीम्।
सर्वे वयं नम्र विनीत शीर्षाः
पुनः पुनः पौरजना नमामः।।"[१]

---

१. बदरीनाथ भट्ट - चुंगी की उम्मेदवारी, तृ०सं० पृ० १

भट्ट के पूर्व-प्रहसनों में आरम्भ में देव विषयक स्तुतियों का प्रयोग होता था किन्तु भट्ट जी ने प्रार्थना को भी हास्यात्मक बनाकर प्रहसनों में एक नवीन कला का सृजन किया ।

बैठकी के प्रचारकों में दो प्रचारक मतदाताओं को भड़काने के लिए नियुक्त थे । उन दोनों का बाबा जी से कुछ वार्तालाप में हास्य-व्यंग्य का पुट मिलता है ।

"बाबा जी -तो क्यों बाबा ! चुंगी में क्या लीला होत है ?
दूसरा -महाराज ! चुंगी में बहुत सी लीलाएं होती हैं ।
बाबाजी -क्यों रामजी ! क्या वहां माखनचोर और चीरहरन लीलाउ हू होत है ,
पहला -बाबा ! चीरहरन लीला तो वहां नहीं होती, पर और बहुत सी लीलाएं होती हैं, जैसे कमेटी करना लीला, चन्दाकरन लीला, इसके अलावा सलाम झुकावन लीला," जी हुजूर करन लीला, टैक्स लगावन लीला, इनके अलावा मेम्बरों को कभी-कभी मौका देखन लीला भी करनी पड़ती है ।"[१]

पहले व्यक्ति के व्यंग्यकथन में मेम्बरों के सारे कार्य की सूची प्राप्त हो जाती है । सभी मेम्बर लूटखसोट में ही लग जाते हैं । भट्टजी ने इस प्रहसन के माध्यम से चुनावों पर व्यंग्य किया है । आजकल चुनावों में विजयी लोगों को भी उपर्युक्त कार्यक्रम ही सीमित रहना पड़ता है । उनसे जनता जनार्दन का कोई भी हित नहीं होता है । प्रहसन में हास्य के सभी भेद मिलते हैं । व्यंग्य में शिष्टता अधिक है ।

"डपोलशंख और शास्त्रार्थी" भट्ट जी का बहुत प्रसिद्ध लघु प्रहसन है । इस प्रहसन के वार्तालाप में प्रारम्भ से अन्त तक हास्य की बराबर छटा मिलती है ।

---

१. बदरीनाथ भट्ट - चुंगी की उम्मेदवारी, पृ० ४८

डपोल शंख और शास्त्रार्थी की अचानक भेंट हो जाती है । परिचय में ही डपोल शंख अपने को शास्त्री बताते हैं । शास्त्रार्थी भी धर्मशास्त्र में अपना गम्भीर अध्ययन सिद्ध करते हैं । वे बताते हैं कि शास्त्रार्थ में उनके सामने कोई टिक नहीं पाता है । उन दोनों महाप्राणों का शास्त्रार्थ भी हास्यात्मक है -

"डपोलशंख - आपने कौन-कौन से धर्मग्रन्थ पढ़े हैं ?

शास्त्रार्थी - वाह अच्छी पूंछी, सब ग्रन्थ ही तो पढ़े हैं । सुश्रुत स्मृति, वाग्भट्टाद्वैतमीमांसा, चरक जी का व्याकरण, यजु: पुराण, विष्णुवेद शब्दकल्पवेद, संगीतपूरनमल, किस्सा सिपाही जादा, तोतामैना, साढ़े तीन यार का वेदान्त, शकुन्तला की बनाई हुई कालिदास नाटिका इत्यादि धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन मात्र किया है ।"[1]

शास्त्रार्थी जी का प्रहसन में प्रयुक्त धर्म, अनुयायी, विलक्षण आदि शब्दों की शास्त्रीय व्याख्या हास्यपरक है । वे "सन्यासी" शब्द की व्याख्या सूत्रकार के अनुसार करते हैं -"सर्वाणि वस्तूनि नाशयतीति सन्यासी" अर्थात् जो सबका नाश करे वही सन्यासी ।"[2]

शास्त्रार्थी जी की उद्भट विद्या, उनका गम्भीर शास्त्रावगाहन, शास्त्रार्थ प्रवृत्ति रुचि आदि हास्य को उत्कट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । भट्टजी के हास्य में रोचकता और सजीवता है ।

भट्ट जी प्रसादयुगीन नाटककारों में श्रेष्ठ हैं । इनके प्रहसनों में विदूषक का कोई भी स्थान नहीं है । प्रहसनों में स्वाभाविक हास्य है । वाक्छल का प्रयोग हास्योत्पादन में सहायक सिद्ध हुआ है । यत्र-तत्र स्थितिजन्य हास्य भी मिलता है । "इनसे अच्छे और अपटूडेट साथ ही सभ्य हास्यरस पूर्ण प्रहसन हिन्दी में और किसी ने लिखे हैं इसमें सन्देह है । ये सभी रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेले जा सकते हैं ।"[3]

---

१. बदरीनाथ भट्ट-डपोलशंख और शास्त्रार्थी (सरल नाटकमाला) द्वि०सं०,पृ० ४१,४२

२. सरल नाटकमाला, द्वि०सं०, पृ० ५५

३. दुलारेलाल भार्गव, लबड़धोंधों का वक्तव्य

जी०पी० श्रीवास्तव हास्य रस के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने हास्यरस सम्बन्धी प्रहसन, उपन्यास, कहानी इत्यादि सभी की रचनायें की हैं। श्रीवास्तव इस युग के प्रसिद्ध हास्य लेखक हैं।

'उलटफेर' जी०पी० श्रीवास्तव का प्रथम प्रहसन है। इसकी रचना सन् १९१९ में हुई थी। इस प्रहसन में तीन अंक हैं। प्रथम अंक में पाँच, दूसरे में सात एवं तीसरे में आठ दृश्य हैं। इस प्रहसन में में प्राचीन नाट्य पद्धति के आधार पर प्रस्तावना दी गई है जिसमें सूत्रधार तथा विदूषक अपने कथनों द्वारा नाटक का उद्देश्य बताता है। सूत्रधार ने प्रस्तावना में ही सामाजिक मनोवृत्तियों पर व्यंग्य प्रकट किया है। वह कहता है -" यहाँ तो हमारे देशी भाइयों को मुकदमे बाजी का ऐसा चस्का पड़ा हुआ है कि दौलत रहे या न रहे, जान रहे या न रहे, ईमान रहे या न रहे, मगर मुकदमेबाजी का सिलसिला हमेशा जारी रहे। बैबात की लड़ाई लड़ेंगे और उसमें एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए बेईमानी, दगाबाजी, झूठ जाल और फरेब की सारी कार्यवाइयाँ कर डालेंगे और इस तरह से बरबादी और दुश्मनी की नई-नई बुनियादें डालते जायेंगे।"[१]

इस प्रहसन में कुल ४७ पात्र हैं। इसमें मुकदमेबाजों तथा वकीलों और उनके दलालों को प्रहसन का विषय बनाया गया है। प्रहसन के प्रमुख पात्र मिर्जा अललटप्पू, चिरागअली, अजिबअली, खुराफात हुसैन, मोतीलाल , करीम खाँ, नजदीक अली, निरहू, लौकई, धाँधायसन्स , जिमिदार, हकैतमल, गुलनार, दिलफरेब, रमदेई आदि हैं। इस प्रहसन में बताया गया है कि दलाल सीधे-सादे मुवक्किलों को किस प्रकार फँसा कर वकीलों के पास लाते हैं तथा न्यायालयों में इन्हीं के द्वारा कितना बड़ा अन्याय होता है। खुराफात सिरिश्तेदार तथा अललटप्पू डिप्टी कलक्टर का निम्न वार्तालाप दृष्टव्य है -

'खुराफात -तुझे वकील करने के लिए किसने कहा था बेवकूफ ?
अललटप्पू- तेरा मुकदमा बिल्कुल झूठा है।

---

१. जी०पी० श्रीवास्तव-उलटफेर, पृ० २,३ संस्क० १९५२ ई०

ख़ुराफात--जी, पैजा है । तभी तो वकील किया है[1]।" ......

इस प्रहसन में वक्रोक्ति की प्रधानता है । उक्तिवैचित्र्य द्वारा वकील के कार्यव्यापार की झांकी स्पष्ट हो जाती है

"मरदानी औरत" नाटक का रचनाकाल १९२० ई० है । इस नाटक में सम्पादकों, समालोचकों एवं नौकरों की बेवकूफी का परिहास किया गया है । सम्पादकों की प्राय: मूर्खता के कारण उनकी पत्रपत्रिकायें चल नहीं पाती हैं । समालोचक भी बिना पुस्तक पढ़े लेखक बन जाते हैं । हिन्दी के ऐसे कृत्रिम विद्वानों का परिहास करना ही नाटककार का ध्येय है । श्रीवास्तव जी पहले इस कथा को लेकर उपन्यास लिखना चाहते थे किन्तु बाद में प्रहसन की रचना कर डाली । इस प्रहसन में ३३ पात्र हैं ।जिसमें नानकचन्द्र, दिलचला, गड़बड़, पेटूलाल रमचौरवा आदि प्रमुख हैं ।

समालोचक पक्षपातीलाल मूर्खानन्द मुंह सिकोड़े आता है । वह कुरूप और काना है । बचन में लकवामारे है । पक्षपातीलाल और गड़बड़ के वार्तालाप में हास्य मिलता है ।

"गड़बड़ --क्यों कत्र्, क्या आप समालोचक हैं ?

पक्ष० --सूरत और ढांचा नहीं देखते हो ।

गड़बड़ --हां देखता तो हूं, दुनियां भर के ऐबों से भरे मालूम पड़ते हो ।

पक्ष० --तभी तो समालोचक हुए हैं, जब तक अपने में ऐब न होंगे दूसरों में क्या खाक ऐब निकालेंगे ?

गड़बड़ --अच्छा, आप ऐब ही ऐब देखते हैं और गुण ?

पक्ष० --गुण कैसे दिखाई पड़े जी ? गुण को तो देखनेवाली आंख फोड़वा डाली । ऐबवाली रख छोड़ी है, देखते नहीं, काने हैं ।"[2]

---

१. जी०पी०श्रीवास्तव, उलटफेर,पृ०४७,४,संस्क० १९५२

२. जी०पी० श्रीवास्तव- मरदानी औरत, तृ०सं० पृ० १३८

इस प्रहसन का हास्य शिष्ट है। समालोचकों पर व्यंग्य किया गया है।

"साहित्य का सपूत" नाटक साहित्यिक प्रवृत्तियों को लेकर लिखा गया है। इसमें साहित्यिक पति और दुनियादारी पत्नी की असंगति हास्य का विषय है। इसके पात्र साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं।"संसारी" आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रतीक है तथा "साहित्यानन्द" प्राचीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रतीक है। साहित्यानन्द के पास एक कन्या है जिससे संसारी प्रेम करता है। प्रेम के मध्य यत्र-तत्र बाधाएं उत्पन्न होती हैं जिन्हें दूर करने में बहुत सी हास्यात्मक घटनाएं सम्पन्न होती हैं। इस नाटक का लक्ष्य हास्य रस का प्रभुत्व दिखाना है। टेसू और साहित्यानन्द वार्तालाप करते हैं।

" टेसू -मैं कैसे करूं ?

साहित्या० -यह मैं नहीं जानता। बस, हंसाना पड़ेगा, अन्यथा तेरा अपराध क्षमा नहीं हो सकता।

टेसू- यह बड़ा मुश्किल है। रुलाना कहिए तो अभी कह करके रुला दूं कि आपका कोई मर गया है। गुस्सा दिलाने के लिए कहें तो ऐसी गाली दूं कि आप अगिया बैताल हो जांय क्योंकि यह सब तो आसान मालूम होते हैं मगर हंसाना बड़ी टेढ़ी खीर है। समझ में नहीं........ ।

साहित्या०- अरे चुप चुप चुप।

टेसू -मगर क्यों ? क्यों ? क्यों ?

साहित्या०-एक तो कुछ अनाड़ियों ने हास्य को साहित्य में स्थान देकर साहित्य की दुर्दशा यों ही कर डाली है, उस पर तेरी यह वार्ता अब जो कहीं सुन लें तो हास्य को साहित्य का सबसे कठिन अंग मान बैठें[1]।"

जी०पी० श्रीवास्तव की नाट्यकृति "मार मार कर हकीम" तीन प्रहसनों का संग्रह है। इसमें (१) मार मार कर हकीम (२) आंखों में धूल और (३) हवाई

---

१. जी०पी०श्रीवास्तव-साहित्य का सपूत, पृ०सं०,पृ० २१

डाक्ट संगृहीत हैं । लेखक ने इन प्रहसनों की रचना में मौलियर का आधार स्वीकार किया है ।

'मार मार कर हकीम' की रचना श्रीवास्तव जी ने १९१३ ई० में की थी । एक पति और पत्नी में झगड़ा हो जाने के कारण पत्नी मायके चली जाती है । रास्ते में कुछ लोग हकीम की खोज करते हुए मिलते हैं । पत्नी उन लोगों को अपने पति के पास प्रेषित करती है और कहती है कि वे हकीम बनने से इनकार कर जायेंगे इसलिए उन्हें लाठियों से पीटना पड़ेगा तभी वे अपने को हकीम स्वीकार करेंगे । टरें खाँ की खूब पिटाई की जाती है और वे अन्त में अपने को हकीम स्वीकार कर लेते हैं । प्रहसन के बीच में लालबख्श के नौकर मर-कट तथा चौकून के वार्तालाप में हास्य का नमूना देखा जा सकता है ।

'आँखों के फूल' में एक डाक्टर को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो व्यक्तियों की उम्र बढ़ाने का वादा करता है । वह लोगों को मूर्ख बनाकर अपना काम निकालता है । डाक्टर प्रत्येक व्यक्ति को उम्र बढ़ाने का सर्टिफिकेट देकर पर्याप्त धनोपार्जन करता है । इस नाटक में समाज को कुत्सित करने वाले ऐसे ढोंगी डाक्टरों पर व्यंग्य किया गया है ।

'हवाई डाक्टर' की रचना १९१४ ई० में हुई थी । दिलपसन्द गोबरचन्द की पोती नयना से विवाह करना चाहता है किन्तु गोबरचन्द दिलपसन्द की उम्र अधिक होने के कारण अपनी पोती का विवाह उससे नहीं करना चाहता है । दिल पसन्द ऐसे डाक्टर की तलाश करता है जो गोबरचन्द को यह सलाह दे कि वह नयना को उसके पिता के पास भेज दे क्योंकि वहाँ की जलवायु उत्तम है । नयना का पिता दिलपसन्द से उसकी शादी करने के लिए राजी है । चमचकर हवाई डाक्टर बन जाता है और नयना को देहात भेजने की सिफारिश गोबरचन्द से करता है । वह गोबरचन्द से कहता है -" आपकी बीमारी का असर बहुत बुरा पड़ रहा है आपके साथ के रहने वाले अगर आपके पास से हटाये न जायेंगे तो बहुत कुछ जल्द ही मर जायेंगे और कुछ आपकी तरह पागलखाने में जायेंगे ।"[१]

---

१. जी०पी०श्रीवास्तव- मार मार कर हकीम ,द्वि०सं०, पृ० २२१

इस प्रहसन में बनावटी डाक्टरों को आलम्बन बनाकर हास्य की सृष्टि की है ।

श्रीवास्तव जी ने "साहब बहादुर" नाटक मौलियर के प्रहसनों के आधार पर लिखा है । इस नाटक में आदि से अन्त तक हास्य रस की प्रधानता है । नाटकों में हजामत तथा मिस्टर टिम्बकटू के वार्तालाप में हास्य अधिक है । टिम्बकटू हजामत का कोट बनाता है और बहुत देर हो जाने पर बिना बटन का कोट और बटनदार पाजामा लाकर हजामत को पहना देता है । हजामत उसको इनाम में अपनी घड़ी उतारकर दे देते हैं । कोट में कोई बटन फिट नहीं होता । जब हजामत इस प्रकार का प्रश्न पूछते हैं तब वह कहता है —" यह ड्रेस कोट है, इसके बटन हमेशा खुले रहते हैं । आपको बताइये अगर इसके बटन लग जायें तो गाउन कैसे दिखाई पड़ेगा ।"[१]

यह नाटक यद्यपि मौलियर के आधार पर लिखा गया है किन्तु इसमें वैसी सजीवता नहीं है ।

श्रीवास्तव जी ने अपने नाटकों में तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों रूढ़ियों आदि पर व्यंग्य किया है, कुछ नाटकों में मात्र मनोरंजन का ध्यान रखा है । इनमें उस समय पढ़े लिखे लोगों की बेकारी पर, शौकिया नाटक खेलने वालों पर तत्कालीन साहित्यिक स्थिति पर, चुनाव लड़ने वालों पर हंसने का प्रयत्न किया है । श्रीवास्तव जी का हास्य विभिन्न परिस्थितियों के संयोजन के कारण प्रकट होता है । इन्होंने प्रहसनों में कुछ ऐसी स्थितियां उत्पन्न की हैं जिससे हास्योत्पादन स्वतः हुआ है । कला की दृष्टि से श्रीवास्तव का हास्य निम्नकोटि का है किन्तु हास्यलेखक के नाम पर उनका प्रचार अधिक हुआ । गुलाबराय जी ने इसके बारे में कहा है —" जी०पी० श्रीवास्तव के नाटकों में हास्य की मात्रा अधिक है, किन्तु उनमें साहित्यिक हास्य की अपेक्षा भौंडेपन का हास्य अधिक है ।"[२]

---

१. जी०पी० श्रीवास्तव - साहब बहादुर, पृ० ३५, १९८२ विक्रमी

२. गुलाबराय-हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, प्र०सं०, पृ० २७०

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी श्रीवास्तव के हास्य को उत्तम नहीं माना है । उनके अनुसार -" श्री जी०पी० श्रीवास्तव जी का हास्य उच्च कोटि का नहीं, जैसी आशा इनसे की जाती है । इसे तो लट्ठमार मजाक कहना ज्यादा उचित होगा ।"[१]

श्रीवास्तव के पात्र अपनी ही बौखलाहट से परेशान रहते हैं । वे प्रायः ऊटपटांग के कार्य ही करते हैं । हास्योत्पत्ति के सन्दर्भ में वे केवल निम्नवर्ग के लोगों का ही विनोद कर पाये हैं । मौलिक हास्य के सृजन की क्षमता उनमें नहीं है । इनमें अतिहसित और अपहसित की मात्रा ही अधिक है । स्मित का प्रयोग नाममात्र के लिए है ।इनके प्रहसनों में अश्लीलांश अधिक है । इस दोष से वे मुक्त नहीं हो पाये । शुक्ल जी के अनुसार - " इनके प्रहसन परिष्कृत रुचि के लोगों को हंसाने में समर्थ नहीं हैं ।"[२]

पाण्डेय बेचनशर्मा "उग्र" ने "चारबेचारे" नाटक संगृह किये हैं । इसमें चार प्रहसन संगृहीत हैं -" बेचारा सुधारक" बेचारा सम्पादक, बेचारा प्रचारक , और बेचारा अध्यापक । इन सबमें इन बेचारों की दयनीय दशा का चित्र अंकित किया गया है और उनकी दुर्बलताओं पर व्यंग्य किया गया है । "बेचारा सुधारक" में समाज के लुटेरे सुधारकों पर व्यंग्य किया गया है । "बेचारा सम्पादक" में ऐसे प्रकाशकों को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो बेचारे लेखकों को फंसाकर उन्हें कम पैसा देकर उन्हीं की कृतियों से लखपती बन जाते हैं । "बेचारा प्रचारक " में देशोद्धार की आड़ में पापाचार करने वाले प्रचारकों का नग्नचित्र किया गया है । "बेचारा अध्यापक" में अल्पवेतन भोगी अध्यापकों की कौटुम्बिक कठिनाइयों का हास्य पूर्ण चित्रण है ।

---

१. हिन्दी में हास्यरस-विशाल भारत , मई १९२९ , पृ० १०३
२. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८१, सं० २००२ वि०

उपर्युक्त सभी नाटक कलकत्ता से निकलने वाले" मतवाला पत्र में १९२९ ई० में प्रकाशित हुए थे ।

"बेचारा प्रचारक " प्रहसन में निम्न पात्र है -दन्तानिपोर (प्रचारक) अप्रियसत्यम् (मुंहफट लेखक) टकाधर्मम् (प्रकाशक सम्पादक) सेठ शिवम् सुन्दरम् (नेता) सुमुख (शिवम् सुन्दरम् का बाल सेवक) और चन्द्रमुखी (शिवम् सुन्दरम्" की युवती सेविका) आदि । इसमें प्रचारक को आलम्बन बनाकर हास्य की सृष्टि की गई है । प्रचारक जी स्वयं अपनी शक्ति का परिचय देते हैं -

"शि०सु० -(खंखार समेटते हुए) क्रान्ति अवश्य होगी, होगी न ।

दन्त ० -होगी तो जरूर ।

शि०सु० -उस भावी क्रान्ति में मैं स्वदेश की ओर से लडूंगा । जिस तरह जरूरत होगी उस तरह लडूंगा ।

दन्त० -आप वीर हैं -भीम की तरह ।

शि०सु०- उस अनोखे युग में आप क्या करेंगे दन्तानिपोर जी ।

दन्त० -मैं ? मैं तो प्रोपेगण्डिस्ट हूं । मैं योद्धा तो हूं नहीं । हीं-हीं-हीं- हीं । यह देखिए (थैला दिखाते हुए) यही मेरा शस्त्रागार है और यह देखिए (पर्चे निकालता है) यही मेरे हथियार हैं । मैं ऐसे ऐसे पर्चों को छापकर उनमें बांटूंगा -यही मेरा कार्य होगा ।"[१]

प्रकाशक लेखकों से अनाधिकार लाभ उठाते हैं । उस पर भी व्यंग्य इस नाटक में किया गया है । टकाधर्म, अप्रियसत्य की वार्ता में व्यंग्य है ।

"टका०-आप भी मेरी मदद कीजिए ।

अप्रिय - किस तरह ?

टका० -"सत्यशोधक" का सम्पादन कर या मेरे प्रकाशन के लिए पुस्तकें लिख कर ।

अप्रिय० - आप लिखाई क्या देते हैं ?

टका० - बहुत कुछ देता हूं, हिन्दी की सभी पुस्तकों से अधिक देता हूं ।

---

१. मतवाला (कलकत्ता) मार्च १९२९ ई०,पृ० ३

अप्रिय० — कैसे ?

टका० — कैसे लेखक को लिखने के वक्त उत्साह देता हूँ। लिख जाने पर उनकी कम-जोरियाँ सुधार देता हूँ। सुधर जाने पर प्रेस में देता हूँ, छाप देता हूँ। बेच देता हूँ। आपही बतायें इससे ज्यादा कोई क्या दे सकता है ?

अप्रिय० — और 'सत्यशोधक' सम्पादक को आप क्या देंगे ?

टका० — उस महानुभाव को — हाँ, हाँ, हाँ। उसको मैं पहले कुर्सी दूंगा फिर कागज कलम दवात दूंगा। कम्पोजीटर की स्टिक उनके बाएं हाथ में दूंगा मशीन का हैण्डिल दाहिने हाथ में। 'सत्यशोधक' का पहला प्रूफ उसे दूंगा और आर्डर प्रूफ भी — ईश्वर की शपथ, उसी को उदारतापूर्वक दे दूंगा।

अप्रिय० — धन्य आपकी उदारता।"[१]

लेखक बेचारे आर्थिक कठिनाई वश ऐसे चालाक प्रकाशकों के चंगुल में फंस ही जाते हैं। इन्हीं विषयों का व्यंग्यात्मक वर्णन करना लेखक का उद्देश्य है।

कौशिक उग्र जी ने "उजबक" प्रहसन में साहित्यिक रूढ़ियों पर व्यंग्य किया है। इस प्रहसन में दो पात्र हैं — लंठ और चंठ। लंठ छायावादी कविता का प्रतीक है। दोनों व्यंग्यात्मक बातें करते हुए झगड़ पड़ते हैं कि कौन पक्ष श्रेष्ठ है। विवाद का निपटारा कराने के लिए दोनों उजबक सम्पादक के पास जाते हैं। दोनों उस सम्पादक के सम्मुख अपना अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं।

"लंठ — मेरा कहना है ब्रजभाषा नौस्ट रद्दी है।

नूतनता मौलिकता हीन है।

दीन, मलीन है।

और स्वच्छन्द मेरा राग चढ़ रहा है।

छन्द जो रबड़ है।

ओल्ड ब्रजभाषा में अलक है, पुलक है।

हटीं पलकें हैं, कामिनी है, कुच है

कालिंदी का किनारा है,

ले रही सदा की गैंडकी की गन्दी धारा है।

---

१. मतवाला (कलकत्ता) मार्च १६२६, पृ० २५

पंठ-(लंठ को ललकार कर) रुको रुको मत क्रोध दिखाओ ।
झुको-झुको मत बात बढ़ाओ ।
अब मत राग बेसुरा गाओ ।
सुर बनो सुर को अपनाओ ॥-[१]

इस नाटक में लेखक का ध्येय केवल ब्रजभाषा तथा छायावादी कविता में अन्तर दिखाना ही है । समाज में आये दिन ऐसे विवादों की पंचायत होती रहती है । यद्यपि डा० शान्तारानी तथा डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी ने इसमें हास्य की व्यंजना दिखाई है किन्तु मुझे हास्य का कोई भी अंश उपर्युक्त नाटक में नहीं मिला । यत्र तत्र पैरोडी के संकेतमात्र मिलते हैं । यदि ऐसे नाटकों में भी हास्य की सृष्टि मान ली जाय तब तो हिन्दी में हास्य का अभाव ही समाप्त हो जायगा ।

उग्र जी के नाटकों में परिस्थिति जन्य हास्य का अभाव है । उनमें केवल चरित्रचित्रण की प्रधानता है । इनके हास्य में यत्र-तत्र यथार्थ एवं रसमय चित्रण मिलता है । कहीं कहीं अश्लीलता अधिक आ गई है । इसलिए पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'घासलेटी साहित्य' नामक आन्दोलन चलाया । उग्रजी ने सामाजिक सीमा का ध्यान न रखा इसीलिए उनका हास्य-व्यंग्य असंयत हो गया है ।

मिश्रबन्धुओं के नाटकों में शुद्ध हास्य का जैसा विधान है वह अन्यत्र अप्राप्य है । इनके नाटकों में भाषा और भाव द्वारा हास्य का उत्तम निदर्शन मिलता है ।

'पूर्वभारत' मिश्रबन्धुओं द्वारा लिखित प्रमुख नाटक है । इसमें यत्रतत्र हास्य का बड़ा शिष्ट और संयत रूप प्राप्त होता है ।
यथा -

(हस्तिनापुर की एक फुलवारी । लाला, मुंशी, रामसहाय व रौशन का प्रवेश)

---

१. मतवाला (कलकत्ता) फरवरी १९२६, पृ० ७

"लाला —है हाँ, पुरबी महाराज, कुछ सुन्यौं ? अबकी सालौं भरे के सबै यतवार घुना मुंडे परिगे ।

पुरबी —तुमहूं निरे क्रूके रह्यो लाला, वौ । कहूं मुर्द रवु परिगे क्वह छंह । भला सब कैसे परि सकत्थै ?

लाला —यहै तो पूंछा ।

रामसहाय—भला पाहे जो तालाब में आग लगे तो मछलियाँ कहाँ जायँ ? बेचारी उसी में जल भुनै ।

पुरबी —वहाँ काहो ? विरुन पर चढ़ि जायँ ।

लाला — तो का उड गाई-भैंसी जांय ।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण में शुद्ध हास्य की व्यंजना है । यह उदाहरण स्मित और हसित का सीमोल्लंघन नहीं कर सका है । मिश्रबन्धुओं के हास्य की यह विशेषता है । मिश्रबन्धुओं ने हास्य के साथ ही साथ व्यंग्य का प्रयोग किया है । उनका व्यंग्य कठोर न होकर आत्मगत है । नये वैद्यों को आलम्बन बनाकर मिश्रबन्धुओं ने व्यंग्य का प्रयोग किया है । नये वैद्य के इलाज करते हुए भी रोगी स्वस्थ नहीं हो पाते हैं । नाटक में इसी को उद्देश्य करके नागरिक ने कहा है —

" तीसरा नागरिक —इन नये वैद्यों की कुछ बात न कहिए , धर्मराज क्या यमराज के अवतार हैं ।"[2]

नये वैद्यों में अनुभव की न्यूनता होती है अतएव प्राय: रोगी मर जाते हैं । अत: नये वैद्य यमराज की तरह मारने का ही कार्य करते हैं । यही व्यंग्य मिश्रबन्धुओं ने प्रयुक्त किया है ।

जयशंकर प्रसाद उत्कृष्ट कोटि के नाटककार हैं । भारतेन्दु जी ने प्राचीन शास्त्रीय पद्धति के आधार पर नाटकों का प्रणयन किया । उनकी दृष्टि भारतीय

---

१. मिश्रबन्धु - पूर्वभारत, प्र०सं० , पृ० ६३

२. वही, पृ० १२६

थी लेकिन प्रसाद जी ने नाटकों में एक नया मोड़ दिया। प्रसाद के नाटकों में भारतीय तथा पाश्चात्य शैली का अद्भुत सम्मिश्रण है। प्रचलित नाट्यपद्धति में प्रसाद जी ने एक युगान्तर लाया। यही कारण है कि पाश्चात्य कामिक नाटककारों की तरह प्रसाद के नाटकोंमें हास्य एवं व्यंग्य का मार्मिक प्रयोग मिलता है। विदूषक का जितना सफल प्रयोग प्रसाद जी ने अपने नाटकों में किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भारतेन्दुकाल के विदूषक केवल अपने पेटूपन तथा वेष-विन्यास के आधार पर ही हास्य का सृजन करते थे लेकिन कलाकार प्रसाद ने यह सिद्ध कर दिखलाया है कि विदूषकों को आधार बनाकर शिष्ट तथा परिष्कृत हास्य का भी सृजन किया जा सकता है। विदूषकों का जितना सफल प्रयोग प्रसाद जी ने किया है उतना किसी अन्य नाटककार ने नहीं किया है। निश्चय ही नाट्यशिल्प के सन्दर्भ में प्रसाद ने अभिनव प्रयोग किया है।

'विशाख' (१६२१) में प्रसाद जी ने महापिंगल पात्र के माध्यम से यत्र-तत्र हास्य की सृष्टि की है। विदूषक की हैसियत से महापिंगल के कथन में यत्र-तत्र हास्य परिलक्षित होता है। महापिंगल और विशाख के निम्न कथन में परिहास (पैरोडी) प्रतीत होता है।

> 'महापिंगल - क्यों हमको जानते हो ? हम कौन हैं ?
> विशाख - क्षमा कीजिएगा, अभी तक पूरी जानकारी नहीं है फिर भी आप आदमी हैं इतना तो अवश्य कह सकूंगा।'[१]

कभी-कभी पात्र के कार्य द्वारा भी हास्य उत्पन्न हो जाता है। द्वितीय अंक में भिक्षु और प्रेमानन्द के वार्तालाप में हास्य की सृष्टि हुई है। कभी-कभी मूर्खतापूर्ण कार्यों के परिणामस्वरूप भी व्यक्ति हास्य के पात्र बन जाते हैं। विशाख के तृतीय अंक में तरला के सभी गहने चाँदी तथा ताँबा से सोना बनाने के लिए भिक्षु

---

१. जयशंकरप्रसाद-विशाख पृ०सं०,पृ० ६

गड्ढे में रखवाकर आंख मूंदने को कहता है [१] तथा चतुष्पथ पर यज्ञ बलि देने के बहाने सभी गहने लेकर चम्पत हो गया । इस मूर्खतापूर्ण कार्य से परिहास की सृष्टि होती है ।

"अजातशत्रु" का रचनाकाल १६२२ ई० है । इस नाटक में मार्मिक व्यंग्य का प्रयोग किया गया है । प्रसाद के व्यंग्य अश्लीलत्व दोष से मुक्त हैं । प्रसाद ने हास्य में "प्रेम द्वारा प्रताड़ना" के सिद्धान्त को अपनाया था । नाटक के प्रथम अंक में जीवक (वैद्य) तथा वसन्तक के वार्तालाप में हास्य का पुट मिलता है । महाराज को अजीर्ण होने पर वैद्य बुलाया जाता है । वसन्तक के कथन में हास्य है -

" वसन्तक - महाराज ने एक नई दरिद्रकन्या से ब्याह कर लिया है उसके साथ मिथ्या विहार करते-करते उन्हें बुद्धि का अजीर्ण हो गया है । पद्मावती और वासवदत्ता जीर्ण हो गई हैं । तब कैसे मेल हो ?.....

जीवक - तुम्हारे से चाटुकार और चाट लगा देंगे । दो चार और जुटा देंगे ।

वसन्तक - उसमें तो गुरुजनों का ही अनुकरण है । श्वसुर ने दो ब्याह किये तो जामाता ने तीन । कुछ उन्नति ही रही ।।" [२]

वसन्तक के उपर्युक्त कथन में सरल हास्य की सृष्टि होती है । महाराज के अजीर्ण को बुद्धि का अजीर्ण कहकर वसन्तक ने उपहास किया है ।

प्रसाद ने विदूषक पात्रों की सृष्टि कम ही की है । प्रायः नाटक के पात्रों की परिहासी और विनोदी प्रकृति का बनाकर काम चला लिया है । अजातशत्रु में वसन्तक तथा स्कन्दगुप्त में मुद्गल की सृष्टि प्राचीन नाट्यपद्धति के आधार पर है ।

---

१. जयशंकर प्रसाद, विशाख च०सं०, पृ० ६६

२. जयशंकर प्रसाद- अजातशत्रु, प्र०सं०

उनका उद्देश्य हूलत्व करना तथा अपने विनोद पूर्ण व्यंग्यों द्वारा लोगों को प्रसन्न करना है ।[१]

'स्कन्दगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने विदूषक के कथोपकथन द्वारा हास्य की सृष्टि की है । प्रसाद का हास्य स्मित की सीमा के अन्दर ही रहता है । नाटक के प्रथम अंक में ही धातुसेन के कथन से हास्य की सृष्टि होती है । वह बालि और उसकी पत्नी तारा का उदाहरण देते हुए कहता है कि बालि अपनी पत्नी की मन्त्रणा लेता था इसीलिए फंफटों से शीघ्र छूट गया । वह कुमारपाल से ऐसा करने के लिए कहता है ।

"धातुसेन --परम भट्टारक की दुहाई । एक स्त्री को मन्त्री आप भी बना लें, बड़े-बड़े दाढ़ी मूंछ वाले मन्त्रियों के बदले, उसकी एकान्त मन्त्रणा कल्याण कारिणी होगी ।"[२]

इस कथन को सुनकर कुमारगुप्त मुस्करा देता है । प्रसाद के विदूषक में पेटूपन का भी उदाहरण मिल जाता है लेकिन वह वैसा नहीं है जैसा पूर्ववर्ती नाटककारों ने चित्रित किया है । पूर्ववर्ती नाटककारों ने विदूषक के माध्यम से अधम हास्य की ही सृष्टि की है लेकिन प्रसाद में यह स्थिति नहीं है । दक्षिणापथ की चढ़ाई के सम्बन्ध में धातुसेन के कथन का उत्तर देते हुए मुद्गल कहता है --
" जय हो देव ! पाकशाला पर चढ़ाई करनी हो तो मुझे आज्ञा मिले । मैं अभी उसका सर्वस्वान्त कर डालूं ।"[३]

प्रसाद जी ने स्कन्दगुप्त में व्यंग्य का बहुत ही शिष्टतम प्रयोग किया है । धातुसेन सिंहल जाने वाला था परन्तु जब वह न जा सका तब मुद्गल का

---

१. देखिए डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा-प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २७१
२. जयशंकरप्रसाद-स्कन्दगुप्त, प्र०सं०, पृ० ११
३. वही, पृ० १३

व्यंग्य यथार्थ बन गया है —

" मुद्गल - क्यों भइया, तुम्ही धातुसेन हो ?

धातुसेन —(हँसकर) पहचानते नहीं हो ।

मुद्गल— किसी की धातु पहचानना बड़ा ही असाधारण कार्य है ?

तुम किस धातु के हो[१] ?

तृतीय अंक में मुद्गल अपनी पत्नी से परेशान है । वह कहता है कि उसकी पत्नी फटी ढोल की तरह उसके गले पड़ी है । वह अपनी पत्नी पर हास्य करता है तथा बनावटी ज्योतिषियों पर व्यंग्य करता है —

"देवसेना —क्या है मुद्गल ?

मुद्गल —अहो-अहो, सीता की सखी, मन्दोदरी की नानी त्रिजटा कहाँ है । मातृगुप्त ज्योतिषी की दुम । अपने को कवि भी लगाता था । मेरी कुण्डली मिलाई कि मुझे मिट्टी में मिलाया । शाप दूँगा शाप । एक दाँत पीसकर, हाथ उठाकर, शिखा खोलते हुए चाणक्य का लकड़दादा बन जाऊँगा । मुझे इस झंझट में फँसाया । उसने क्या ब्याह कराया..... ?"[२]

प्रसाद जी ने 'एक घूँट' में विज्ञापन करने वाले चंदुला पात्र के माध्यम से हास्य की सफल सृष्टि की है । उसने अपनी चंदुली खोपड़ी पर 'एकघूँट' लिखा है और गले में एक विज्ञापन लटकाया है जिसमें लिखा है — पीते ही सौन्दर्य चमकने लगेगा । स्वास्थ्य के लिए सरलता से मिला हुआ सुअवसर हाथ से न जाने दीजिए । सुधारस पीजिए एक घूँट ।"[३] चन्दुला और रसाल से वार्तालाप में स्मित हास की सृष्टि होती है । रसाल के पूछने पर कि वह अपनी खोपड़ी पर

---

१. जयशंकर प्रसाद-स्कन्दगुप्त, पृ० ६०

२. वही, पृ० १०१

३. जयशंकर प्रसाद - एक घूँट, द्वि०सं०, पृ० २७

क्या मदापन अंकित कर रखा है ? बन्धुला सिर झुकाकर दिखाते हुए उत्तर देता है — महोदय ! प्राय: लोगों की खोपड़ी में ऐसा ही मदापन भरा रहता है । मैं तो उसे निकाल बाहर फेंकने का प्रयत्न कर रहा हूं । आपको इसमें सहमत होना चाहिए । यदि इस समय आप लोगों की कोई सभा, गोष्ठी या ऐसी ही कोई समिति इत्यादि हो रही हो तो गिन लीजिए मेरे पक्ष में बहुमत होगा । होगा न ?'[1]

'कामना' में प्रसाद जी ने व्यंग्य का सहारा लिया है । नाटक के तीसरे अंक में क्रूर, दुर्वृत्त, प्रमाद, और दम्भ आदि प्रतीक पात्रों द्वारा नवीन नगर निर्माण की योजना अपना व्यंग्यात्मक अर्थ रखती है क्योंकि इस नगर में गन्दे झोपड़े हैं, जीवन और संस्कृति एवं धर्मविहीन हो गया है । यहां कहीं मदिरा की गोष्ठी के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है । नगरजीवन के सम्बन्ध में दुर्वृत्त कहता है — 'बड़ा सुन्दर भविष्य है । सुन्दरमहल सार्वजनिक भोजनालय, संगीतगृह और मदिरामन्दिर तो हैं ही, इनमें धर्म भवनों की भव्यता बड़ा प्रभाव उत्पन्न कर रही है ।'[2] प्रसाद जी समाज में स्त्रियों को उच्च स्थान प्रदान कराने के हिमायती थे । अत: उनके प्रति अपनी दृष्टि बराबर रखी । प्रमदा का यह कथन कि 'स्त्रियां पुरुषों की दासता में जकड़ गई हैं'[3] व्यंग्योक्ति है । पुरुषों ने स्त्रियों को बन्दी बनाकर रखा है । नाटककार ने व्यंग्य का शिष्ट प्रयोग करके उनको मुक्त करने की कामना की है ।

दम्भ और दुर्वृत्त नवीन नगर को बनाते हैं । विवेक उनसे पूछता है कि यह इस नये नगर को क्यों बनाया है ? प्रमदा कोई उत्तर न देकर विवेक से कहता है — 'जा बूढ़े जा, कहीं से एक पात्र मदिरा मांगकर पी ले और उसके आनन्द में किसी जगह पड़ रह । क्यों अपना सिर खपाता है ?'[4] प्रसाद जी का उक्त

---

१. जयशंकर प्रसाद - एक घूंट, द्वि०सं०, पृ० २७ २८

२. जयशंकर प्रसाद- कामना, च०सं०, पृष्ठ ६६

३. वही, पृ० ६७

४. वही, पृ० ६८

कथन तत्कालीन समाज में प्रचलित नशाखोरी पर व्यंग्य प्रतीत होता है ।

"ध्रुवस्वामिनी" प्रसाद की छोटी नाट्य कृति है किन्तु कथा-संयोजन की दृष्टि से इसका महत्व अन्यतम है । इसके प्रथम एवं द्वितीय अंक में हास्य एवं व्यंग्य के उदाहरण प्राप्त होते हैं । इन स्थलों पर यत्र-तत्र हास्य का प्रयोग अनावश्यक ही हुआ है । ध्रुवस्वामिनी क्रोध से परिचारिका को देखती है । परिचारिका पान का डिब्बा रखकर चली जाती है । तदनन्तर कुबड़े और हिजड़े के साथ बौना आता है । उन्हें देखकर हास्य की सृष्टि होती है । यहाँ परिस्थितिजन्य हास्य की सृष्टि होती है । यथा -

" कुबड़ा -युद्ध ! भयानक युद्ध !!
बौना -हो रहा है कि कहीं होगा मित्र !
हिजड़ा -कहीं, यहीं युद्ध करके दिखाओ न, महादेवी भी देख लें ।
बौना - (कुबड़े से) सुनता है रे ! तू अपना हिमालय उधर कर दे मैं दिग्विजय करने के लिए कुबेर पर चढ़ाई करूंगा ।"[१]

बौना कुबड़े बनाता है । कुबड़ा घुटनों तथा हाथों के बल बैठ जाता है । हिजड़ा उसके पीठ पर बैठता है तथा बौना एक मोढ़ा लेकर तलवार की तरह उसे घुमाने लगता है । इस कार्यव्यापार से हास्य की स्वतः सृष्टि हो जाती है ।

नाटक के तृतीय अंक में व्यंग्य और वाक्छल का प्रयोग किया गया है । रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को मिहिरदेव को देकर सन्धि करने के लिए तैयार हो जाता है । शिखरस्वामी चन्द्रगुप्त से कहता है कि गुप्तकुल का गृहविधान सर्वोत्तम है उसे भूलना न चाहिए । चन्द्रगुप्त उसका व्यंग्यात्मक उत्तर देता है -

"चन्द्रगुप्त -(व्यंग्य में हंसकर) अमात्य, तभी तो तुमने व्यवस्था दी है, कि महादेवी को देकर भी सन्धि की जाय । क्यों, यही तो विनय की पराकाष्ठा है । ऐसा विनय प्रवंचकों का

---

१. जयशंकर प्रसाद - ध्रुवस्वामिनी, तेरहवाँ संस्क०, पृ० २२

आचरण है, जिसमें शील न हो, और शील परस्पर सम्मान की घोषणा करता है। कापुरुष ! आर्य समुद्रगुप्त का सम्मान........ ।"[१]

प्रसाद जी के हास्य-व्यंग्य में शिष्टता है। प्रतीक योजना के कारण उनका व्यंग्य प्राय: कुछ प्रतीत होता है। व्यंग्य के क्षेत्र में प्रसाद ने थोड़े में अधिक कहने की प्रवृत्ति अपनाई है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में जिस किसी भी पात्र से हास्य की अवतारणा कराई है। उनका हास्य स्मित और हसित की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सका है। प्रसाद का हास्य शिष्टजीवन का परिचायक है। प्रसाद के नाटकों में हास्य जो छटा है वह कामडी के अनुकूल है। उन्होंने कथोपकथन के माध्यम से हास्य की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।

"मूर्खमण्डली" रूपनारायण पाण्डेय का प्रसिद्ध प्रहसन है। इसमें एक राजा के जीवन चरित्र को हास्य का आलम्बन बनाया है जो अपने पूर्वजों की सम्पत्ति खर्च करके रायबहादुर और राजा बन जाता है। उसकी पत्नी मरने का बहाना करती है। डाक्टर आकर उसे मृत घोषित करता है। राजा अपनी मूर्खता के कारण वृद्धावस्था में चतुर्थ विवाह करता है। विवाहमण्डप में स्त्रियाँ उसे देखकर हँसती हैं इस नाटक में अनमेल विवाह पर व्यंग्य किया गया है -

"पहली औरत -भैया रे ! यह बूढ़ा वर !

दूसरी औ० -- भैया रे ! तीन पन बीत गये फिर भी ब्याह की साध नहीं गई।

तीसरी औ०- वर है कि लड़की का बाबा है।

चौथी औ०- ऐसे बूढ़े को भी कोई लड़की देता है ?

प०औ० - अरे ये लोग चाण्डाल हैं ! रुपये के लोभ लड़की बेचते हैं।"[२]

---

१. जयशंकर प्रसाद - ध्रुवस्वामिनी, तेरहवाँ संस्क०,पृ० ३१

२. ~~सरस नाट्यमाला, द्वि०सं०, पृ० १०१~~ रूपनारायण पाण्डेय - मूर्खमंडली, च०सं० पृष्ठ १०३

वर का आधा मुंह चूने से और आधा कालिख से पुता है । बीच बीच में सिन्दूर की टिपकियां भी लगी हैं । वेश विपर्यय के कारण स्त्रियां पर्याप्त विनोद करती हैं । उसी समय मण्डप में भगवतीप्रसाद आकर रानी के जीवित होने की सूचना देता है । मण्डप का सारा वातावरण हास्य में गूंज उठता है । इस प्रहसन में वृद्धावस्था में भी होने वाली "प्रेम की बीमारी" पर व्यंग्य किया गया है । प्रहसन में अतिरंजित की प्रधानता है । कहीं-कहीं हास्य में भोंडापन आ गया है जो अस्वाभाविक है ।

रूपनारायण पाण्डेय का "समालोचना रहस्य" स्मित हास्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है । मिस्टर मंडूक शास्त्री "सिन्धु" के सम्पादक हैं और आजकल के श्रेष्ठ समालोचक हैं । उनके पास बी०बी० वर्मा नामक ग्रन्थकार ने अपनी कृति "प्रेमलीला" समालोचनार्थ भेजी थी जो सम्पादक महोदय को नहीं मिली । कुछ दिनों बाद ग्रन्थकार अपनी पुस्तक के साथ सम्पादक महोदय से मिला और अपनी पुस्तक दिखाया जिसमें षोडशी कन्या की प्रेमकथा वर्णित थी । उपन्यास का नाम सुनकर ही सम्पादक महोदय प्रशंसा करने लगते हैं -" वाह ! बहुत ही अच्छा नाम है । केवल इसी नामसे गुण से आपकी सारी कापियां बिक जानी चाहिए । आप अभी छोकरे होने पर भी प्रेमी ग्रन्थकार जान पड़ते हैं । यह हिन्दी और हिन्दी लेखकियों के सौभाग्य की बात है । देखो जगत में भी सभी प्रेम की लीला है । मैं समझता हूं कि आपने एक आध्यात्मिक और दार्शनिक भाव को बहुत अच्छी तरह जान लिया है । आजकल के पाठक पाठिकाएं प्रेम की ही बातें बड़े चाव से पढ़ती हैं । आप बड़े दूरदर्शी ग्रन्थकार हैं, आपने आजकल का रंग ढंग देखकर बड़े चाव से इसे अच्छी तरह पहचान लिया है ।[१]

इसी प्रकार कथावस्तु आदि की भी पर्याप्त प्रशंसा करते हैं । समालोचकजी नौजवान लेखक की जेब देखने लगते हैं और कुछ प्राप्ति की आशा न करते हुए उपन्यास का दोष विवेचन करते हुए कहते हैं -" हाय हाय, ऐसी सुन्दरी षोडशी सृष्टि में अद्वितीय सुन्दरी अकेली रात में सोच रही है - ऐसे सुन्दर समय में तुमने मूसलाधार पानी बरसा दिया । तुमको उचित था कि ऐसी कमनीय

---

१. सरलनाटक माला, द्वि०सं०, पृ० १०६

कामिनी को धरती पर न बिठलाकर चन्द्रकिरणों से उज्ज्वल हो रहे किसी महल के कमरे में मुलायम पलंग पर लिटाते ।"[१]

अन्त में नौजवान अपनी जेब से पाँच रुपये का नोट निकालकर समालोचक को देता है और अच्छी समालोचना प्रकाशित करने के लिए निवेदन करता है तब मिस्टर मण्डूक शास्त्री कहते हैं -" बस, आप खातिर जमा रखें वह समालोचना होगी कि आप भी फड़क उठेंगे ।"[२]

पाण्डेय जी ने समालोचना रहस्य के माध्यम से आधुनिक आलोचना के मानदण्ड एवं उसकी प्रणालियों पर व्यंग्य किया है और हास्य की झड़ी लगा दी है । ऐसे आलोचकों से हिन्दी की क्या प्रगति होगी यह भी एक विचारणीय प्रश्न है ।

"प्रायश्चित प्रहसन" अनुत्यचरण नाग चौधरी के "प्रायश्चित" नामक नाटक के आधार पर लिखा गया है । नाटक में प्रमुख राम जी पात्र विलायत में अपनी शादी करके लौटता है । बिरादरी में मिलाने के लिए उसका पिता मूलचन्द उससे प्रायश्चित कराना चाहता है । रामजी पंडित जी की चोटी पकड़ कर कलश को फोड़ देता है । इस प्रहसन में सामाजिक बुराइयों पर व्यंग्य है । विलायत जाने मात्र से ही व्यक्ति ईसाई हो जाता है । समाज में व्याप्त इन रूढ़ियों पर व्यंग्य है साथ ही साथ पुरोहित को हास्य का आलम्बन बनाया गया है । शुरू प्रारम्भ में ही विद्यादिग्गज और स्वार्थदास के भोजन सम्बन्धी वार्तालाप में हास्य की सृष्टि होती है -

"स्वार्थदास -अच्छा दादा कचौरी कैसी लगती है ?

विद्यादिग्गज -यह भी अच्छा पदार्थ है , सुना नहीं, शष्कुलीभक्षमाणेण किं दूरं किं योजनशतम् ?" यहाँ कचौरी को" शष्कुली" कहते हैं । एक दिन एक कम्पोजीटर ने "क" टाइप को चुराकर उसकी

---

१. चरलनाटक माला,कि०वि०, पृ० १०६

२. वही, पृ० १०७

शष्कुली लेकर आई, तभी से उसका नाम 'क-चौरी' पड़ गया। ये सब ऐतिहासिक बातें हैं भैया, हरएक इन्हें नहीं जानता।"[१]

इस प्रहसन में सामाजिक बुराइयों पर मृदु व्यंग्य किया गया है। नाटक में व्यंग्य बाहुल्य है। यत्र-तत्र प्रयुक्त स्मितहास्य, शिष्ट और भावात्मक है। पाण्डेय जी ने इन प्रहसनों में हास्य का जो रूप प्रस्तुत किया है वह शिष्टता मृदुता और सरसता का परिपोषक है।

श्री सुदर्शन जी ने "आनरेरी मजिस्ट्रेट" प्रहसन के प्रारम्भ में झंडूलाल का हास्यात्मक वर्णन किया है। उनके यहाँ डिप्टी कलक्टर का चपरासी सन्देश लेकर आता है जिसे देखकर वे डर जाते हैं। झंडूलाल चपरासी को एक रुपया देता है और कहता है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया है जाकर साहबदेव दो कि वह मर गया है। प्रथम दृश्य में अपढ़ अमीरों का हास्यात्मक वर्णन है। डिप्टी कमिश्नर झंडूमल तथा गेंदूमल को आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाने के लिए बुलवाया था। उन दोनों भावी न्यायाधीशों के बारे में रीडर की यह उक्ति दृष्टव्य है -

"रीडर -साहब बहादुर ने हैदमिट्ठा बाजार के दो रईसों को बुलवाया है। उनको आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाने का इरादा है। मगर दोनों बिलकुल बेवकूफ हैं। उनको तो बात करने की भी तमीज नहीं है।"[२]

दोनों मजिस्ट्रेट के पास पहुँच कर जमीन पर बैठ जाते हैं ब्रिटिश काल में अंग्रेजों को भारतीय अधिक सम्मान देते थे। इस पर इस नाटक में व्यंग्य किया गया है। गेंदूलाल को जब डिप्टी कमिश्नर कुर्सी पर बैठने को कहता है तब उसका कथन देखिए -

---

१. रूपनारायण पाण्डेय-प्रायश्चित्त प्रहसन, पृ०सं०, पृ० ६

२. श्री सुदर्शन - आनरेरी मजिस्ट्रेट, डि०सं०, पृ० २७

"गड़ूशाह —नहीं साहब , हम यहीं अच्छे हैं । सड़क़ाड़ की बड़ाबड़ी करना क्या ठीक है ।"[१]

गंडूशाह और भंडूशाह को मजिस्ट्रेट बना दिया गया । गंडूशाह को यह शक होता है कि वह अफसरी कर पायेगा या नहीं ? तब भंडूशाह कहता है — मुकदमें आवेंगे । किसी को कैद कर दिया, किसी को छोड़ दिया । दरखास्तें पेश होंगी, किसी पर अंगूठा लगा दिया, किसी पर न लगाया, यही तो अफसरी है ।"[२] इस पंक्ति में अंग्रेजी काल के आनरेरी मजिस्ट्रेटों के कार्य की पूरी झांकी प्राप्त हो जाती है । अफसरी में उन मजिस्ट्रेटों को देखकर मुवक्किल भी जान लेते थे कि वह बेवकूफ है । इन न्यायाधीशों को कानून की कोई भी जानकारी नहीं होती थी । उनका निर्णय हास्यात्मक होता था । हास्य का उदाहरण देखिए —

" भंडूशाह —मामला क्या है ?

सिपाही - हुजूर इसका दफ़ा चौंतीस में चालान हुआ है ।

गंडूशाह —(जीभ बाहर निकाल कर) यह तो चौंतीसवां भाड़ पकड़ा आया है । बड़ा बदमाश है ।"[३]

दोनों मजिस्ट्रेट रास्ते पर पेशाब करने वाले अभियुक्त को छः माह की तथा सिपाही को सात महीने की सजा करते हैं ।सिपाही के उज्र करने पर कहते हैं कि मेरी अदालत में जो पेश होता है उसे कारावास की सजा दी जाती है । अन्त में दोनों मजिस्ट्रेट दो-दो आने की रिश्वत लेकर अभियुक्त को छोड़ देते हैं ।

सुदर्शन जी ने इस नाटक के माध्यम से ब्रिटिश कालीन न्यायाधीशों की की न्यायप्रणाली का व्यंग्य चित्रण प्रस्तुत किया है । वे प्रसाद युग के प्रसिद्ध

---

१. श्री सुदर्शन- आनरेरी मजिस्ट्रेट,दि०सं०, पृ० ३३०

२. वही, पृ० ३५

३. वही, पृ० ४२

हास्यकार हैं और उनमें व्यंग्य की अपूर्व छटा है। प्रहसन में आदि से अन्त तक हास्य की जो धारा बही है वह प्रसाद युग के कम नाटककारों में मिलती है। इनके जैसा शिष्ट और प्रवहमान हास्य अन्यत्र नहीं दिखाई देता।

रामदास गौड़ का 'ईश्वरीय न्याय' एक व्यंग्य नाटक है जिस में दिखाया गया है कि ब्राह्मण किस प्रकार अछूतों से पैसा ऐंठते हैं और उन्हें छूने में झिझकते हैं। इस नाटक में समाज एवं देश में प्रचलित कुरीतियों पर व्यंग्य है। नशाबन्दी पर विशेष बल दिया गया है। नाटक में प्रयुक्त पात्र मद्यचन्द्र मदिरा और मांस के बारे में कहता है -"या देवी सर्वभूतेषु कल्लाकरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः। भवानी जब तक यह कलियुग है, तब तक आपकी भक्ति है तभी तक मदिरा महारानी और मांस महाराज का राज है"[1]

पंडे, पुरोहित भक्तों को बुरा उपदेश देकर उन्हें मदिरा, पान मांस भक्षण के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इस नाटक में पंडे,पुरोहितों पर कटु व्यंग्य किया गया है।

गौड़ जी यद्यपि प्रसादकालीन व्यंग्यकार हैं किन्तु उनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसा तीखा यथार्थ और प्रभावशाली व्यंग्य प्राप्त होता है। उन्होंने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, मद्यपान, व्यभिचार आदि पर अच्छा व्यंग्य किया है।

रामसरन शर्मा का 'सफ़र की साथिन' भी एकांकी नाटकों का संग्रह है। इसमें -सफ़र की साथिन, अन्धदरवाजा, बेचारी बुढ़िया, वकालत, पत्रकारिता, बीमारी, मिल की चिट्ठी, भूतों की दुनियां और आवारा एकांकी संगृहीत है। इन एकांकियों की कथावस्तु बहुत ही शिथिल है। 'बेचारी बुढ़िया' तथा 'वकालत' में हास्य है। पत्रकारिता में व्यंग्य का प्रयोग किया गया है। 'बेचारी बुढ़िया'

---

१. रामदास गौड़ - ईश्वरीय न्याय, पृ०सं०, पृ० २६

में उन लोगों को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो भूतों-प्रेतों में विश्वास करते हैं। "वकालत" एकांकी हास्य की दृष्टि से अच्छा है। नये वकील अपनी वकालत चलाने के लिए मुवक्किलों को फंसाते हैं। बुद्धिस्वरूप ऐसा ही नया वकील है। उन्हें लोग सलाह देते हैं कि वे कचहरी में एक मचान बनवा दें जिस पर मुवक्किलों को बैठा दिया जाय ताकि वे भागकर अन्य वकीलों के चंगुल में न फंस जांय। अन्त में वकील साहब स्वयं मचान से गिर जाते हैं और उनका हाथ टूट जाता है। भीड़ उन्हें देखकर कहती है — मचानिया वकील गिर पड़ा..... वह पड़ा है..... कैसे गिरा...... . क्या हुआ था..... . हम पहले ही कहते थे हटो, हटो।"[१]

"पत्रकारिता" में ऐसे पत्रकारों पर व्यंग्य किया गया है जो पत्रकारिता के नाम पर धन हड़पने की कोशिश करते हैं। बुद्धिलाल और खिनहा दोनों धूर्त सम्पादक हैं और विज्ञापन छाप छाप कर सम्पादक बन बैठे हैं। ऐसे पत्रकारों पर व्यंग्य करना ही इस एकांकी का उद्देश्य है।

राधेश्याम मिश्र का "कौंसिल की मेम्बरी" एक प्रसिद्ध प्रहसन है। सेठ लौंगलदास जो एक धनिक है उसके यहाँ एक आसामी लगान न अदा करने पर क्षमा मांगने आती है। सेठजी उसे अपने घर से निकाल देते हैं। कुछ समय बाद सेठ जी कौंसिल की मेम्बरी का चुनाव लड़ते हैं। उसी समय सरकार आदेश आ जाता है कि पचास रुपये के ऊपर लगान देने वाले आसामी सरकारी व्यक्ति समझे जायेंगे। उन्हें मिलाने के लिए लौंगलाल पटवारियों में रुपया बांटता है। धीरे धीरे सेठ की सारी रियासत चुनाव में वोट मांगने में ही खर्च हो जाती है। जनता देशबन्धु शर्मा के पक्ष में चली जाती है। लौंगलदास कहते हैं — लोगों की हमदर्दी कुछ दिनों से देशबन्धु शर्मा वाले तरफ पर ज्यादा खिंच रही है। हिन्दू मुसलमान सब मिलकर उसी की ली गा रहे हैं।"[२]

---

१. रामचरन शर्मा-वकालत (सफर की साथिन), पृ० ५४, १९५२ संस्करण

२. राधेश्याम मिश्र - कौन्सिल की मेम्बरी, पृ० ३, प्र०सं०

लालची सेठ तोंदलदास को इस प्रहसन का केन्द्र बनाया गया है । चुनाव के लिए यन्त्रवत् परिश्रम करना ही हास्य का कारण है । मिश्र जी ने शिष्ट और मार्मिक हास्य का प्रयोग किया है । हास्य की भावनाओं को प्रकट करने की क्षमता है ।

माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'कृष्णार्जुन युद्ध' एक प्रसिद्ध पौराणिक नाटक है । इस नाटक के उपलक्ष्य में चतुर्वेदी जी को अनेक स्वर्ण एवं रजत पदक प्राप्त हुए थे । नाटक में प्रद्युम्नशशि और शंख का वार्तालाप हास्योत्पादक है । शशि का मन पढ़ने में नहीं लगता है । वह स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देता है और शशि से कहता है -

'यदि पढ़ने की बात कहोगे, पोथी फाड़ जला दूंगा ।
कलम तोड़ दावात उलट स्याही सब तुम्हें पिला दूंगा ।।'[1]

शंख और शशि झगड़ने लगते हैं । थोड़ी देर बाद शशि अमरकोष याद करना प्रारम्भ करता है । शंख उसमें विघ्न उपस्थित करता है । शंख और शशि के वार्तालाप में पैरोडी का सुन्दर प्रयोग किया गया है ।

शंख शशि के कथन का पैरोडी करता है ।

'शशि- यस्य ज्ञान दया सिन्धोरगाधस्यानघा गुणाः ।
शंख -पुस्तक पढ़ हुआ अन्धा , लगा धक्का कि या पड़ा ।
शशि- सश्रिये चामृताय च भेदाख्यानाय न द्वन्दो ।
शंख-सुपारिये चावलाय च पैसे खाना है या धन्धा ।
शशि- अरे भाई मुझे अमरकोष रटने दो ।
शंख- अरे भाई मुझे अमर काव्य रचने दो ।'[2]

नाटकों में दो पात्रों में वार्तालाप की पैरोडी का बड़ा उत्तम निदर्शन हुआ है । इस प्रकार का पैरोडी लेखन हिन्दी नाट्य में यह प्रथम प्रयास है ।

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी-कृष्णार्जुन युद्ध, द्वि०सं०, पृ० ३३
२. वही, द्वि०सं०, पृ० ४८, ४९

परिहास के माध्यम से मधुर मुस्कान चतुर्दिक् फैल जाती है ।

वृन्दावनलाल वर्मा का एकांकी "टंटा गुरु" हास्य की दृष्टि से उत्कृष्ट है । इसमें भाँग पीने वालों का सफल परिशांकन किया गया है । आर्थिक दृष्टि से विपन्न भीमसेन जो अब तक भाँग पीने का आदी था , संकल्प किया कि अब वह भाँग नहीं पीयेगा किन्तु मित्रों के ईंगमात्र कहने पर ही भाँग पीने के लिए उत्सुक होकर हास्य का आलम्बन बन जाता है । वह कहता है --" आज की ठंडाई में भंग मिला देना । छोड़ देने का इरादा किया था, पर अब मित्रों के कहने पर विचार बदल दिया है । कल से छोड़ूँगा आज और सही ।"[१]

"शासन का डन्डा" में नाटककार ने जागीरदारों द्वारा रियायों पर अत्याचार का वर्णन करते हुए अतिरंजना द्वारा हास्य की सृष्टि की है । उसे पकड़कर जागीरदार शिकार पकड़ने ले जाता है । दिनभर परिश्रम के बाद कोई शिकार नहीं मिलता । शाम को जागीरदार उस भूखे चमार के सिर पर बैठ बैठ कर लौटना चाहता है । ऐसा न करने पर वह मारने का भय दिखाता है । पुनः घर पर आकर तुरन्त चमार को कागजात ढोकर राजधानी ले जाने के लिए मजबूर करता है और भय दिखाता है । चमार क्रोध में आकर जागीरदार का डण्डा छीन लेता है और अर्दली को जागीरदार के सिर पर कागजात का बोझ रखने की आज्ञा देता है । अरदली भी जागीरदार की आज्ञा नहीं मानता । अर्दली और जागीरदार के वार्तालाप में स्मित का उदाहरण मिलता है ।

" जागीरदार - अरदली, तुम भी ऐन मौके पर मुकर से फिर गये । मेरी मानोगे या इसकी ।
अरदली- न इसकी न आपकी । मैं तो कबूल है डन्डे की..... . शासन के डन्डे की मानूँगा ।"[२]

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा - टंटागुरु , (तीन एकांकी)प्र०सं०,पृ० ५५
२. वृन्दावनलाल वर्मा- शासन का डंडा (तीन एकांकी),प्र०सं०,पृ० ६१

स्मित हास्य के साथ ही साथ वर्मा जी ने जागीरदारों के अत्याचार पर व्यंग्य किया है । हास्य में उच्छृंखलता नहीं है । उनका हास्य स्मित, हसित की सीमा में निहित है । व्यंग्य का मधुर और चुभीला प्रयोग मिलता है ।

शंकर सुमन शर्मा कृत "मौलवी और पंडित" नाटक में दोनों व्यक्तियों का वार्तालाप मनोरंजक है । मौलवी साहब उर्दू शब्दों को कहते हुए पंडित जी की इज्जत करते हैं किन्तु पंडित जी व्याकरण के हिसाब से उसका विपरीत अर्थ लगा-कर झगड़ने लगते हैं । अन्त में मुंशी जी आकर दोनों व्यक्तियों को सही बात समझाते हैं । पंडित जी अपनी गलती स्वीकार करते हैं । दोनों एक दूसरे की भाषा के अध्ययन का संकल्प करते हैं । हास्य की दृष्टि से मौलवी और पंडित जी का निम्न वार्तालाप मनोरंजक है —

"मौलवी — अबे नालायक ! कुछ अक्ल भी रखता है ? ऐसी बात करता है गोया पागल हो गया हो ।
पंडित — गोया क्या ? हाँ, यवनराज्य में गोवध तो अनिवार्य सा हो गया है ।
मौलवी — कौन इसके आगे भख मारे ?
पंडित — "झषोमत्स्यः" इत्यमरः । झख अर्थात् मछली का मारना तुम्हारा धर्म ही है । यवन हो न ?
मौलवी — बेहूदे तुझे हुआ क्या है ?
पंडित — दो पुत्र, एक पुत्री । पर मेरे नहीं, मेरी स्त्री के हुए हैं ।"[१]

आत्माराम देवकर कृत "पंचानन्द" एक हास्य वार्तालाप है । पंचानन्द और श्री विवेकानन्द की बातचीत ही हास्य का कारण है । पंचानन्द का नाम रजनीविहारी है जो एक धूर्त किसान है । उसकी भेंट विवेकानन्द से होती है । प्रथम परिचय में ही पंचानन्द विवेकानन्द से अपना बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करता है ।

---

१. सरस नाटक माला, द्वि०सं०, पृ० ५१

विवेकानन्द के पूछने पर कि वह सारी विद्यायें कहाँ से प्राप्त की ? पंचानन्द उत्तर देता है -" उन्हें लोग ढकोसलानन्द उर्फ लम्पटदास ब्रह्मचारी कहते हैं ।"[1] पंचानन्द और विवेकानन्द के वार्तालाप में हास्य की सृष्टि होती है -

"विवेका० -गीदड़ में इतनी धूर्तता कहाँ से आई ?
पंचा० - उसने पूर्वजन्म में कुछ दिन तक हमारे गुरु की शिक्षा पाई थी, इसी से वह इतना चालाक हो गया ।"[2]

^ ^ ^

"विवे० -"रजनीबिहारी" उल्लू को कहते हैं, सो तू निरा उल्लू है ।
पंचा० -ही, ही,ही ही, अब तो तूने मेरी सात पीढ़ी को पहचान लिया ।"[3]

'गुरु और चेला' भी देवकर की हास्यात्मक नाट्यवार्ता है । एक विद्यार्थी पंडित जी से संस्कृत और मौलवी साहब से उर्दू पढ़ता है । दोनों भाषा में होने वाले उच्चारणगत अन्तर ही इस वार्ता में हास्य के कारण हैं । मौलवी साहब वैद, शास्त्र का उच्चारण वैद और शास्तर करवाते हैं । पंडित जी इसे अशुद्ध रूप बताकर डाँटते हैं जिससे हास्य की उत्पत्ति होती है ।[4]

देवीप्रसाद गुप्त का"बना हुआ गवाह" नाटक हास्य की दृष्टि से उत्तम है । मि० उलूकानन्द वकील एक गवाह के लिए अपने मुंशी को डाँटते हैं । वह रास्ते में घोंटादीन पाण्डेय को भाँग का लालच देकर वकील साहब के पास पेश करता है । घोंटादीन कहते हैं -" हे गवाह सृष्टि के निर्माणकर्ता, हे भंगधारी देव, हे घर फूँक तमाशे के बाजीगर, हे । धनियों के हथियार, हे दरिद्रों के

---

१. प्रहसनाटक माला - मि०सं०,पृ० १११
२. वही, पृ० ११२
३. वही, पृ० ११३
४. वही, पृ० १६२-६३

सर्वस्वहर्ता, हे वकील देव मैं आपको सहस्रबार नमस्कार करता हूं ।"[1]

नाटक के अन्तिम दृश्य में न्यायालय का चित्रण है । जज, पेशकार और प्रतिवादी के वकील के सम्मुख घोंटादीन प्रविष्ट होते हैं । वे जज द्वारा पूछे गये प्रश्नों का अन्धाधुन्ध उत्तर देते हैं । काफी बातों के बाद अदालत स्थगित कर दी जाती है । घोंटादीन के वाचिक व्यवधान पर प्रतिवादी का वकील आपत्ति करता है । निम्न वार्तालाप रोचक है —

"वकील — हुजूर, यह विटनेस बहुत अब्स्ट्रक्टिव मालूम होता है ।
घोंटादीन — क्यों भइया, वकील हो क्या ?
वकील — हां मैं प्रतिवादी का वकील हूं (मुस्कराता हुआ) क्यों तुमने कैसे पहचाना ?
घोंटादीन — (हंसकर) पाण्डेय जी, इतनी स्थूल बुद्धि नहीं रखते कि इतनी मोटी बात भी न समझ सकें । आपका पुराना और मैला सूट और हैण्डिलबैग इतना तो इस बात को चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है कि आपने भी दुर्भाग्यवश वकालत की फांसी गले में डाल ली है ।"[2]

उपर्युक्त वार्तालाप में हास्य का उदाहरण तो है ही, वकीलों की दुर्दशा का व्यंग्यात्मक चित्रण भी प्राप्त हो जाता है ।

कृष्णलाल का "सच्चा न्याय" एक लघु प्रहसन है । इसमें शराबी राजा, मन्त्री, चपरासी फरियादी, हरिया नाई ठल्लू बनियां आदि पात्र हैं । शराबी राजा अपने दरबार में बैठा है उसी समय एक फरियादी आता है कि उसकी भैंस ने हरियानाई के चने खा लिये इसलिए उसका पेट फूल गया और वह मर गई । राजा नाई को बुलवाता है तो नाई कहता है कि उसने चने ठल्लू बनियां से खरीद कर बोये थे । राजा ठल्लू बनियां को बुलाता है तो वह कहता है कि वह तो

---

१. हास्यनाटकमाला, द्वि०सं०, पृ० १३४

२. वही, पृ० १३६

जमीन का दोष है । शराब के नशे में राजा अपराधी से जमीन को पकड़ लाने को कहता है । अपराधी अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब राजा स्वयं उस दण्ड को स्वीकार करता है -

" राजा-- तो फिर मिंढ मरने के अपराध में जमीन को भी सजा होनी चाहिए यह कौन भुगते (कुछ देर में) क्यों मन्त्री ! तू बोलता क्यों नहीं ? मैं भुगतूं या तू भोगता है ।

मन्त्री --महाराज ! मैं तो आजकल बहुत निर्बल हो रहा हूं ।

राजा-- अच्छा तो मैं हूं खड़ा खड़ा । अपराधी, मुझे ही लगा मार अबकी उस मिंढ की सजा किसी को भी तो होनी चाहिए ।"[1]

शराबी राजा को आलम्बन बनाकर यहाँ हास्य की अवतारणा की गई है ।

लालबहादुर सिंह के "बाह्याडम्बर" नाटक में समाज में प्रचलित रूढ़िवादिता को हास्य का आलम्बन बनाया गया है । शिवप्रसाद इंग्लैण्ड से सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर आने वाला है । उसका मित्र बनवारीलाल उससे मिलने के लिए स्टेशन जाता है । रास्ते में मदारीलाल नामक पुराने ढंग का व्यक्ति कहता है कि शिवप्रसाद के आने पर पंचायत होगी तब वह जाति में मिलाया जायगा । बनवारीलाल पूछता है कि शिवप्रसाद जाति से बाहर कब थे ? बनवारी लाल समाज में फैले भक्ष्याभक्ष्य का पर्दाफाश करता है -

"मदारीलाल-- विलायत जाओ, मेमों के साथ खाओ पीओ और पाद-प्रांत से बचत चुपचाप मिल जाओ ।

बनवारीलाल --(हंसकर) जी हाँ ! ये बात ! तो क्यों जनाब, जो घर बैठे ही सब कुछ भक्ष्याभक्ष्य खाते और न करने योग्य कामों को करते रहते हैं, उनको कैसे जात में रक्खे हुए हैं ?"[2]

बनवारीलाल समाज में प्रचलित 'दीपक तले अँधेरा' का पर्दाफाश करता है । नाटककार ने इस नाटक के लिखने में भारतेन्दु के 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का आधार लिया है । इसमें पुराने रूढ़िवादी लोगों पर व्यंग्य किया गया है ।

१, परकनाटक माला, द्वि०सं०,पृ० १५२

२, वही, पृ० २४१

गणेशराम मिश्र ने 'लबड़धौंधौं' प्रहसन की रचना की है। इन्होंने बदरीनाथ भट्ट के 'लबड़धौंधौं' का अनुकरण किया है। भट्ट जी के प्रहसन में हास्य की मार्मिकता है किन्तु मिश्र जी के हास्य में सजीवता नहीं है। चौकस और गब्बू दो शरारती लड़के हैं जो लड्डू और गुझिया चुराकर खाते हैं और स्कूल से भाग जाते हैं। दोनों लड्डू और गुझिया के लिए परस्पर लड़ते हैं। अन्त में छन्नू और मन्नू आकर पिटाई करके दोनों को भगा देते हैं। इस प्रहसन के न तो कथा में कोई सजीवता है न हास्य विधान में। भाषा में अवश्य कुछ सजीवता है। बालकों की भाषा का बड़ा उपयुक्त प्रयोग हुआ है। गब्बू वाचाल है। उसकी भाषा में हास्य का पुट मिलता है -- "अ र र र। कुछ लड्डू चुरा लाया है ।।, पर अब पुट्ठी में कब खाये बिना मानता हूं ? देखो भाई, तुम बड़े बेईमान हो। हम खिलाते हैं तुम्हें, पर तुम नहीं खिलाते हो हमें। अच्छा अब देखेंगे, जब सामने वाली गली से रात में निकलोगे तो देखूंगा बच्चा।"[1]

वीरेश्वर वर्मा का 'हां में हां' शारदाविनोद से रूपान्तरित एक हास्य नाट्यवार्ता है। इसमें दो पात्र हैं --एक रामचरण जो एक गरीब किसान है दूसरे मि० जोंकसिंह जो एक खुशामदी मनुष्य है। रामचरण एक भाड़ में लौकी का पेड़ लगा देता है। उसमें तीन लौकियां फली, एक घर में सब्जी के लिए रख कर दो बाजार में बेचने के लिए ले जाता है। वहां म्युनिसिपैलिटी का चपरासी एक लौकी टैक्स के रूप में मांगता है। रामचरण के न देने पर दोनों में मारपीट हो जाती है और वह चपरासी जबर्दस्ती एक लौकी ले लेता है। रामचरण बची हुई एक लौकी को भी फेंककर पेड़ भी उखाड़ देता है। रामचरण इसी घटना को जोंक सिंह से कहता है तो वह हर बात में हां हां करता है और उसकी चापलूसी ही स्मित हास्य का कारण बन जाती है। हास्य का निम्न उदाहरण है --

" राम० - जब मैंने लौकी न देनी चाही, तब वह मुझसे एक लौकी छुड़ाने लगा।

---

1. सरलनाटक माला - द्वि०सं०, पृ० २८०

मि०चाँद —यह तो खुशामद थी । अब हुआ टैक्स कलेक्टर, तुमने उसे टैक्स न दिया, तो यह खुशामद थी ।

राम० —उस लोटी से सींचते - सींचते उसमें दाग पड़ गये । यह मुन्शाजी बेलनुमे बड़ा गुस्सा आया और मैंने उसे दो एक बातें भी सुना दीं ।

मि०चाँद—अच्छा किया, एक तो तुम गरीब हो, तिस पर उसने एक लोटी खराब कर दी तुम कड़ी बात न सुनाओगे तो क्या घर पढ़ोगे ?

राम०— तब तो वह मुझे गाली देने लगा ।

मि० चाँद —कर गाली देगा । एक तो तुमने टैक्स न दी, दूसरे उससे कड़ी-कड़ी बातें कहीं । वह कर गाली देगा ।"[1]

खुशामद करना कुछ मनुष्यों की प्रकृति है । ऐसे लोगों पर काफी छींटा-कशी की गई है । हास्य में प्रभावोत्पादकता है ।

लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय का "ठोंक पीट कर वैद्यराज" फ्रेंच के नाटककार मोलियर के "दि डाक्टर इन स्पाइट आफ हिमसेल्फ" के आधार पर लिखा हुआ है । यह हरिनारायण शास्त्री के "संसार मुबारक वैद्य बौआ" का रूपान्तर है लेकिन यत्र-तत्र अनेक अंशों को बढ़ा दिया गया है । यह हास्यहास्यपूर्ण प्रहसन है । लकड़हारा बोधे जी अपनी पत्नी को पीटते हैं । पत्नी रुष्ट होकर के घर से निकल जाती है । बोधे जी जंगल में जाते हैं । पत्नी को रास्ते में हरभजन और रघुवर मिलते हैं जो धनकुबेर की बेटी गुलाबदेई, जो रुग्ण है, के लिए वैद्य ढूंढते हैं । बोधे की पत्नी चिढ़चिढ़ी उनसे कहती है कि एक वैद्य बोधे जी हैं । वे बहुत अच्छे वैद्य हैं, उन्हें देखते ही रोग भाग जाता है लेकिन वे अपने को वैद्य नहीं बताते । लाठियों से पीटने पर ही वे अपने को वैद्य स्वीकार करते हैं । हरभजन और रघुवर बोधे जी के पास जाकर गुलाब देई की औषधि करने को

---

1. हास्यनाटक माला, द्वि०खं०, पृ० ११६

कहता है । लेकिन चौबे जी के इनकार करने पर लाठियों से उन्हें पीट देता है और जबर्दस्ती ले जाता है तथा उन्हें मार मार कर पण्डित से वैद्य बना देता है और ब्राणारथार्थी पण्डित जी गुलाबदेई का इलाज करते हैं । वह स्वस्थ भी हो जाती है जिससे उन्हें सौ रुपये का पुरस्कार भी मिल जाता है । पीटे जाने पर चौबे जी अपने को वैद्य स्वीकार करते हैं -

"गूंधा जावे जैसे आटा, तैसे वैद्य बना हूं ।
करो कमाई चौबे मेरी वैद्य हूं मरता हूं ।।"[1]

पाण्डेय जी का यह प्रथम और श्रेष्ठ प्रहसन है । इसमें शुद्ध हास्य की अवतारणा की गई है ।

"राय बहादुर" पाण्डेय जी का दूसरा प्रहसन है । यह भी मौलियर के" लवुण्यी आंफिल आम" के आधार पर लिखा गया है । इसमें राय बहादुर को आलम्बन बनाकर हास्य की पुष्टि की गई है । राय बहादुर को अनेक उपाधियाँ मिली हैं । उनका अभिनन्दन भी किया जाता है । अभिनन्दन पत्र के उत्तर में वे कवियों के चरणों पर नाक रगड़कर अभिनन्दन का कवितावद्ध उत्तर लिखवाते हैं । कई दिनों तक वे उस उत्तर को याद करने का प्रयत्न करते हैं । इस प्रहसन में नाटककार ऐसे मूर्ख व्यक्तियों को अभिनन्दन पत्र और उपाधियां देने पर व्यंग्य करता है । राय बहादुर स्वयं अपनी मूर्खता प्रकट करते हैं -

" इन पदों की रचना कराने में मुझे कविवर" कचकड़राय" की कितनी खुशामद करनी पड़ी है सो मैं ही जानता हूं । वह जिद कर रहा था कि १०० रु० ही पुरस्कार लेंगे । इससे कम पर वह कविता बना देना स्वीकार ही न करता था । मैं लाचार था, क्योंकि ऐसे समारोहों में पढ़े जाने के लिए कविता होनी ही चाहिए ।"[2]

---

१. लल्लीप्रसाद पाण्डेय - ठोंक पीट कर वैदराज, पृ० २६ (१६२७ ई०)
२. लल्लीप्रसाद पाण्डेय - रायबहादुर , पृ० १११,११२, संवत् १९८९ वि०

नाटक में रायबहादुर पर कठोर व्यंग्य मिलता है। यत्र-तत्र हास्य का भी प्रयोग मिलता है किन्तु हास्य में अशिष्टता अधिक मिलती है।

निष्कर्ष

प्रसादकालीन नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित होते हैं इसलिए सैद्धान्तिक दृष्टि से नाटकीय तत्वों का प्रभाव पड़ना आवश्यक ही था। प्रसाद ने पाश्चात्य कामेडी का आधार लिया है। इस काल के नाटकों के शिल्प पर पाश्चात्य प्रभाव भी पड़ा है। कामेडी के प्रभाव के कारण इस काल के नाटकों में हास्य की सहज सृष्टि हुई है। इस काल के नाटकों में विदूषक का प्रयोग प्राय: नहीं किया गया है। इसीलिए हास्य व्यंग्य में भड़ौए का अभाव है। कथोपकथन के माध्यम से इस युग में हास्य-व्यंग्य की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि इस युग में भारतेन्दुकाल की तरह प्रतापनारायण मिश्र जैसे फक्कड़ न थे तथापि हास्य-व्यंग्य में मौलिकता अधिक दिखाई पड़ती है।

सप्तम अध्याय

प्रसादोत्तर कालीन नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(१९३६ – १९६५ ई०)

(परिस्थितियाँ, हास्य-व्यंग्य, राष्ट्रीयजनचेतना और हास्य, हास्य-व्यंग्य का बहुमुखी पैन, पत्रकारिता की प्रधानता और हास्य-व्यंग्य का प्रयोग, सामाजिक रूढ़ि पर हास्य, विदूषकों का चित्रण, सिनेमा के अन्धभक्त, फैशनपरस्त, शिक्षित, बेकार, स्वार्थी राजनेता और स्त्रियाँ हास्य के नये आलम्बन, निष्कर्ष ।)

अध्याय - ७

प्रसादोत्तरकालीन नाटकों में हास्य और व्यंग्य (१९३६-१९४५)

परिस्थिति

सन् १९३४ ई० में सत्याग्रह आन्दोलन बन्द हो जाने के बाद सरकार ने गिरफ्तार सत्याग्रहियों को छोड़ना प्रारम्भ किया । सन् १९३५ ई० में इंडियन एक्ट के पास होने पर कांग्रेस उससे पुनः असन्तुष्ट हुई । किसानों ने भी अपना आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया । सन् १९३४ में समाजवादी पार्टी का जन्म हो जाने पर उसका प्रथम अधिवेशन पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ । कांग्रेस ने किसानों के अधिकारों को दिलाने के लिए नये विधान का विरोध किया । साम्प्रदायिकता दूर करने तथा मद्यनिषेध सम्बन्धी विधान बनाना भी कांग्रेस का उद्देश्य था । इस अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि भारत द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग नहीं लेगा । लेकिन बिना नेताओं की राय लिए ही भारत को द्वितीय विश्वयुद्ध में ढकेल दिया गया । कांग्रेस के नेताओं का इरादा था कि युद्ध में भाग लेने के पूर्व भारत की स्वतन्त्रता पर कुछ विचार करा लिया जाय । इसी समय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस त्याग कर फारवर्ड ब्लाक की कतिपय नेताओं के साथ स्थापना की । अपनी बैठक में कांग्रेस ने घोषित किया कि भारत को तत्काल स्वतन्त्र घोषित कर दिया जाय । कांग्रेस तथा फारवर्ड ब्लाक के कतिपय नेता शीघ्र आन्दोलन प्रारम्भ कर देने के पक्ष में थे । ४ अगस्त १९४० को वाइसराय ने एक घोषणा प्रसारित कर कांग्रेस को केन्द्रीय सरकार तथा युद्ध सलाहकार परिषद् में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया किन्तु कांग्रेस ने इस निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया । गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह करना शुरू किया जिसमें पहले विनोबा तथा बाद में जवाहरलाल नेहरू ने सत्याग्रह प्रारम्भ किया । ये सत्याग्रही युद्धविरोधी प्रचार करते हुए दिल्ली जाते और गिरफ्तार होते थे । सत्याग्रहियों ने रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा भी प्रस्तुत की । चर्खा, ग्रामोद्योग,

प्रारम्भिक शिक्षा, राष्ट्रभाषा प्रचार पर विशेष बल दिया गया। इसी समय क्रिप्स महोदय अपना प्रस्ताव लेकर भारत आये और यहाँ के अनेक नेताओं से भेंट की। उनके प्रस्ताव में अनेक हितकारक बातें थीं किन्तु सभी दलों ने इसे धोखा समझकर उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

अप्रैल १९४२ ई० में गांधी जी ने "भारत छोड़ो" आन्दोलन प्रारम्भ किया। गांधीजी ने देशवासियों से अहिंसात्मक आन्दोलन छेड़ने की मांग की। भारत छोड़ो आन्दोलन तीव्रता से प्रारम्भ हुआ। नेताओं को जेल में ठूंसना प्रारम्भ किया गया तथा सरकार का दमनचक्र चल पड़ा। जनसामान्य में विरोध की लहर फैल गई। रेलवे स्टेशन, डाकखाने तथा अन्य सरकारी इमारतों एवं सम्पत्तियों को नष्ट करना प्रारम्भ किया। स्कूल कालेजों के छात्रों ने इस आन्दोलन में बड़ी सक्रियता से भाग लिया। क्रान्ति की लहर तेजी से बढ़ी। १९४२ ई० के अन्त तक देश के विभिन्न स्थानों पर ५३८ बार गोली चली। आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार "यह आन्दोलन भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का सबसे बड़ा जनसंग्राम था। किसी पूर्व निश्चित योजना के अभाव में भी देश की जनता सर्वत्र सरकार के विरुद्ध उठ खड़ी हुई और जैसा कि स्वतः प्रसूत जनक्रान्तियों में देखा जाता है, उसने शासनसत्ता के केन्द्रों पर अधिकार करना और विदेशी शासन के प्रतीकों का नष्ट करना आरम्भ किया।"[१]

भयंकर नर संहार से दुःखी होकर गांधी जी ने १० फरवरी १९४३ को २१ दिनों का उपवास जेल में ही प्रारम्भ कर दिया जिससे इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा भारत में चिन्ताजनक प्रतिक्रियाएँ हुईं। १९४३ में देश में साम्प्रदायिक विरोध बढ़ा। जिन्ना ने मुस्लिमलीग के २४ वें अधिवेशन (दिल्ली) में "इस्लाम खतरे में है" का नारा बुलन्द करते हुए पाकिस्तान निर्माण की मांग की और गांधी जी को स्वाधीनता के मार्ग में बाधक बताया। इसी समय बंगाल में भीषण अकाल पड़ा जिसमें ४० लाख व्यक्ति मर गये। ६ अप्रैल १९४४ को गांधी जी को जेल से

---

१. आचार्य नरेन्द्रदेव-राष्ट्रीयता और समाजवाद, प्र०सं०, पृ० १८८

रिहा कर दिया गया । गांधी, जिन्ना तथा राजगोपालाचारी ने मिलकर समझौता करने तथा कोई समाधान निकालने का प्रयास किया किन्तु कोई भी हल न निकल पाया । इसी समय आजाद हिन्द फौज के दो अधिकारियों पर मुकदमा चलाया गया जिससे देश में उथल-पुथल की लहर फैली । अनेक जगह इसके विरोध में आन्दोलन हुए । सन् १९४६ ई० में इंग्लैण्ड से "कैबिनेट मिशन" भारतीय परिस्थितियों का अध्ययन करने तथा भविष्य में भारत सम्बन्धी विधान निर्माण करने के उद्देश्य से भारत में आया । देश में हिन्दू-मुस्लिम विरोध के कारण यह मिशन अपने उद्देश्यों की पूर्ति न कर सका । १८ फरवरी १९४६ को बम्बई में नाविकों का विद्रोह हुआ इसे भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है । बम्बई हड़तालों और प्रदर्शनों से पूर्णरूपेण अस्तव्यस्त हो गया । १६ अगस्त १९४६ को पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए "डाइरेक्ट एक्ट" का दिन निश्चित हुआ । इस दिन सम्पूर्ण देश में हड़तालें तथा साम्प्रदायिक दंगे हुए । कलकत्ता में चार दिनों की लूटमार में तीन हजार व्यक्ति मौत के घाट उतारे गये । १५ अक्टूबर को नोआखाली में भयंकर दंगा हो गया वहां अनेकों हिन्दुओं की जानें गई । इसके परिणामस्वरूप बिहार में अनेकों स्थलों पर भीषण दंगे हुए ।

२० फरवरी १९४७ ई० को प्रधानमंत्री एटली ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार का इरादा शीघ्र ही भारतीयों को सत्ता सौंपने का है । इसी समय लार्ड माउंट बैटेन भारत में वाइसराय नियुक्त हुए । ब्रिटिश शासन की योजना के अन्तर्गत जुलाई १९४७ में "इंडियन इन्डिपेन्डेन्ट एक्ट" पास हुआ जिसके अनुसार भारत और पाकिस्तान १५ अगस्त १९४७ को स्वतंत्र हो गये । इस स्वतंत्रता से भारतीय इतिहास का एक दुःखद अध्याय समाप्त हुआ और भारतीय लोगों में नयी आशा का संचार हुआ ।

२६ जनवरी १९५० को गणतन्त्र भारत में अपना संविधान लागू हुआ । स्वर्गीय राजेन्द्रप्रसाद देश के प्रथम राष्ट्रपति तथा स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू प्रथम प्रधानमंत्री नियुक्त हुए । स्वतन्त्रता के बाद भी देश की दशा सुदृढ़ न रह

सकी । अकाल पर अकाल पड़ते रहे । १९५६ ई० से लेकर १९६० तक अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग महामारी का प्राधान्य रहा । बढ़ती हुई शिक्षा से बेरोजगारी की समस्या बढ़ी । १९६२ में चीन तथा १९६५ में पाकिस्तानी आक्रमणों से देश को आर्थिक क्षति उठानी पड़ी ।

स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद हमारे देश में अनेक औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना की गई । कृषि में उन्नति करने के लिए अनेक वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग बढ़ा । धीरे-धीरे देश स्वावलम्बन की ओर बढ़ता जा रहा है । आशा है शीघ्र ही पूर्णरूपेण, आत्मनिर्भर हो जायगा ।

हास्य-व्यंग्य

१९३५ ई० के बाद देश में अनेक उथल पुथल होती रही है । अंग्रेजी शासन की बर्बरता और तानाशाही वृत्ति के खिलाफ कवियों ने विरोध का स्वर आरम्भ किया । नाटकों में पात्रों के माध्यम से तत्कालीन ब्रिटिश हुकूमत की अनियमितताओं पर कटाक्ष प्रारम्भ हुआ । आधुनिक युग हास्य व्यंग्य का स्वर्ण युग माना जाता है । आधुनिक युग में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हास्य-व्यंग्य का विशेष विकास सम्भव हुआ । इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हास्य-व्यंग्य का मौलिक रूप सामने आया जिसके जिसके फलस्वरूप आधुनिक नाटकों में उसका पल्लवन,पुष्पन हुआ । आधुनिक नाटकों में कलात्मक तथा चारित्रिक विकास के साथ ही साथ हास्य का विकास हुआ । इस युग में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण भी बहुत से नाटक लिखे गये । भारतेन्दु युग के सामाजिक पाखण्ड का स्थान आधुनिक विद्रूपताओं ने ले लिया । आधुनिक युग के हास्यप्रिय नाटककारों ने सिनेमा के अन्धभक्त, फैशनपरस्त, शिक्षित, बेकार, स्वाधीनताओं तथा नारियों का आलम्बन लेकर नाटकों की रचना की । आधुनिक युग में स्मितहास्य का प्रचलन हुआ तथा चरित्र-चित्रण पर विशेष बल दिया गया । पाश्चात्य सुखान्त नाटकों के आधार पर प्रहसनों की रचना होने लगी । सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए कठोर और मृदु व्यंग्यों का सहारा लिया गया । वर्तमान साहित्यिक कुरीतियों पर भी व्यंग्य अधिक किया गया है ।

हरिशंकर शर्मा आधुनिक युग के प्रमुख व्यंग्यकार हैं और परिहास सम्मेलनों के जन्मदाता हैं। उन्होंने 'चिड़ियाघर' नामक प्रहसन की रचना की है जिसके अन्तर्गत (१) चकचकाता चिड़ियाघर (२) पशुपक्षियों का पार्लमेन्ट (३) भारतीय मुण्डमुण्ड मंडल (४) स्वर्ग की सीधी सड़क आदि प्रहसन संगृहीत हैं।

'चकचकाताचिड़ियाघर' नाटक में शर्मा जी ने विभिन्न पक्षियों का प्रतीक प्रस्तुत किया है। कविरत्न, कौवा, गरुड़देव, कवि कारण्डव, गुरु वशिष्ठ, बगुला भगत, कुक्कुट कवि, कविराज कंकदेव, आदि इसके प्रमुख पात्र हैं। इन पात्रों के माध्यम से कवियों एवं उपदेशकों पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है। चिड़ियाघर के सभापति गरुड़देव जी कवि कारण्डव की प्रशंसा करते हुए कहते हैं— 'भाई वाह, इस आधुनिक युग में आप ही एक कामयाब कवि हैं। विराजिये, इस समय सौभाग्य है। आपकी 'पयपाइन्स' के लिए तो पूरे पांच घण्टे दिये जायें, तब कहीं श्रोतृसमुदाय की संतुष्टि हो। हो हो। आपकी कविता क्या है, 'फायर ब्रिगेड' का इंजन या तूफान, ट्रेन का भोंपू है, धर्म, जिसपर जगत स्थिर है, उसके आप जैसे परमप्रवीण प्रचारक धन्य हैं।'[1] ऐसे कवि प्रायः हर सम्मेलनों में मिल जाते हैं उन्हीं कवियों पर व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है।

'पशुपक्षियों का पार्लमेन्ट' में हास्य की सुन्दर व्यंजना है। पार्लमेण्ट के सभापति श्रीमान् वीरवर केसरी सिंह जी हैं। वे मिस्टर चीतराम, पं० मयूरसिंह और लाला लकड़बग्धामल के साथ पार्लमेन्ट में पहुंचते हैं तब प्रतिनिधियों ने अतीव हर्ष का प्रदर्शन किया और अपनी-अपनी भाषा में उनका एक साथ स्वागत किया। रेंकने, भौंकने, चीखने, चिंघाड़ने, रंभाने, कलकलाने, भिनभिनाने, चहचहाने आदि की सम्मिलित कुहुध्वनि ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। इसके पश्चात् श्रीमती लोमड़ी, श्रीमती बिल्ली आदि ने स्वागत गान

---

१. हरिशंकर शर्मा-चिड़ियाघर, प्र०सं०, पृ० १३

गाया । मिस्टर भेड़ियाराम ने खड़े होकर आधे घण्टे में सारा स्वागत-भाषण पढ़ डाला । पार्लमेन्ट में इसके अनन्तर श्री गर्दभदेव, कुंवर कुणाकुमार जी, भाई भेड़ियामल, हजरत हाथी खां, ठा० घोड़ा सिंह, श्री० उष्ट्रसिंह, मि० सीताराम, पं० पुच्छियाचरण आदि ने अपने अपने क्षेत्र की दुर्दशा पर प्रकाश डाला इसके अनन्तर सभापति का भाषण हुआ । इस नाटक में पार्लमेन्ट में होने वाली मूर्खों की पंचायत का हास्यात्मक वर्णन किया गया है ।

"भारतीय मुण्डमुण्ड मंडल" में समाज की फैशनपरस्ती पर व्यंग्य किया गया है । अंग्रेजी सभ्यता के फलस्वरूप भारतीय लोग भी मूंछ मुड़ाने लगे । इसी पर शर्मा जी ने तीखा व्यंग्य प्रकट किया है जिसमें सहज हास्य की सृष्टि भी होती है ।

देश के सभी मुण्डमुण्ड नेताओं का उदाहरण देकर शर्मा जी ने हास्य की सृष्टि की है -" पुच्छहीन महात्माओं...... मुण्डमुण्डता का विस्तार भी धीरे धीरे ही होगा । परन्तु होगा अवश्य यह हमारी ध्रुवधारणा है । बिना मुण्डमुण्डता के देशोद्धार हो ही नहीं सकता । सब को इस पथ का पथिक बनना पड़ेगा ।"[१]

" स्वर्ग की सीधी सड़क" हास्य का अविरल उदाहरण प्रस्तुत करने में सक्षम है । इस नाटक में समाज का सजीव चित्रण किया गया है । हिन्दी प्रचारकों द्वारा अंग्रेजी समाज पर व्यंग्य किया गया है । इसमें वार्तालाप के माध्यम से चिचिन्नानन्द द्वारा तत्कालीन विकृतियों पर व्यंग्य किया गया है -

" मैं - नेता किसे कहते हैं ?
बाबा - जो सदैव अपने ही व्यक्तित्व का ध्यान रखता है और अपनी ही बात चलाता है । लोकमत का तनिक भी आदर नहीं करता ।
मैं - स्वराज्य कब मिलेगा ?
बाबा - जब भारत में एक भी हिन्दुस्तानी न रहेगा, सर्वत्र अंग्रेज ही अंग्रेज हो जायेंगे ।

---

१. हरिशंकर शर्मा- पिंजरापोल, प्र०सं०, पृ० ६७

मैं — आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वोत्तम पोथी कौन-सी है ?

बाबा- आल्हा ऊदल के साँग, आधुनिक रामायण और भाँगा भव-
नीक का भजन-समंधा ।"[1]

इस नाटकमें वचनविदग्ध्य के माध्यम से हास्य की सृष्टि की गई है । धर्म, कला, दर्शन इत्यादि पर व्यंग्य किया गया है ।

'पाखण्ड प्रदर्शन' नाटक में चार दृश्य हैं । इनके पात्र पं० हमकमल, ठा० सितार सिंह, लाला मवीरामल, मौलवी साहब आदि हैं । इस नाटक का ध्येय हिन्दू समाज के संकुचित विचारों एवं परस्पर भेदभावों का चित्रण करना है । पं० हमकमल चमारों एवं अन्य छोटी जातियों से घृणा करते हैं । नाम सुनते ही उनकी आराधना निष्फल हो जाती है । लेकिन मुंसी के मुसलमान चपरासी से कुछ भी नहीं कहते , जो आचमन के समय ही मशक के छींटे से उन्हें परेशान कर देता है । समाज के ऐसे पाखण्डियों के प्रति नाटककार व्यंग्य करता है —

" हमकमल —जो है रे ठकुरिया, तू बड़ी ठंठ है । अरे दुष्ट, आज
हम पाठ कर रहे हते, सोई जो है ते, चेता चमार की बाबा
हमें पालागी करके चली गयी, जांसू हमारी सब ही पूजा
बिगड़ गई । पूजा में चमारादिकन कों शब्द सुन बोहू, बुरी
बतायी गयी है । समझी कि नाँय ?

ठकुरी— महाराज ! चमार से तो इतनी घृणा करते हो, पर उस
मुंसी के चपरासी (मुसलमान) से कुछ नहीं कहा, जिसने रैन
आचमन के वक्त पानी के मशक के तड़ाके के मारे नाक में दम
कर दिया था ।"[2]

---

१. हरिशंकर शर्मा- पिंजरापोल, प्र०सं०, पृ०१६७

२. वही, पृ० १०५

'बिरादरी बिभ्राट' एकांकी नाटक है । इसमें तीन अंक हैं । नाटक में व्यंग्य की प्रधानता है । हिन्दू धर्म के अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, अछूतोद्धार के प्रति असहिष्णुता, जातिपांति की कट्टरता, कुआछूत पोंगापन्थी आदि का व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है । अन्धेरनगरी में द्वारपाल तथा धम्भदेव का वार्तालाप हास्य को प्रकट करता है । इन पात्रों के अतिरिक्त उद्दण्ड सिंह, दुर्जन-मल, चपरफल इत्यादि अनेक पात्र हैं । धर्म के ठेकेदार भंगी, चमार आदि को उच्चस्थान प्रदान कराना चाहते हैं किन्तु अन्धेरनगरी के उद्दण्ड सिंह, दुर्जन मल, आदि का अपमान करते हैं । सुधारकों तथा नवविचारवादी युवकों को सजा दी जाती है । एक नवयुवक गंवारों में फंस जाता है । वह नये विचारों को नहीं समझता है । उस युवक को दोषी ठहराकर दण्ड दिया जाता है । इस प्रकार इस नाटक में समाज में प्रचलित रीतियों पर व्यंग्य किया गया है जिसमें हास्य की भी सृष्टि होती है ।

'बुढ्ढ़े का विवाह' में वृद्ध विवाह , अनमेल विवाह आदि की खिल्ली उड़ाई गई है । इस नाटक की विषयवस्तु में कोई नवीनता नहीं है । नाटक में सात दृश्य हैं । लम्पटलाल, दुर्मतिसेन, धौंधूमल इत्यादि इसके पात्र हैं । लम्पटलाल तथा पुण्यदास अनमेल विवाह करते हैं और वे अन्त में गिरफ्तार कर लिये जाते हैं । समाज में प्रचलित इन परम्पराओं का कारुणिक वर्णन इस नाटक में हुआ है । कारुणिक स्मित के माध्यम से शुद्ध हास्यपरिहास का उत्तम निदर्शन हुआ है ।

हरिशंकर शर्मा के नाटकों में उच्चकोटि की नाट्यकला है । विभिन्न बोलियों के माध्यम से भी हास्य का उद्रेक हुआ है । पात्रों के नाम भी हास्योत्पादन में सहायक हैं । पात्रों के वाद-विवाद में वाग्वैदग्ध्य का बड़ा सफल प्रयोग हुआ है । आधुनिक नाटककारों में शर्मा जी हास्य की सृष्टि करने में सफल हैं । उनका हास्य-व्यंग्य शिष्ट और संयत है ।

आधुनिक नाटककारों में उपेन्द्रनाथ अश्क प्रमुख हैं । हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में उनका प्रमुख योगदान है । "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ" उनका सात एकांकी नाटकों का संग्रह है जिसमें --(१) पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ (२) कइसा साब ?

कइसी आया ? (३) बतसिया (४) सयाना मालिक (५) तौलिये (६) कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन और (७) मस्केबाजों का स्वर्ग । नाटक संगृहीत हैं।

"पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ" एकांकी में अव्यवसायिक नाटक करने वालों की कठिनाइयों का चित्रण किया गया है । सदस्यों द्वारा फ्री पास प्राप्त करने की संकुचित मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है । फ्री पास न मिलने पर बलबीर बीमार हो जाने का बहाना कर लेता है । उसके स्थान पर राम-किशुन चपरासी को रुपया देकर उसका पार्ट करने के लिए तैयार किया जाता है । नौकर स्टेज के ऊपर अकड़ जाता है जिससे अभिनय खराब हो जाता है और नाटक समाप्त हो जाने के पहले पर्दा गिर जाता है ।

"मानसिंह - चोबदार...... चोबदार..... ।

किशुन - (राजा मानसिंह की तरह अकड़ कर प्रवेश करता है और इसी अदा में भूल जाता है कि उसे "जी महाराज" कहना है ।) जी आदेश (निकट जाकर) जी आदेश..... ।

मानसिंह - (किशुन की इस हरकत पर झुंझला करके) बता मालती कहाँ है ?

किशुन - (इस घबराहट में कि उससे कुछ गलती हो गई है, सम्वाद भूल जाता है) जी आदेश.... ।

मानसिंह - (क्रोध से) हम कहते हैं कि बता मालती कहाँ है ?

किशुन - (जिसे अपनी गलती का पता चल जाता है कि उसने "जी महाराज" के स्थान पर "जी आदेश" कहा है, अपनी गलती सुधार लेता है) जी महाराज । जी महाराज ।

(विंग पीछे हटता है ।)

प्राम्प्टर - (पुस्तक हाथ में लिये संकेत करता है) मालती को महारानी ने भूगृह में बन्द करने का आदेश दिया है ।

किशुन - (देखता है कि प्राम्प्टर कुछ कह रहा है, पर घबराहट में समझता नहीं) जी महाराज ।

(विंग में दयाराम, भगवन्त और अन्य अभिनेता परेशानी में इकट्ठे हो रहे हैं)

मानसिंह –(रंगमंच पर) भगवे, हम पूछते हैं, मालती कहाँ है? जी महाराज, जी महाराज रटे जा रहा है। उल्लू कहीं का। बता मालती कहाँ है?

बिशुन – (क्रोध में अकड़ जाता है) ऐ देखो, जबान सम्हारि के बात करो। बड़े महाराज बने फिरत हैं। पेट का एक रुपिया और शान इतनी गांठत हैं। जाओ नहीं बताइत, हम कहित हैं, गारी देहो तो मालूम होय पै भी बताउब और उठाकर नीचे फेंक देब।

(दर्शकों के ठहाके गूंजते हैं)

दयाराम –(घबड़ाहट में) पर्दा गिराओ। पर्दा गिराओ।।"[1]

इस नाटक में रामबिशुन हास्य का आलम्बन है। उसके मूर्खतापूर्ण कार्य से उपहास की सृष्टि होती है।

'कैसा साब? कैसी आया?' नाटक में तीन पात्र हैं —साहब, आया और नौकर। यह नाटक बम्बइया हिन्दुस्तानी में लिखा गया है। इसमें मध्यवर्गीय लोगों की कामुक प्रवृत्तियों एवं आयाओं के साथ दुर्व्यवहार करने का चित्र खींचा गया है। इसमें एक ऐसे साहब का चित्रण है जो बाहरी ढंग से बड़ा उपदेशक है लेकिन वह एक आया (दासी) के साथ व्यभिचार कर बैठता है। साहब के पकड़े जाने पर आया भी भाग जाती है। इस नाटक में व्यभिचार मजाखोरी पर व्यंग्य किया गया है।

"बतसिया" नाटक में रंगीली छोकरियों के कृत्रिम व्यवहार को आलम्बन बनाकर हास्य की व्यंजना की गई है। बतसिया एक गांव की लड़की है जिसकी माता ईसाइयों के यहाँ काम करने के कारण ईसाई बना ली जाती है। ईसाई उसका नाम बीट्रिस रखता है। मालिक के मर जाने पर बतसिया को अन्यत्र नौकरी

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क–पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, पृ०सं०,पृ० ४२,४३

करनी पड़ती है । उसके नाम का सही उच्चारण न होने पर वह चिढ़ती है और सेठ से झगड़ती है कि लोग उसका सही उच्चारण करें ।

"चिकियन - सुना नहीं बतलिया ।
मीरदिन - हुजूर, मेरा नाम मीरदिन है ।
चिकियन - हाँ हाँ, सुन लिया तेरा नाम । अब जाकर सैंडविच तैयार कर डाल जल्दी से ।"[1]

इस नाटक में अंग्रेजी परस्त लोगों पर व्यंग्य किया गया है जिसमें "देसी चिड़िया विलायती बोल" की उक्ति चरितार्थ हुई है ।

"सयाना मालिक" पारिवारिक समस्या से सम्बन्धित नाटक है । इसमें एक ऐसे सयाने मालिक को आलम्बन बनाया गया है जो नौकर रखने के पूर्व बहुत छानबीन करता है फिर भी उसे विश्वासपात्र नौकर किसी तरह मिल पाता है । कुछ समय बाद वह नौकर उस मालिक का सारा सामान चुराकर भाग जाता है । जिस पर पास पड़ोस के लोग उस मालिक के सयानेपन का मजाक उड़ाते हैं । नाटक में पैरोडी का बड़ा सुन्दर उदाहरण है । यत्र-तत्र व्यंग्य का भी प्रयोग किया गया है । नौकर के अपने चरित्रवर्णन में वाक्छल का उदाहरण मिलता है ।

"तौलिए" नाटक में पाँच पात्र हैं -बसन्त, मधु, सुरो, चिंता और मंगला । बसन्त एक फर्म का मैनेजर है जिसका वेतन ढाई सौ रुपये मासिक है । वह फैशनपरस्त है । उसकी पत्नी मधु को सफाई का बड़ा ध्यान रहता है । उसे सदैव बीमारी और सफाई की सनक सवार रहती है । मधु हर कार्य के लिए अलग अलग तौलिए रखती है लेकिन बसन्त बिना उनके उद्देश्य का विचार किए उन तौलियों का इस्तेमाल करता है । इस नाटक में पाश्चात्य तथा भारतीय सभ्यता का संघर्ष कराकर हास्य की सृष्टि की गई है । बसन्त जब लड़की सुरो की तौलिया से मुँह पोंछ लेता तब मधु का वक्तव्य द्रष्टव्य है -

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ,पृ०सं०,पृ० ७६

"मधु — (अचानक बसन्त को दूरी वाली तौलिए से मुंह पोंछते हुए देखकर लगभग चीखती हुए) यह दूसरा नया तौलिया लिया है आपने ?
मैं पूछती हूँ आप दूसरे तौलिए में भी तमीज नहीं कर सकते।
अभी तो दूरी और पिन्नी चाय पीकर इस तौलिए से हाथ पोंछकर गई हैं।

बसन्त — (घबराकर) परन्तु नया........।
मधु — नया तौलिया उधर कमरे में टंगा है।
बसन्त — ओह ये कमबख्त तौलिए। मुझे ध्यान ही नहीं रहता। वास्तव में दोनों तौलिए साफ हैं, मुझे.......।"[1]

"कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन" में एक लालाजी को हास्य का आलम्बन बनाया गया है। वे कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन करते हुए मुल्की हल्के के व्यापक क्रान्ति पर व्याख्यान देते हैं। उद्घाटन के मन्त्री भी उन्हें आश्वासन देते हैं कि इस क्लब की शीघ्र उन्नति की जायेगी तथा इसकी एक टीम इंगलिस्तान भेजी जायेगी। इस नाटक में मूर्खतापूर्ण कार्य द्वारा हास्य की सृष्टि की गई है।

"मसखरों का स्वर्ग" नाटक अधिकांश हिन्दी में लिखा गया है। इसमें सिनेमा संसार पर कठोर व्यंग्य किया गया है। सिनेमा संसार में कला की कोई कद्र नहीं होती है। सारा व्यापार डायरेक्टर तथा निर्माताओं पर निर्भर करता है। मस्कापालिश करने वालों की ही कद्र सिनेमा संसार में होती है चाहे उसे कुछ भी न मालूम हो। डायरेक्टर कहता है कि — "आर्ट फार्ट को कौन पूछता है, यहाँ चलता है मस्कापालिश और चलता है रिश्वतनामा। नया माल आयेगा तो अपने साथ नया टीम लायेगा। हमारा लिवाकन ले जाकर अपनी बीवी को दिखाएगा और पूछेगा "बोलो कैसा बनेला है" उसको पसन्द आया तो पास, नहीं तो उठा लाओ अपना बोरिया बिस्तर।"[2]

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क- पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, पृ०सं०, पृ० १७२-७३
२. वही, पृ० २००

अश्क जी ने 'छठा बेटा' नाटक उन दिनों लिखा था जबकि उनका मस्तिष्क प्राय: परेशान रहता था। इस नाटक में हास्य की प्रधानता है। यत्र-तत्र व्यंग्य की फुलझड़ियां भी बिखरी होती हैं। नाटक का प्रारम्भ ही डॉ० बंसराज के व्यंग्य कथनों से होता है। यह एक स्वप्नशैली का नाटक है जिसमें सम्मिलित परिवार प्रथा की टूटती हुई कड़ी दिखाई गई है। पांच पुत्र जो समर्थ हैं अपने एक सेवा निवृत्त वृद्ध पिता का पालन करने से इन्कार करते थे, किन्तु वे ही पांचों पुत्र जो पिता की बुराइयों की निन्दा करते थे, यह जानकर कि पिता को तीन लाख की लाटरी मिली है, सेवा प्रदर्शित करने में होड़ लगाते हैं। कोई हुक्का तैयार करके देता है। कोई शराब अपने हाथ से पिलाता है। कोई पैर दबाता है। कोई पिता जी की सेवा में दिन भर पास खड़ा रहता है। जैसे ही पिता के सारे रुपये समाप्त हो जाते हैं तो पांचों पुत्र पुन: छोड़ देते हैं। अन्त में छठा बेटा ही काम आता है जो गरीब है। जो पिता अपना सारा धन खर्च करके गरीब हो जाता है उसे पुत्रों से सत्कार नहीं मिलता। नाटककार ने वर्तमान समाज में फैली हुई इस नीति पर व्यंग्य किया है। पिता शराब पीने का आदी था जब वह शराब के नशे में चूर था तो बंसराज सभी बेटों पर बलात्कार करता है पिता को छोड़ देता है।[१] इस नाटक में नशाखोरी पर भी हास्य प्रकट किया गया है।

'अंजो दीदी' अश्क जी का एक सामाजिक नाटक है। इसमें दो अंक हैं। कथा का सम्बन्ध अभिजात्य वर्ग से है। अंजली घर की प्रत्येक वस्तु पर ध्यान रखती है। वह अव्यवस्था को दूर करना चाहती है। उसका विवाह इन्द्रनारायण नामक वकील से हुआ है जो अपनी उच्छृंखलता, मनमौजीपन, मस्ती और स्वच्छन्दता खोकर अंजली के इशारे पर नाचता है। इस नाटक का आधार मनोवैज्ञानिक है इसलिए सूक्ष्महास्य की व्यंजना होती है। श्रीपत अंजली का भाई है। वह प्रत्युत्-

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क- छठा बेटा, पृ० १००, सन् १९५० ई०

मूलक पात्र है जो कैंवी की असंगतियाँ और उनके प्रेम को तोड़ने के लिए एक पक्ष लेकर नाटक में अवतरित होता है । वह मध्यम मार्ग का सहारा लेता है । भीपत हास्यवादी पात्र है । उसके कथनों में हास्य की मधुर फुहार छूटती है । कैंवी से परेशान वकील साहब की दशा देखकर भीपत कहता है -"आप तो हाई कोर्ट के जज दिखाई देते हैं (हँसता और नाक की चुटकी लेता है ।) हालाँकि अभी आप एडवोकेट भी नहीं बने....... जब एक वकील जज नज़र आने लगे तो समझिए कि वह बुड्ढा हो गया है । वकील तो जवानी का प्रतीक है । (हँसता है) और जज बुढ़ापे का । कसम आपकी बीबी की, शादी ने आपको बुड्ढा बना दिया[१]।"

'अलग-अलग रास्ते' भी एक सामाजिक नाटक है । इसमें समाज में प्रचलित विवाह प्रणाली पर व्यंग्य किया गया है । नाटक में हास्य का अभाव है किन्तु द्वितीय अंक में व्यंग्य की प्रधानता है । यत्र तत्र नाटकीय परिस्थिति से हास्य जागता है । राज पूरन तथा त्रिलोक पूरन के वार्तालाप में व्यंग्य की प्रधानता है । त्रिलोक रानी से मिलने आया है । निम्न उदाहरण में व्यंग्य का सफल प्रयोग है -

> "त्रिलोक -आज इतवार था, मैंने सोचा कि पिता जी से और आप लोगों से मिलता आऊँ ।
>
> पूरन -(सव्यंग्य) बड़ी कृपा की । पर साल में तो बावन इतवार आते हैं....... आपने यहाँ नाहक आने की सोची ।"[२]

'अधिकार का रक्षक' एकांकी में, मि० सेठ जो एक दैनिक समाचार पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असेम्बली के प्रत्याशी हैं, का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है । मि० सेठ अनेक सभाओं में समाज सुधार का व्याख्यान देकर अपने समाचारपत्र से खूब

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क- कैंवीदोदी, पृ० ५८

२. उपेन्द्रनाथ अश्क- अलग अलग रास्ते, प्र०सं०, पृ० ७०-७१

प्रतिष्ठा करते हैं। वे चाहते हैं कि हरिजनों का उद्धार हो, श्रमजीवियों को उचित वेतन मिले, श्रमिकों को वेतन प्रतिमाह दिया जाय किन्तु स्वयं सेठ जी अपनी रसोइयाँ भगवती को तीन महीने का वेतन नहीं देते हैं। अपने सम्पादक से १२-१२ घण्टे प्रेस में काम करवाते हैं। अपने बच्चों को निर्दयी की तरह पीटते हैं। इस प्रकार व्यापकर्म से ऊबे गर्दभ की भाँति सेठ जी अपने चुनाव प्रचार में लगे हुए हैं। वे एक कालेज यूनियन के चुनाव में भी रुचि लेते हैं लेकिन कुछ लड़के प्रधानाचार्य को निकालने हेतु हड़ताल कर देते हैं। उन लड़कों का समाचार पत्रों में नहीं प्रकाशित किया जाता। दो लड़के मि० सेठ से मिलते हैं। एक व्यंग्यपूर्ण वार्तालाप का उदाहरण निम्न है -

"मि० सेठ- (अन्यमनस्कता से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं, आप कल दफ्तर में आकर इनको अपना बयान दें। ये जितना उचित समझेंगे, छाप देंगे।

दोनों -(उठते हुए) बहुत बेहतर, कल हम सम्पादक जी की सेवा में उपस्थित होंगे। नमस्कार।

मि०सेठ और सम्पादक -नमस्कार।

(दोनों का प्रस्थान)

मि० सेठ -(सम्पादक से) यदि कल ये आयें तो इनका बयान हरगिज न छापना। प्रिंसिपल हमारे कृपालु हैं और कमेटी के सदस्य हमारे मित्र।"[1]

देवताओं की छाया में " अश्क जी का एक दुःखान्त व्यंग्य है। इसमें निम्न परिवार का चित्रण मिलता है। निम्न परिवार के लोगों को मुसीबतों का किस प्रकार सामना करना पड़ता है? उनका जीवन कितना दुःखमय होता है। समाज में ऐसे लोगों की दीनदशा पर लेखक ने व्यंग्य के माध्यम से उनमें सुधार लाने का आवाहन किया है।

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क- अधिकार का रक्षक (सफल एकांकी), प्र०सं०,पृ० ६५

"विवाह के दिन" में सामाजिक व्यंग्य की प्रधानता है । समाज में बिना सोचे समझे लड़के-लड़कियों के विवाह रच दिये जाते हैं । परशुराम ऐसा ही छात्र है जिसका विवाह एक फूहड़, कुरूप, मतबड़ लड़की से हो गया है ।[1] वह अपने इस सामाजिक जीवन से परेशान हो उठता है । इस प्रकार के दाम्पत्य जीवन के प्रति लेखक ने व्यंग्य किया है । समाज में ऐसे दाम्पत्यजीवन में घृणा का भाव आ जाता है और पति पत्नी परस्पर ईर्ष्यालु हो जाते हैं । इसका सारा दायित्व समाज के श्रेष्ठ वर्गों पर है । इस बुराई को दूर करने के लिए अश्क जी ने व्यंग्य का सहारा लिया है ।

"जोंक" एक प्रसिद्ध प्रहसन है । प्रो० आनन्द भोलानाथ के मित्र हैं । भोलानाथ बाहर चले जाते हैं तो उनका एक पंजाबी मित्र आकर बाहर बैठ जाता है । आनन्द खिड़की पर चढ़कर पैन उतारते हैं तो वह पंजाबी चोर-चोर चिल्लाने लगता है और आनन्द को पीटता भी है । चिल्लाहट से आस पास के लोग भी एकत्रित हो जाते हैं और स्वयं भोलानाथ भी आ जाते हैं । सारा वातावरण हास्य में परिवर्तित हो जाता है । एकांकी के बीच में पंजाबी भाषा का प्रयोग भी मनोरंजक है ।

"आपस का समझौता" एक प्रहसन है । डॉ० कपूर और डॉ० वर्मा ने चिकित्सा की अभी नई प्रैक्टिस प्रारम्भ की है । वे चाहते हैं कि उनका खूब प्रचार हो जाय । डॉ० वर्मा के यहाँ रोगियों की भीड़ लगी रहती है । डॉ० साहब एक रोगी का दाँत देखते हैं । उसी समय डॉ० कृष्णलाल आकर बैठते हैं । डॉ० वर्मा कहते हैं कि आजकल रोगी इलाज कम करवा रहे हैं अतः मैं डॉक्टरों से आपसी समझौता करना चाहता हूँ ताकि रोगियों की कमीशन पड़े । डॉ० वर्मा कहते हैं —"मैं कहता हूँ, इसमें बुरा क्या है ? यह तो आपस का सहयोग है । मैं जो मरीज तुम्हारे यहाँ भेजूँ उनसे तुम जो लो, उसका २५ प्रतिशत मुझे भेज देना । आँख के रोगियों के सम्बन्ध में ऐसा ही एक समझौता मैंने अब डॉक्टर कपूर से किया

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क - देवताओं की छाया में, प्र०सं०, पृ० १८२

था और अब भी रोगी कभी बैठा था अब उसने ही भेजा है । मैं भी आँखों का एक पैशेन्ट उनके यहाँ भेज चुका हूँ ।"[1]

अश्क जी ने वर्तमान समय के ऐसे डाक्टरों को प्रहसन का विषय बनाकर हास्य की उत्तम सृष्टि की है । उनके प्रत्येक नाटक में नवीन सूझ और प्रेरणा है । उन्होंने अपने नाटकों में परिस्थिति प्रधान तथा चरित्रप्रधान हास्य की अभिव्यक्ति की है । उनके पात्रों में सजीवता है । उन्होंने सभी नाटक पाश्चात्य पद्धति पर लिखे हैं जिनमें वातावरण का सुन्दर चित्रण हुआ है । यथार्थ एवं स्वाभाविक मनोगत भावों द्वारा हास्य प्रकट हुआ है । अश्क जी का हास्य अधिक सूक्ष्म, संयत और प्रभावकारी है । उनके हास्यविधान के बारे में जगदीशचन्द्र माथुर ने लिखा है ।" उनके पास कार्टून नहीं, उनके मज़ाक स्थूल नहीं, उनकी परिस्थितियाँ सरकस की कलाबाज़ियाँ नहीं । उनकी पैनी दृष्टि दैनिक जीवन में ही कुतूहल की सामग्री खोज निकालती है ।.... दूसरे शब्दों में अश्क की विनोदभावना वार्तालाप के चुटकुलों या पात्रों के भोंडे व्यवहार के रूप में प्रकट नहीं होती, बल्कि चरित्र और कार्य सम्पादन की पृष्ठभूमि के रूप में । अश्क के नाटकों में व्यंग्य की प्रतीति एक नवीन वातावरण के रूप में होती है, जिसके साधन हैं हल्की सी फबतियाँ, सांकेतिक कार्यसम्पादन और पात्रों की अनजान कमजोरियों का धीमा मधुर उभार[2]।"

ज्योतिप्रसाद मिश्र "निर्मल" आधुनिक युग के हास्य नाटककारों में प्रमुख हैं । उनका हास्य रस प्रधान एकांकी संग्रह "श्यामल" है जो सन् १९५० में प्रकाशित हुआ था । इसके अन्तर्गत आठ प्रहसन संगृहीत हैं –(१) श्यामल (२) आनरेरी मजिस्ट्रेट (३) व्याख्यान वाचस्पति (४) चरणोदक (५) राष्ट्रीय नैतिकता बोझा (६) पतिपत्नी (७) विवाह की उम्मीदवारी और (८) समालोचना का मर्म ।

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क- देवताओं की छाया में, प्र०सं०,पृ० १८२
२. पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ - भूमिका, पृ० १३

'कयामत' में मुंशी चुन्नत राय का चरित्र-चित्रण है । मुंशी जी सनकी मिजाज के व्यक्ति थे । छोटी-छोटी बातों पर उन्हें सनक सवार हो जाती थी । उन्हीं को आलम्बन बनाकर हास्य की अवतारणा की गई है ।

"आनरेरी मजिस्ट्रेट" में अंग्रेजी काल में ऐसी मूर्खों पर व्यंग्य किया गया है जो सम्मान के रूप में मजिस्ट्रेट बना दिये जाते थे । "व्याख्यानवाचस्पति" में रटकर व्याख्यान देने वाले एक व्याख्यानदाता को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो रटकर विद्यार्थियों के बीच में व्याख्यान देते समय भाषण भूल जाता है और विद्यार्थी उसका परिहास करते हैं ।" घरबाहर" में समाजसुधारक पति और अशिक्षित पत्नी के वैषम्य द्वारा हास्य की अभिव्यक्ति हुई है । पतिपत्नी प्रायः झगड़ते रहते थे । 'राबर्ट मैथेलियल बोझा" में एक मूर्ख विद्यार्थी को हास्य का आलम्बन बनाया गया है ।" पतिपत्नी" में दम्पति के झगड़ों पर हास्य प्रकट किया गया है । विवाह की जिम्मेदारी" में सामाजिक बुराई पर व्यंग्य किया गया है । लड़की वाले दहेज के लिए सौदेबाजी करते हैं । ऐसे लोगों के माध्यम से हास्य की सृष्टि की गई है ।"समालोचना का मर्ज" में चमक बिहारी नामक आलोचक की हँसी उड़ाई गई है जिसे सदैव आलोचना करने की सनक सवार रहती है । यहाँ तक कि सब्जी बेचने वाले जब उसकी इच्छा के प्रतिकूल मूल्य लेते हैं तो उसे भी वह आलोचना करने की धमकी देता है । सब्जी दे देने के बाद जब सब्जीवाली पैसा माँगती है उस समय का वार्तालाप हास्य की सफल सृष्टि करता है —

"चमक—(नाराज होकर) तो क्या मैं चोर हूँ ? जानती नहीं मैं कौन हूँ ? मैं तेरी आलोचना कर दूँगा समझी ।

ठठियारी— बाबू, धना तो मेरे पास है सरकार, आपके कहने की जरूरत नहीं है । हाँ, छः पैसे की तरकारी आपने ली है ।

चमक —(चिढ़कर) अरे आलोचना । आलोचना ।। आलोचना ।।। कुछ पढ़ी लिखी भी है या नहीं है ? चार पैसे की मैंने तरकारी ली, कहती है छः पैसा । चार छः पैसे की लेनी थी

तो चार पैसे पर दे लेकर चलता ही क्यों ? क्या मैं बेवकूफ हूं ।"[१]

निर्मल जी के नाटकों में हास्य की जो व्यंजना हुई है उसमें काल्पनिकता अधिक है । केवल मूर्खता प्रदर्शित कर हास्य की सृष्टि की गई है । इनके प्रहसनों में अतिनाटकीयता और अतिरंजना की अधिकता है । पात्रों के चरित्रों का कोई स्तर नहीं है । निर्मल जी के हास्य में भड़ैती अधिक है । नाटकों में आदर्श का कहीं भी पोषण नहीं हुआ है । हास्य की दृष्टि से निर्मल जी के प्रहसन अधम-कोटि के ही सिद्ध होते हैं ।

डॉ० रामकुमार वर्मा के अधिकतर एकांकी ऐतिहासिक और सामाजिक कथावस्तु को लेकर लिखे गये हैं । 'रिमझिम' उनके सोलह एकांकियों का संग्रह है जिसमें हास्य-व्यंग्य की प्रधानता है ।

'पृथ्वी का स्वर्ग' एकांकी विनोद का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है । इसमें सेठ सुखीचन्द के व्यवहार बर्ताव से हास्य की सृष्टि होती है । सेठ इतना मक्खीचूस है कि बाहर से थका हुआ आकर भी शरबत नहीं पीना चाहता । वह एक एक पैसे को गिन कर चढ़ाता है । वह बोझ वाले से ढुलाई की कीमत दस आना तय करके चार आना देता है वह भी खराब चवन्नी । सेठ सुखीचन्द इतना लालची है कि उसके चरित्र से ही विनोद की झांकी बन जाती है । वह भिखारिन को दिये गये दुशाले को भी ले लेता है —

"सेवक—बाबा जी, माफ कीजिए ।
सुखीचन्द—तेरी माफी गई भाड़ में । बुला उस भिखारिन को । हाय ।
(रोता है ।)
सेवक —मुझे क्या पता कि वह भिखारिन कहाँ गई और मैं नहीं जानता था कि वह हरा दुशाला आपको इतना प्यारा है । आपने ही तो कहा था कि पुराने कपड़े हैं और तुम्हारे लिए.... ।

---

१. ज्योतिप्रसाद मिश्र "निर्मल" - श्यामल, प्र०सं०, पृ० ५२

मुलीचन्द—तेरे बाप के लिए, गधे..... नालायक..... बड़ा सीधा
बनता है। समझा न ? अरे देना था तो कोई दूसरा कपड़ा
दे देता ? वही पिया हरा दुशाला। आज दुनियाँ भर मुझे
लूटने में जुटी है।

कमल — भिखारिन का बच्चा मर रहा था बाबा जी।

मुलीचन्द —(चीखकर) अरे वह मरने को हो तो आज मर जाय। और
साथ-साथ तू भी मर जा। (रोते हुए) हाय। मेरा हरा
दुशाला।"[1]

"रंगीन स्वप्न" एकांकी में कमल, नन्दन पार्क में घूमते हुए एक रूमाल पाते हैं। वे दोनों चोरी का जिक्र कर रहे थे। पास में ही एक पुलिसमैन टहल रहा था। दोनों मिल एक ही रूमाल पर बहस कर रहे थे। उसी पार्क में एक बुढ़िया का रूमाल गायब हो गया था जिसकी तलाश पुलिस कर रहा था। पुलिस उन दोनों के पास आकर रूमाल के लिए तर्क करता है। उस पार्क में प्रभा का भी रूमाल गिर गया था। वह थोड़ी देर बाद आकर अपना रूमाल ले जाती है। इस नाटक में विनोद की झलक मिलती है केवल गुदगुदी का अनुभव होता है। इसमें हास्य का अभाव है।

"फेल्ट हैट" कुतूहल का उदाहरण प्रस्तुत करता है। आनन्द का हैट खो जाता है और वे उसे बुरी तरह परेशान होकर ढूँढते हैं। जब वह नहीं मिलता तो बिना हैट के ही टहलने चले जाते हैं। नौकर उनके हैट में आलू लाकर रख दिया था जिससे हैट का पता नहीं लगा। जब आनन्द चले जाते हैं तो उनकी पत्नी शीला को हैट मिल जाता है। जाते समय आनन्द और शीला का वार्तालाप स्मित हास्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है —

"शीला —आप उसे कहीं भूल तो नहीं आये।

आनन्द —(कुढ़ता है) मैं चाहे अपना सिर कहीं भूल जाऊँ लेकिन इतना
अच्छा हैट नहीं भूल सकता, फिर उसे अभी तीन बार रोज
हुए, लाया था। इतना सुन्दर हैट। कितना बढ़िया रेशम

---

१. रामकुमार वर्मा-रिमझिम, प०[illegible], पृ० ५०

का फीता लगा हुआ था उसमें । लेकिन इसे तुम क्या समझो.... सिन्दू तभी क्या समझे कि हैट में क्या "चार्म" रखता है । एक बैरागी को कोई क्या समझावे कि ताजमहल क्या चीज है ?

शीला - (मुस्कराकर) तो आपका यह ताजमहल किसी दुकान में फिर नहीं मिल सकता ।"[१]

इस एकांकी में आनन्द की व्यग्रता ही अट्टहास का कारण है । उनके चरित्र की तुलना जेरोमी के उपन्यास "थ्री मेन इन ए बोट" के अंकिलपोजर से की जा सकती है । दोनों ही पात्र अट्टहास के आलम्बन हैं ।

"रूप की बीमारी" एकांकी में अट्टहास की प्रधानता है । इसमें यत्र-तत्र व्यंग्य का भी समावेश है । बिना किसी रोग के बड़े बड़े सेठ साहूकार अनेक डॉक्टरों से इलाज कराकर धन का अपव्यय करते हैं तथा डॉक्टर लोग भी झूठा विश्वास दिलाकर खूब पैसा ऐंठते हैं । रूपचन्द के बुखार को दूर करने के लिए उसका पिता कपूर तथा दास गुप्त दो डॉक्टरों को नियुक्त करता है । वे बुखार के लिए आपरेशन कराने की बात कहते हैं -

" दासगुप्त -आपरेशन से एक लांग निकाल के फेंक देगा । सीरिफ एक लांग से आदमी जिन्दा रहने शाकता । ओ बाबा । आपरेशन से हड्डी निकाल के सोडा लगा देगा ।

कपूर - यु हुड अन्डरस्टैण्ड दाट मिस मिस्टर रूप ।

रूपचन्द -यह सब ठीक है, लेकिन आपरेशन टल नहीं सकता ?

दासगुप्त -क्यू टालने शाकता, लेकिन बीमारी बाढ़ने की बात होता । आपको परेशानी भी होगा और टाका भी खरच होगा ।"[२]

---

१. रामकुमार वर्मा -रिमझिम, प०सं०,पृ० ७५

२. वही, पृ० १२५

डॉ० दासगुप्त के शब्दोच्चारण में भी हास्य प्रकट होता है ।

"कविपत्नी" एकांकी अतिरंजना का उदाहरण है । कविपत्नी की कविता पुस्तक खो जाने से वे बहुत आतुर हो उठती हैं । उन्हें कवि सम्मेलन में जाना है । पुनः वे रामचरन नौकर को बुलाकर पूंछती हैं ? वह बतलाता है कि —" एक दिन पानवाला दाम के खातिर चिल्ल आवा रहा । आप रहैन नाहीं । उ दाम नाहीं पावा तो किताबै लइगवा होई ।"[१]

"नमस्कार की बात" और "एक तोले अफीम की कीमत" में वर्मा जी ने विद्रूप का चित्रण किया है । इन दोनों एकांकियों में अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से हास्य की उत्पत्ति होती है । "आंखों का आकाश" परिहास का उदाहरण प्रस्तुत करता है । इसमें अविनाश और सुलेखा के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से परिहास की सृष्टि हुई है । "फेमिली पार्टी" के पात्र मिस्टर गुप्ता और शुक्ला मित्र हैं । वे परस्पर एक दूसरे को उल्लू बनाने की कोशिश करते हैं जिसमें वचनवैदग्ध्य द्वारा हास्य की सृष्टि होती है । इसे डॉ० रामकुमार वर्मा ने परिहास माना है ।

"एक अंक की बात" में वक्रोक्ति है । इसमें एक ही पात्र भाषा बदल-बदल कर कथोपकथन कहता है । यह नव एकांकी है । कामिनीलता एक होलकवर्षीया लड़की है जो हेमचन्द्र से प्रेम करती है । वह उसके प्रेम में तन्मय रहती है और पढ़ाई पर ध्यान नहीं देती । परीक्षाफल निकलने पर वह एक नम्बर से अनुत्तीर्ण हो जाती है । एकांकी में वक्रोक्ति के माध्यम से हास्य की सृष्टि होती है ।

"आशीर्वाद" व्यंग्य प्रधान एकांकी है । राजेन्द्रकुमार लाटरी ~~में लगा लिये गये~~ का टिकट खरीदता है किन्तु सब रुपये शरणार्थियों की सेवा में लगा दिये जाते हैं । उसे इनाम नहीं मिलता । उसे पांच लाख रुपये न मिलकर उतने ही आशीर्वाद मिलते हैं ।

---

[१] रामकुमार वर्मा-रिमझिम,व०सं०, पृ० १७२

'घर का मकान' में सेठ ज्योतिचन्द्र एक पात्र हैं जो अपने मकान को चूहों को इस रूप में देने के लिए तैयार रहते हैं मानो वह रहने वाले के ही घर का मकान हो । सेठ जी के मुर्गे, चूहे, बिल्लियाँ सभी इस मकान में रहते हैं । श्यामकिशोर जी सेठ जी के मेहमान हैं, उन्हें यह घर दिया जाता है तथा साथ ही साथ पशुओं के पालन का भार भी दिया जाता है जिससे विवश होकर वे इस मकान को छोड़ देते हैं । इस एकांकी के वार्तालाप बड़े रोचक हैं जिससे स्मित, हसित की सृष्टि होती है —

> 'श्यामकिशोर — शेरा, यह शेरा कौन है ?
> लीला — क्या सरकस का भी शौक है सेठ जी को ?
> बैजनाथ — नहीं साहब, क्या खूबसूरत मुर्गा है । अगर वह न बोले तो सूरज की मजाल है कि निकल जाए । गरदन उठाकर ऐसा बोलता है जैसे किसी कालिज का प्रोफेसर हो ।'[1]

रामकुमार वर्मा के अधिकांश पात्र संभ्रान्त और शिक्षित हैं जिससे उनकी भाषा प्रौढ़ और स्वाभाविक है । भाषा में सम्बद्धता है जिससे प्रस्तुत व्याघात वस्तुक्रम में नहीं पड़ता । बीच बीच में हास्य-व्यंग्य की शक्तियाँ हैं जिससे भावों की गम्भीर स्थिति में भी मन ऊबता नहीं । 'अठारह जुलाई की शाम' में अशोक की रोमान्टिक वाक्य-शैली में चुभते हुए शब्द समूह परिस्थितिजन्य मनोरंजन की यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत करते हैं । 'गद्देदार कुर्सियाँ जिन पर बैठो तो मालूम हो जैसे किसी की गोद में बैठा हो ।'[2] ऊषा से कही गई अशोक की इस उक्ति में वासनामयी प्रवृत्ति का जितना स्पष्ट प्रमाण है उतना ही विनोद का भी । 'रेशमी टाई' में नवीनचन्द्र और उनके नौकर का वार्तालाप क्रोध से मिले हास्य की अच्छी सामग्री प्रस्तुत करता है । 'परीक्षा' में प्रो० केदार के जवान बनने की इच्छा से

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान- २० नवम्बर १९५५,पृ० ११

२. रामकुमार वर्मा-रेशमीटाई, पृ०सं०,पृ० १२५

'घर का मकान' में सेठ अमोलकचन्द एक पात्र हैं जो अपने मकान की खूबियों को इस रूप में कहने के लिए तैयार रहते हैं मानो उस रहने वाले के ही घर का मकान हो । सेठ जी के मुर्गे, चूहे, चिड़ियां सभी इस मकान में रहते हैं । श्यामकिशोर जी सेठ जी के मेहमान हैं, उन्हें यह घर दिया जाता है तथा साथ ही साथ पशुओं के पालन का भार भी दिया जाता है जिससे चिन्तत होकर वे इस मकान को छोड़ देते हैं । इस एकांकी के वार्तालाप बड़े रोचक हैं जिससे स्मित, हसित की सृष्टि होती है -

'श्यामकिशोर—शेरा, यह शेरा कौन है ?
लीला — क्या सरकस का भी शौक है सेठ जी को ?
वैजनाथ - नहीं साहब, क्या खूबसूरत मुर्गा है । अगर यह न बोले तो सूरज की मजाल है कि निकल जाए । गरदन उठाकर ऐसा बोलता है जैसे किसी कालिज का प्रोफेसर हो ।'[1]

रामकुमार वर्मा के अधिकांश पात्र संभ्रान्त और शिक्षित हैं जिससे उनकी भाषा प्रौढ़ और स्वाभाविक है । भाषा में सम्बद्धता है जिससे प्रसंग व्याघात वस्तुक्रम में नहीं पड़ता । बीच बीच में हास्य-व्यंग्य की उक्तियां हैं जिससे भावों की गम्भीर स्थिति में भी मन ऊबता नहीं । 'अठारह जुलाई की शाम' में अशोक की रोमान्टिक वाक्य-शैली में चुभते हुए शब्द प्रचुर परिस्थितिजन्य मनोरंजन की यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत करते हैं । 'गद्देदार कुर्सियाँ जिन पर बैठो तो मालूम हो जैसे किसी की गोद में बैठी हो ।'[2] ऊषा से कही गई अशोक की इस उक्ति में वासनामयी प्रवृत्ति का जितना स्पष्ट प्रमाण है उतना ही विनोद का भी । 'रेशमी टाई' में नवीनचन्द्र और उनके नौकर का वार्तालाप क्रोध से निकले हास्य की अच्छी सामग्री प्रस्तुत करता है । 'परीक्षा' में प्रो० केदार के जवान बनने की इच्छा में

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान- २० नवम्बर १९५५,पृ० ११
२. रामकुमार वर्मा-रेशमी टाई, प्र०सं०,पृ० १२६

अनेक हास्यपूर्ण उक्तियों को जन्म दिया है ।[1] कुमार का विनोद स्मित हास्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है । बनावी भावना की स्थिति के अनुसार हमें हुए हास्य की सृष्टि करते हैं । उनका यह हास्य जीवन के अन्तस्तल से प्रकट होता है और पानी के बुलबुले की भाँति क्षणिक न होकर चिरस्थायी हो जाता है ।

हरिकृष्ण प्रेमी मुस्लिमयुगीन इतिहास के सांस्कृतिक नाटककार हैं । उन्होंने अपने अधिकतर नाटकों में देश-प्रेम पर निछावर होने वाले राजपूतों के जातीय गर्व की झाँकी प्रस्तुत की है । यद्यपि प्रेमी जी के नाटकों में देश-प्रेम के सन्दर्भ में वीररस की प्रधानता है किन्तु यत्र-तत्र कायर पात्रों के चरित्र-चित्रण में हास्य एवं व्यंग्य की भी सृष्टि मिलती है ।

प्रेमी जी ने 'मानमंदिर' एकांकी में चित्तौड़ के महाराणा महाराणा लाखा को लक्ष्य करके ऐसे कायरलोगों पर व्यंग्य किया है जो अपने पूर्वजों के महान गौरव की आड़ में अपने कर्तव्यहीन दम्भ की दुहाई देते हैं । महाराणा लाखा की पराजय मेवाड़ के बूंदी शासक रावहेमू से हो जाती है । वे इस पराजय से अपमान का अनुभव करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक वे बूंदी पर विजय नहीं कर लेंगे तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे । लाखा की इस प्रतिज्ञा से अभयसिंह चिन्तित हो उठता है और महाराणा से इस असम्भव प्रतिज्ञा को तोड़ देने के लिए कहता है । महाराणा के प्रतिज्ञा न तोड़ने पर चारणी बूंदी का नकली दुर्ग बनवा कर उस पर विजय प्राप्त कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की सलाह देती है । महाराणा लाखा के तैयार होने पर हास्य की सृष्टि होती है —

'अभय सिंह — किन्तु ! महाराणा की प्रतिज्ञा तो पूरी होनी ही चाहिए ।

चारणी — उसका एक ही उपाय है, वह यह कि यहीं पर एक मिट्टी का नकली बूंदी का दुर्ग बनाया जाये । महाराणा उसका

१, रामकुमार वर्मा, रेशमी टाई,पृ०सं०,पृ० ३०-३१

विध्वंस अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति कर लें--महाराणा, क्या आपको मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ।

महाराणा --अच्छा , अभी तो मैं नकली दुर्ग बनवा कर उसका विध्वंस करके अपनी व्रत का पालन करूंगा । किन्तु हाड़ाओं को उनकी उद्दण्डता का दण्ड दिए बिना मेरे मन को सन्तोष नहीं होगा । सेनापति ! नकली दुर्ग बनवाने का प्रबन्ध करो ।"[१]

'रक्षाबन्धन' प्रेमी का एक ऐतिहासिक नाटक है । इसमें मेवाड़ पर बहादुरशाह के आक्रमण का वर्णन है । बहादुरशाह अपने पूर्वजों के पराजय का बदला लेना चाहता है । गुजरात में संकट के बादल छा जाते हैं । बहादुरशाह सेना में रसद देने के लिए धनदास सेठ को नियुक्त करता है । धनदास अपनी पत्नी माया से कहता है कि लड़ाई के दिनों में व्यापारी खूब लाभ उठाते हैं । पत्नी अपने पति का उपहास करती है ।

"माया --शर्म की बात है । लड़ाई छिड़ने पर तुम्हें लाभ नज़र आता है । आखिर तुम्हें नररक्त की उस भयंकर बाढ़ से क्या हाथ आयेगा ?

धनदास --तुम नहीं जानती, मैंने बहादुरशाह को रसद पहुंचाने का ठेका ले लिया है । एक-एक के दस-दस होंगे, देवी ।"[२]

माया में राष्ट्रीयता का स्वर है । साथ ही साथ उसका पति धनदास देशद्रोही है । इस प्रकार विरोधी विचारधाराओं के माध्यम से व्यंग्य की सृष्टि हुई है ।

नाटक के तीसरे अंक में बहादुरशाह और तातार खां मेवाड़ को धर्म के नाम पर विजित करना चाहते हैं । वे धर्म की रक्षा के लिए तलवार और रक्त का आश्रय लेते हैं । शाहजीद बौखिया ने व्यंग्य द्वारा ऐसे धर्मरक्षकों की अच्छी खबर ली

---

१. हरिकृष्ण प्रेमी,मान मंदिर, (अप्रकाशित)पाण्डु०, पृ० १०१-१०२

२. हरिकृष्ण प्रेमी- रक्षाबन्धन, चारहवां संस्क०, पृ० ५१

लड़कियाँ हैं । वह चिन्तित है कि कहीं इस बार भी लड़की न पैदा हो जाय । विश्व की इसी परेशानी को आलम्बन बनाकर हास्य की सृष्टि की गई है । अस्पताल में नर्स बच्चों की महत्ता बताती हुई कहती है कि बच्चे तो दौलत हैं । विश्व हैरान होकर बच्चों की अधिकता पर कहता है -" पहला बच्चा खुशी का आलम, दो बच्चे आरे की आरटी, तीन बच्चे, बस भई, चार बच्चे खुदा की पनाह, और.... पांच बच्चे, मा-शा-अ ।"[१]

माथुर जी ने पारिवारिक समस्या को उभारकर हास्य की सृष्टि की है । अपने देश में मध्यम परिवारों में सन्तानाधिक्य के कारण उनका पालन पोषण उचित ढंग से नहीं हो पाता । इसलिए एकांकीकार इस समस्या को हास्य का आलम्बन बनाकर समाज सुधार करना चाहता है ।

"खिड़की की राह" में विवाह की समस्या से हास्य की सृष्टि की गई है । प्रवीण के यहां होने वाले उत्सव में दिलीप आमन्त्रित किया जाता है । दिलीप के आने पर बन्धु नौकर उनसे बात करके निकाल देता है । थोड़ी देर बाद दिलीप उत्सव में उपस्थित होकर मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करता है ।

"ओ मेरे सपने" में माथुर जी ने सिनेमाप्रेमी नवयुवकों पर व्यंग्य किया है । नाटक में अतिरंजित व्यवहार पर हास्य प्रकट किया गया है । जो लोग अभिनेताओं का अनुकरण करते फिरते हैं उन पर भी हंसने का प्रयास किया गया है । गोपीनाथ, चूरनदीन, मगनचन्द्र आदि नवयुवक सिनेमा संसार की प्रगाढ़ निद्रा में डूबे रहते हैं । ऐसे नवयुवकों पर व्यंग्य करना ही नाटककार का उद्देश्य है ।

"भाषण" एकांकी में उन लोगों पर हंसने का प्रयास किया गया है जो सभाओं में दूसरों के लिखे हुए भाषण पढ़ते हैं और बीच-बीच में ताली बजाने की व्यवस्था पहले से ही किये रहते हैं । हरिनन्दन मोहिनी के भाषण के बारे में कहता है -" अरे भाषण बनाने में क्या लगता है । दो चार वकील मुख्तार तो

---

१. जगदीशचन्द्र माथुर - ओ मेरे सपने, पृ० १६

पहले से तय कर रखूँगा । ठीक-ठीक मौकों पर ताली बजायेंगे । तुम्हारा दिल भी बढ़ जायगा और भूले हुए वाक्य याद करने का वक्त भी मिल जायेगा ।"[1]

माथुर जी ने सामाजिक विकृतियों का पर्दाफाश करने के लिए मधुर हास्य-व्यंग्य का सहारा लिया है । उनके हास्य में अशिष्टता नहीं मिलती । लेखक ने इन नाटकों को "नटखट एकांकी" कहा है । इन नाटकों में कहीं बिल्कुल स्पष्ट कहीं संकेतों के रूप में सामाजिक वैषम्य का प्रदर्शन और उनपर व्यंग्य किया है । यत्र तत्र समाज का हास्यास्पद रूप भी चित्रित किया है ।

भगवतीचरण वर्मा का "दो कलाकार" स्मित का उदाहरण प्रस्तुत करता है । चूड़ामणि कवि और मार्तण्ड चित्रकार मुलाकीदास के किराये के मकान में रहते हैं । दोनों अपनी अपनी कला के लिए प्रसिद्ध हैं । प्रकाशक परमानन्द चूड़ामणि के पुस्तकों की कीमत नहीं देता , उसी प्रकार रामनाथ मार्तण्ड के पचास रुपये के चित्र की कीमत सात रुपये लगाता है । मार्तण्ड रामनाथ को इस अपमान के लिए पीटता है और जल्दीबाजी में उसके पिता का चित्र लेकर चला जाता है । वे दोनों अपना अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं उसी समय मकान मालिक आकर दरवाजा खुलवाकर अपना ६ महीने का बकाया किराया माँगता है । मार्तण्ड और चूड़ामणि अपने एक एक कार्य से किराया चुकता सिद्ध करते हैं । मुलाकीदास तथा कलाकारों का वार्तालाप हास्यात्मक है ।

"मुलाकीदास -- क्या खूब ! इतनी जरा-जरा से काम के रुपये ? वह तो आपने कमीशन में कर दिया था ।

मार्तण्ड--(तसवीर बनाता हुआ) हमने काम तो किया , आप बिना काम किये रुपये माँगते हैं ।

चूड़ामणि --(लिखता हुआ) और आप भी कमीशन में किराया जाने दीजिए ।

मुलाकी० -- आप लोग अजीब तरह के आदमी हैं । अच्छा यह चार

---

१. जगदीशचन्द्र माथुर - ओ मेरे सपने, पृ० ८५

महीने का किराया हुआ । अब दो महीने का किराया दीजिए और मकान खाली कीजिए ।

मुरा० — (घूमकर) संसार का एक महाकवि आपके इस चिड़ियानुमा मकान में रहा - पांचवें महीने का किराया यह क्या हुआ ।

मार्तण्ड — (घूमकर) संसार का एक श्रेष्ठ चित्रकार आपके इस जानवरों के रहने काबिल मकान में रहा, छठे महीने का किराया यह क्या हुआ ।"[1]

इसी बीच परमानन्द प्रकाशक आता है । पुस्तक का रुपया न देने पर कवि एक परमानन्द पुराण लिखना चाहता है — "झूठ, दगाबाजी, मक्कारी दुनिया के जितने छल-छन्द , नहीं बचे हैं इनसे कोई, धन्य प्रकाशक परमानन्द । इसीलिए हम लिखने बैठे लम्बा चौड़ा एक पुराण ।"[2] अपनी खिल्ली पर परमानन्द लज्जित होकर कवि के सभी रुपये चुका देता है ।

वर्मा जी ने दो कलाकारों के माध्यम से प्रकाशकों और रईसों पर स्मित हास्य प्रकट किया है । हास्य में शिष्टता और मधुरता है । उच्छृंखलता का अभाव है । यत्र-तत्र प्रयुक्त व्यंग्यशैली इसकी विशेषता है ।

लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'चक्रव्यूह' पौराणिक नाटक है । अर्जुन संशप्तकों से युद्ध करने कुरुक्षेत्र से पांच योजन दक्षिण चले जाते हैं ऐसे समय में कौरव शिविर द्वारा चक्रव्यूह की रचना की जाती है । इस कला को अर्जुन के अतिरिक्त कोई जानता नहीं है । अभिमन्यु का उसके लिए तैयार हो जाना पाण्डवों के आश्चर्य का विषय बन जाता है । नाटक के प्रथम अंक में व्यंग्य का उदाहरण मिलता है । भगवान शंकर ने जयद्रथ को विश्वविजयी होने का वर दिया था । इस पर भीम व्यंग्य करते हैं । वर और भीमसेन के वार्तालाप में व्यंग्य देखा जा सकता है —

---

१. भगवतीचरण वर्मा - दो कलाकार (नये एकांकी), पृ० ७२-७३

२. वही, पृ० ७३

"वर -शंकर ने जयद्रथ को कभी वर दिया था ?

भीमसेन- (व्यंग्य में) विश्वविजयी होने का भ्रम । हा..... हा....

हा...... पात्र और अपात्र का विचार भगवान शंकर भी भूल गये ।

युधिष्ठिर -भीमसेन । सांस रुक रही है मेरी..... और तुम्हें हंसी आ रही है ।"[1]

चक्रव्यूह के भेदन की कला के बारे में व्यक्त युधिष्ठिर और भीमसेन के वार्तालाप में स्मित हास्य का आश्रय लिया गया है ।

"भीमसेन -(युधिष्ठिर की ओर देखकर) चक्रव्यूह तोड़ने का आदेश चाहता हूं मैं ।

युधिष्ठिर -(चौंक कर) तुम भी इसकी कला जानते हो ।

भीमसेन -नहीं । रथ से रथ और हाथी से हाथी मारने की कला मैं जानता हूं ।.... हां, हां, इस कला से कोई व्यूह टूट जायेगा ।"[2]

'नया समाज' में उदयशंकर भट्ट ने सामाजिक समस्या को उभारा है । नाटक का प्रमुख पात्र मनोहर है, जो जमीन्दारी उन्मूलन हो जाने के बाद भी
अपने को जमीन्दार कहने का मिथ्यागर्व करता है। जमीन्दारी समाप्त हो जाने के बाद भी
ऐसे अधिकांश जमीन्दारों का व्यामोह टूटा नहीं । वे अब भी अपनी पुरानी स्थिति पर सोचते हैं । कभी-कभी उस सुख को वर्तमान समय में न प्राप्त कर प्रलाप भी करते हैं । भट्ट जी ने ऐसे जमीन्दारों को उपहास का माध्यम बनाया है । नाटक में यत्र-तत्र स्मित हास्य तथा वक्रोक्ति के उदाहरण मिलते हैं । मनोहर अब भी पुराने कागजातों को सुरक्षित करके रखता है । उसे अब भी जमीन्दार होने की लालसा है । उसकी पुत्री जब जमींदारी के कागजों को फेंक देने को कहती है तब मनोहर कहता है -"तू नहीं जानती मेरे बाप-दादों की सम्पत्ति है ।

---

१. लक्ष्मीनारायण मिश्र - चक्रव्यूह, प्र०सं०, पृ० १७

२. वही, पृ० १६

बुजुर्गों की धरोहर है बेटी । कल को सरकार बदल गई और उसने कहा जिसकी जो जमीन है, उन्हें लौटा दो, क्यों धीरू ? फिर ये कागज-पट्टे दस्तावेज काम आयेंगे ।"[१] इस प्रकार के व्यामोह ही हास्य के आलम्बन बनाये गये हैं । समाज में ऐसे मूर्ख जमींदारों से क्या प्रगति होती थी यह भी कल्पना का विषय है । निम्न कथोपकथन में हास्य की पुष्टि होती है –

"मनोहर- धीरू, तुम कब तहसीलदार बन रहे हो बेटा, ? जल्दी बनो ।
धीरू- मैं तो दफ्तर का क्लर्क हूँ बाबा । वह तो लाइन ही दूसरी है बाबा ।
मनोहर –जैसे गाड़ी एक लाइन से दूसरी लाइन पर जाती है वैसे ही तुम भी जा सकते हो ।
कामना– धीरूबाबू की गाड़ी छोटी लाइन की है, वह बड़ी लाइन पर कैसे चल सकेगी ।"[२]

कामना के कथनों के परिणामस्वरूप स्मित हास्य प्रकट होता है ।

'नये मेहमान' एकांकी नाटक एक निम्न मध्यमवर्ग परिवार की सामाजिक और आर्थिक विषमताओं से पीड़ित जीवन का चित्र उपस्थित करता है । विश्वनाथ और रेवती की गरीब गृहस्थी में दो अनजाने मेहमानों के एकाएक आने से पूरे परिवार में संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । दोनों मेहमान अत्यधिक प्यासे होने के कारण पानी मांगते हैं । जरा सा पानी जमीन पर गिर जाने के कारण पड़ोसी झगड़ने लगता है । विश्वनाथ भी इन मेहमानों को पहचानते नहीं । मेहमान जिन व्यक्तियों का परिचय देता है विश्वनाथ उनसे भी अपरिचित है । पूछने पर पता चलता है कि मेहमानों को विश्वनाथ वैद्य के यहाँ जाना था । सारा वातावरण परिस्थितिजन्य हास्य में बदल जाता है । नये मेहमानों के अज्ञान के कारण ही हास्य प्रकट होता है ।

---

१. उदयशंकर भट्ट- नया समाज, पृ० ३१
२. वही, पृ० ३१

विष्णु प्रभाकर का "रसोईघर में प्रजातन्त्र" एकांकी में हास्य की संयोजना की गई है। रामलाल जी घर के सबसे बड़े आदमी हैं उन्होंने रसोईघर में नई व्यवस्था कर दी। रसोईघर के पास एक डिब्बा रखवा दिया। उसमें घर के सदस्य चिटपर "खाना" का नाम लिखकर डाल देते थे। जिस व्यंजन का बहुमत होता था वही भोजन तैयार किया जाता था। इससे पहले उनके ५० सदस्यीय परिवार में "भोजन की किस्म" पर लड़ाई होती थी। रामलाल अपने घर की इस व्यवस्था को अपने मित्र श्यामनाथ से बताते हैं। उसी समय रसोइया बैंगन की पकौड़िया लाता है। रामलाल और रसोइया के वार्तालाप में क्रोधजन्य हास्य की सृष्टि होती है -

"रसोइया — जी आज बैंगन की पकौड़ियाँ बनाइन हैं।
श्यामनाथ--(आगबबूला) बैंगन की पकौड़ियाँ, क्या बकता है।
गुस्ताख बदतमीज। क्या तुझे नहीं मालूम है कि मैं बैंगन नहीं खाता।
रसोइया —हम तो जानत रहिन, सरकार मुदा बकसवा में जो परचा निकला है नहीं जानत।"[१]

वेदराज दिनेश वर्तमान नाटककारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। हिन्दी साहित्य में उन्होंने हास्यरस को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। उनके अनेक हास्य-व्यंग्य पूर्ण एकांकी पत्र-पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होते रहे हैं।

"बहुर" में दिनेश जी ने आधुनिक मानव जीवन की विकृतियों का चित्रण किया है। एकांकी का पात्र नरेश कुरूप और और कंजूस है। वह मित्रों के साथ एक होटल में जा कर भोजन करता है और स्वयं आर्डर देकर सुन्दर पदार्थ मंगाकर खाता है किन्तु पैसा चुकाते समय "बटुआ" खो जाने का बहाना करता है। वह चाहता है कि उसके मित्र ही उसका भी पैसा अदा करें। नरेश के मित्र उससे भी अधिक

---

१. विष्णु प्रभाकर - रसोई में प्रजातन्त्र (भारत एकांकी)प्र०सं०, पृ० २६०

चालाक निकलती हैं । वे अवसर पाकर नरेश को होटल में ही छोड़कर चम्पत हो जाती हैं ।[1] होटल का मैनेजर नरेश को परेशान करता है और सारा पैसा उसे अदा करना पड़ता है । नरेश के चरित्र को हास्य का आलम्बन बनाया गया है ।

'पास पड़ोस' एकांकी में अशिक्षित ग्रामीण नारियों का चित्रण किया है । ग्रामीण नारियां किस प्रकार आपस में झगड़ा करती है उसी का हास्यात्मक वर्णन इस एकांकी में हुआ है । पड़ोसियों को उन औरतों से काफी परेशानी होती है । नारियों की लड़ाई के परिणामस्वरूप हास्य की सृष्टि होती है -

"एक औरत - मेरे मरें तो क्या तेरे न मरें ।
दूसरी - मैं तेरे । मेरे क्या तेरे घर खाना खाने आते हैं, रांड़ । जो इन्हें फूटी आंखों भी नहीं देख सकती ।
पहली - आंखें फूटें तेरी, तेरे घरवालों की सतखसमी, जब देखो तब झांकती रहती है । देखती कैसे है आंखें फाड़कर जैसे खा ही जायेगी ।
दूसरी- झुलस दूंगी तेरा मुंह, जो ज्यादा बातें की तो आ लेने दो तनिक शाम को मेरे कालूराम को ।
पहली - मरा, तेरा कालूराम, मार-मार जूतों सिर न गंजा कर दूं तो कहना, उसको भी औरतों की लड़ाई में बोलने का बड़ा शौक है, कलामा कहीं का ।"[2]

'बिना बुलाए पंच' एकांकी में हीरा दूकानदार और उसके ग्राहक रामू के लेनदेन के झगड़े का हास्यात्मक चित्रण है । हीरा रामू से अपने रुपये मांगता है । रामू उधार न लेने का कसम खाता है । इस प्रकार दोनों झगड़ते हैं । हरिश्चन्द्र उन दोनों को घर ले जाकर उनका निपटारा करना चाहता है । चामाद के

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान- २८ जून १९५३ ई०, पृष्ठ ८
२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३० अक्टूबर,५६ई०, पृष्ठ १०

आ जाने से हरिश्चन्द्र पंचायत स्थगित करना चाहते हैं । हरिश्चन्द्र परेशान हो जाते हैं । उनकी मूर्खता पर उनकी पत्नी उन्हें डाँटती है और हास्य की सृष्टि होती है ।

"हरिश्चन्द्र -(गुस्से में) अरे भाई, बताओ, तुम्हारे कितने रुपये हैं? मैं अपने पास से दे दिये देता हूँ ।

रामू -अजीबात, तुम मेरी जगह रुपये कैसे दे सकते हो, मैं कोई कंगाल हूँ ।

हीरा -अरे, तो क्या मैं रुपये लेता भी कौन है ? मैं रुपये तो तुमसे लूँगा ।

रामू- अरे आ बड़ा आया रुपये लेने वाला ।

हरिश्चन्द - (सांस भरकर) अजीब मुसीबत गले पड़ी है ।

रामप्यारी- और बनो बिना बुलाए पंच ।"[१]

'चुरे फंसे मेहमान बनकर' में एक मेहमान को आश्रय बनाकर हास्य का प्रयोग किया गया है । हरीश अपने मित्र रमेश को एस०एन० सक्सेना के नाम पत्र लिखकर नैनीताल भेजता है । रमेश भूलवश शम्भूनाथ सक्सेना के यहाँ रुक जाता है । सक्सेना की पत्नी मनोरमा मेहमानों से परेशान होकर बीमार होने का बहाना करती है । रमेश उनके यहाँ रुककर अपने पैसे से सारा काम चलाता है । दव दवा, तरकारी राशन सभी अपने पैसे से लाता है । सक्सेना जी को कपड़े भी पहनने को देता है । हरीश नैनीताल पहुंचकर सुरेन्द्रनाथ सक्सेना के यहाँ रमेश को नहीं पाता है । रमेश भी अपनी मूर्खता पर पश्चाताप करता है । दूसरे दिन रमेश और हरीश की भेंट हो जाती है । हरीश उन्हें अपने साथ ले जाता है । रमेश और लक्ष्मी के वार्तालाप में हास्य प्रकट होता है ।

१, साप्ताहिक हिन्दुस्तान - १० जुलाई १९५५ ई०,पृ० १६

"लक्ष्मी - मैं भी सोचती थी कि कहीं कोई गलती जरूर हुई है। हमारे यहाँ कोई भी मेहमान दो दिन से ज्यादा ठहर पाता होगा पर यह हैं कि हफ्ता पूरा हो गया। (रमेश से) रमेश भैया जिन्दगी भर इस घटना को याद रखोगे।

रमेश- तुम इस जीवन की बात कर रही हो। मैं अगले जीवन में भी इस घटना को नहीं भूल सकता। दिन में बीस बार यह सोचता था कि अरे कहाँ मेहमान बनकर। मरा भी इस शरीर का। कभी पर मैं पानी का गिलास भी खुद भर कर नहीं पिया। यहाँ रोटी भी एक दो दिन खुद ही बनाकर खाई और दूसरों को खिलाई।"[१]

इस एकांकी में अंग्रेजी में सूचों में नाम लिखने वालों पर व्यंग्य भी प्रयुक्त है।

"जिसका काम उसी को साजे" एकांकी में भगत की मूर्खता को हास्य का आलम्बन बनाया गया है। भगत की पत्नी मुलिया को किसी ने सलाह दे दी कि चने को भूनकर खेत में बोने से अच्छी पैदावार होती है। मुलिया भगत से चने भुनवाकर बोने को बाध्य करती है। अन्त में भगत मजबूर होकर चने को भूनाकर बोता है और उसकी रक्षा के लिए एक भोपड़ी वहीं डाल कर रखवाली करने लगता है। भगत अपनी पत्नी से चने के भविष्य के बारे में कहता है जिससे उसकी मूर्खता प्रकट होती है और हास्य का मनोरंजक रूप उपस्थित होता है।

"भगत - (हंसकर) तू तो जानती ही है कि मुझे चने का साग बहुत अच्छा लगता है। पहले कुछ दिन साग खायेंगे फिर होले भूनकर खायेंगे। अनाज बनने पर कुछ दाल, बेसन, बनवाकर रख लेंगे। बाकी बेचकर पैसे खरे कर लेंगे।"[२]

---

१. प्रतिनिधि हास्य एकांकी, पृ० १९८

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान- ४ सितम्बर १९५५, पृष्ठ १०

हास्य की दृष्टि से विनेश जी के एकांकी श्रेष्ठ हैं। इनके एकांकियों में कथावस्तु और चरित्रचित्रण के माध्यम से उपलक्षित और विहसित का अच्छा विकास हुआ है। विनेश जी ने समाज के उपेक्षित पात्रों तथा कथावस्तु को हास्य का आलम्बन बनाया। नारीजीवन की कमजोरियों को उभारना उनके हास्य का आधार है। कृत्रिम ढंग से हँसाने की चेष्टा नहीं की गई है। पात्रों के कार्यकलाप से हास्य का उद्रेक होता है।

भगवत चक्रवर्ती का "नाक में बाल" एक प्रहसन है। इसमें एक सेठ को आलम्बन बनाकर हास्य की सृष्टि की गई है। सेठ जी के सिर में दर्द है। सेठानी वैद्य बुलाना चाहती है किन्तु वह कंजूस सेठ फीस के डर से वैद्य को नहीं बुलवाना चाहता। सेठानी जबर्दस्ती वैद्य, डाक्टर बुलाकर इलाज कराती है किन्तु आराम नहीं होता। पुरोहित जी ग्रहों की अनिष्ट स्थिति बताकर भागवत का अखण्ड पाठ कराने की सलाह देते हैं। सेठ जी पाँच सौ रुपये से अधिक खर्च कर देते हैं लेकिन आराम नहीं होता। एक दिन एक नाई आकर सेठ जी को सुँघनी देता है। छींक से नाक में एक बाल दिखाई देता है। नाई उस बाल को काट देता है और सेठ जी को आराम हो जाता है। सेठ जी के कार्पण्यदोष को आलम्बन बनाकर विहसित की सृष्टि की गई है। सेठ जी सर दर्द के दिनों में उपवास करते हैं। उपवास में उनके खाने की वस्तुएं हास्यात्मक हैं।

"स्वामी -(सेठानी से) माता जी, आजकल क्या कुछ खाते हैं सेठ जी ?
सेठ -- कुछ भी तो नहीं खाया जाता...... अच्छा, इन्हीं से
पूछ लो ।
सेठानी -रोज सबेरे दो कचौड़ी , एक छटाँक हलवा बादाम, एकाध
मालपुआ मलाई का और सेर भर दूध ।
स्वामी -हे भगवान ! फिर तो सचमुच सेठ जी आजकल उपवास ही
करते होंगे ।"[1]

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान - १६ अक्टूबर, १९५५ ई०, पृ० १०

चतुर्वेदी जी ने हास्य के साथ व्यंग्य का भी प्रयोग किया है ।

श्रीमती उर्मिला सब्बरवाल के "सस्ता सौदा" एकांकी में मोहन और उसकी पत्नी राधा के वार्तालाप में हास्य की सृष्टि हुई है । मोहन बाजार जाकर सब्जी और फल लाता है जिसमें पैसे अधिक खर्च हो जाते हैं । घर लौटने पर राधा फटकारने लगती है । दूसरे दिन वह स्वयं फल और सब्जी खरीदने जाती है और हर वस्तु सस्ता खरीदती है । घर पहुंचकर मोहन को सब्जी काटने की आज्ञा देकर वह स्वयं चूल्हा जलाने लगती है । मोहन तथा राधा के वार्तालाप के फलस्वरूप विहसित की अच्छी सृष्टि होती है ।

"राधा --क्या कहते हैं आप ?

मोहन --यही कि यह भीतर से बिल्कुल सड़ा हुआ है । कीड़े फिर रहे हैं ।

राधा -- दूसरी चीरिएगा । हाय राम मैं तो लुट गई ।

मोहन (बैंगन चीरता है) इसका भी यही हाल है देवी जी, यह जरा आबादी कम है और सचपूछो तो मुझे आपके इन करेलों का भी यही हाल लगता है ।"[1]

सब्बरवाल के इस एकांकी में व्यंग्य का भी समावेश है । उन्होंने एकांकी के अतिरिक्त कहानियों में भी हास्य-व्यंग्य का सफल प्रयोग किया है । सब्बरवाल की कृतियों में परिहास का उदाहरण अधिक मिलता है ।

मोहन राकेश ने "कर्फ्यू " एकांकी में लाहौर के कर्फ्यू के माध्यम से हास्य की अवतारणा की है । शहर में दंगा हो जाने के कारण कर्फ्यू लगाया जा रहा था । अपराह्ण दो बजे से लगने वाले कर्फ्यू के लिए मुनादी हो रही थी । मुनादी के शोरगुल को दंगा समझ कर शहर के लोग इधर उधर भागने लगे । इसी भाग दौड़ को हास्य का माध्यम बनाकर राकेश जी ने स्वस्थ हास्य प्रकट किया है ।

---

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान - २३ अक्टूबर,१९५५,पृ० १४

हास्य की दृष्टि से सन्यासी तथा मियाँजी का कथन मनोरंजक है ।

'सन्यासी —इधर लोग क्यों इस तरह भाग रहे हैं ।
मियाँ — कुछ ठीक मालूम नहीं ।
सन्यासी —आप भी तो भाग रहे हैं ।
मिया —बाबा, और सब भागने वाले कोई बेवकूफ थोड़े ही हैं ?
कोई डरने की ही बात होगी । (तेजी से जाने लगता है।)'[1]

मोहन राकेश नई पीढ़ी के हास्यप्रिय नाटककारों में अग्रणी हैं । उनके नाटकों में हास्य का स्मित रूप ही चित्रित हुआ है । वे एक सर्जनशील नाटककार हैं । उनका हास्य संयत और प्रभावकारी है । हास्य व्यंग्य सम्बन्धी रचनाओं की उनसे पर्याप्त आशा है ।

जयनाथ नलिन भी हास्यनाट्यकार की दृष्टि से वर्तमान समय के बहुचर्चित एकांकी लेखक हैं । उन्होंने 'संवेदना सदन' एकांकी में हास्य-व्यंग्य एवं वाक् वैदग्ध्य का उत्कृष्ट निदर्शन किया है । कोमल संवेदना - सदन के प्रिंसिपल तथा करुणा वाइस-प्रिंसिपल हैं । उक्त सदन में रोने चिल्लाने की ट्रेनिंग दी जाती है । यहाँ से लोग मृत व्यक्ति के सम्मान में संवेदना व्यक्त करने के लिए किराये पर इसके सदस्यों को ले जाते हैं । प्रो० प्राण प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं वे अपने पिता की मृत्यु के पहले ही संवेदना व्यक्त करने वाले सदस्यों को बुक कराना चाहते हैं । कोमल 'ए' क्लास की टीम का दाम बताता है जिसमें सब कलाकार रहते हैं । प्रत्येक कलाकार सौ रुपये में पांच घण्टे संवेदना व्यक्त करते हैं । प्रो० प्राण सदन के वाइस-प्रिंसिपल से कुछ रियायत करने के लिए कहता है । प्राण तथा कोमल का वार्तालाप व्यंग्यात्मक हास्य की अभिव्यक्ति करता है ।

'प्राण —हम तो आपके परमानेन्ट ग्राहक हैं, कुछ कन्सेशन दीजिए न ।
अपने सभी सम्बन्धियों में आपकी ही टीम....... ।

---

१. प्रतिनिधि हास्य एकांकी (संपा० श्रीकृष्ण), पृ० २३३

कोमल — हमारी हार्दिक कामना है कि हम आपकी जल्दी-जल्दी
सेवा कर सकें । पर कन्सेशन के लिए आप विवश न कीजिए[1]।"

नलिन जी ने 'संवेदना-सदन' के माध्यम से फैशन परस्त लोगों पर व्यंग्य किया है । हमारे देश में ऐसे अनेक परिवार हैं जो किसी व्यक्ति की मृत्यु पर यूरोपीय देशों की तरह संवेदना प्रकट करने वाले ट्रेन्ड व्यक्तियों को किराये पर आमन्त्रित करते हैं । ऐसे ही लोगों को माध्यम बनाकर नलिन जी ने हास्य-व्यंग्य की अभिव्यंजना की है । इन्होंने हास्य का मनोवैज्ञानिक प्रयोग सफलता-पूर्वक किया है ।

शैलेश मटियानी का 'गांव का पोस्टमैन' एकांकी अतिहास का सफल प्रयोग है । इस नाटक में ग्रामीण डाकिया का चित्रण है । गांव का पोस्टमैन घर-घर जाकर डाक बांटता है और कभी पत्रों को पढ़कर समझाता भी है । कहीं कहीं मूर्खों से पाला पड़ जाता है तो वह परेशान भी हो जाता है । इन सभी दुर्दशाओं का हास्यात्मक वर्णन ही एकांकी का प्रतिपाद्य विषय है । ग्रामीण क्षेत्र के पोस्टमैनों की सबसे बड़ी कठिनाई पत्रों पर लिखित पते की होती है । ग्रामीणपत्रों पर लिखे पते का नमूना निम्न है — मौजा सुल्तान पुर पोस्ट आफिस डाकखाना खतौली मुजफ्फरनगर जिले में ..... श्रीमान चौधरी बजरंग बली परसाद..... से ही श्रीमान् बजरंगबली परसाद बेटा बहुरंगबली परसाद सिंह अकर-बकर वाले, गांव के पूरब की ओर जाने वाली सड़िया के पास वाले, पीपल के बड़े पेड़ के सामने वाले मकान में..... इन्हीं को ठीक-ठीक मिले..... मौजा-सुल्तान(पुर) वाले श्रीमान् बजरंगबली परसाद ।"[2]

पोस्टमैन बड़ी कठिनाई से बजरंगबलीप्रसाद का पत्र लेकर फरीसिंह के

---

१. प्रतिनिधि हास्य एकांकी, पृ० १४६
२. वही, पृ० ३२६

घर चालीस रुपये का मनीआर्डर देने जाता है । दशमलव प्रणाली में लिखित रुपये को बार बार समझ कर फतेसिंह झगड़ते हैं । अन्त में पटवारी उन्हें समझा कर मनीआर्डर दिला देता है । पुन: पोस्टमैन सुजान सिंह के घर जाकर उनकी पत्नी को पत्र देता है । पत्नी रामप्यारी उसे पढ़ देने का निवेदन करती है । पोस्टमैन के पत्र पढ़ने पर रामप्यारी गाली देने लगती है । पोस्टमैन और रामप्यारी की वार्ता हास्यपरक है -

"पोस्टमैन -(अनिच्छापूर्वक पढ़ते हुए) लिखा है "चिट्ठीलिखी शौग की,गाम फूलपुर से लिखी ठाकुर सुमिरन सिंह ने सुलतानपुर वाले ठाकुर सुजान सिंह और अपनी बहन सिरीमती रामप्यारी देवी को, कि आगे बड़े दु:ख के साथ - साथ यह समाचार बड़ी मजबूरी से और भाग की कमनसीबी से लिखा, कि हमारे पिता श्री ठाकुर परम पूज रामखिलावन सिंह का स्वर्गवास हो गया..... ।

रामप्यारी -(एकदम घूंघट हटाते हुए) अरे कलमुंहे, सुरगबास हो जावे तेरे बाप का ।........ अरे मेरे बप्पा ने तेरा क्या बिगाड़ा रे नासपीटे ।(माथा ठोंकते हुए).... अरे पिछले बरस मैं गई थी तो अच्छे भले थे रे, मेरे बप्पा.... हाय री दैया, ये क्या बजर गिरा दिया रे इस सत्यनाशी पोस्टमैन ने मेरे सिर पर ।"[१]

भटियानी जी ने ग्रामीण सभ्यता का चित्रण किया है । ग्रामीण जीवन में पोस्टमैन किस तरह अपना कार्य संचालन करता है । इसी परिस्थिति को हास्य के माध्यम से चित्रित किया है । शैली के हास्य में मृदुता है । परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करने में उनकी लेखनी समर्थ है ।

स्वदेशकुमार का 'शादी की बात' लघु व्यंग्यपूर्ण एकांकी नाटक है । इसमें शादी के अवसर पर अपनी भावीपत्नी को देखने वाले लोगों पर व्यंग्य किया

१, प्रतिनिधि हास्य एकांकी- पृ० २३०

गया है । प्रभातचन्द्र मध्यवर्ग और उच्चवर्ग के बीच का व्यक्ति है । वह अपने पुत्र चांद की शादी के साक्षात्कार के लिए कुछ प्रश्न लिखा देता है । चांद चकोरी से उन्हीं प्रश्नों को पूंछता है । चकोरी सभी प्रश्नों का उत्तर देकर स्वयं प्रश्न करने लगती है जिसमें हास्य की प्रधानता है ।

"चकोरी – आप क्या करते हैं,

चांद – कविता ।

चकोरी – कविता तो बेकार के लोग किया करते हैं । आप कहीं नौकरी भी करते हैं ?

चांद-मुझे क्या गर्ज पड़ी है नौकरी करने की, हम तो घर के रईस हैं ।

चकोरी – घर के रईस । फिर तो आपकी काफी बड़ी जायदाद होगी ।

चांद –सब अपना ही है । जिस किराये के मकान में रहते हैं उसे अपना ही समझते हैं । सरकारी बस में सैर करते हैं क्योंकि सरकार अपनी ही है । दोस्तों के जिम्मे मुफ्त काफी पीते हैं, क्योंकि दोस्त भी अपने हैं ।"[१]

स्वदेश कुमार जी ने ऐसे परिवार की व्यवस्था पर कटु व्यंग्य किया है । ऐसे परिवार अपने आवारा लड़के की शादी करने में भी "इन्ट्रोडक्शन" लेना आवश्यक समझते हैं । एकांकीकार ने ऐसे लोगों पर व्यंग्य का तीखा प्रयोग किया है । हास्य में सरलता है । वर्तमान हास्यकारों में स्वदेश कुमार के हास्य में मधुरता है । उनका हास्य शब्दगत कम भावगत अधिक है । हास्य-व्यंग्य भावानुकूल है ।

निष्कर्ष –

आधुनिक नाटकों में वर्तमान परिस्थितियों का चित्रण अधिक मिलता है । नाटकों में सामाजिक विकृतियों को उभारा गया है । शिक्षा, फैशन, सिनेमा आदि

---

१. प्रतिनिधि हास्य एकांकी, पृ० ३६०-३६१

विषयों का आश्रय लेकर हास्य का मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया गया है । स्वतन्त्रता पूर्व के नाटकों में राष्ट्रीयता का स्वर अधिक है जिसके माध्यम से हास्य-व्यंग्य की सफल अभिव्यक्ति की गई है । १९५७ ई० के पश्चात के नाटकों में दैनिक विकृतियों का आश्रय लेकर पाश्चात्य शामेडी के अनुसार हास्य-व्यंग्य का प्रयोग किया गया है । परन्तु विवेचन में भी नवीनता का आधार लेकर मनोवैज्ञानिक ढंग से हास्य की पुष्टि की गई है । इस काल में हास्य का एक सार्वभौमिक रूप सामने प्रस्तुत किया गया । इसीलिए इस काल को हास्य-व्यंग्य का स्वर्णयुग माना जाता है ।

सप्तम अध्याय

हिन्दी रेडियो नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(रंगनाटक और ध्वनिरूपक में अन्तर, एकांकी और ध्वनिरूपक, रेडियो नाटकों का प्रारम्भ, हिन्दी में रेडियो नाटक का आरम्भ, ध्वनि-नाटकों में हास्य-व्यंग्य का विकास ।)

अध्याय - ८

हिन्दी रेडियो नाटकों में हास्य और व्यंग्य

रेडियो रूपक हिन्दी-साहित्य की नवीन उपलब्धि है। प्राचीनकाल में नाटकों के दो भेद निरूपित किये गये थे — दृश्य और श्रव्य। दृश्यरूपकों को देखने का अवसर यदा कदा मिलता था किन्तु श्रव्य नाटकों की कल्पना अभी रही। आधुनिक युग में विज्ञान के उत्तरोत्तर विकास के साथ ही साथ यह परिकल्पना रेडियो नाटकों के उद्भूत हो जाने पर सार्थक हुई। युग परिवर्तन के साथ ही साथ साहित्य के स्वरूप विधान भी परिवर्तित होते रहते हैं। युग के साथ ही साथ नाटक मानव जीवन के लिए और सुलभ वस्तु हो गई। प्राचीनकाल में लोग नाटक के पास जाकर अभिनय देखते थे वर्तमान समय में नाटक रेडियो के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के पास पहुंचकर अपनी कला को दिखलाता है। "आज दर्शक केवल श्रोता हो गया है, और रेडियो सम्पन्न प्रत्येक घर नाटक का प्रेक्षागृह। साधनों एवं माध्यम परिवर्तन के साथ नाटक का कला विधान भी पूर्णतः परिवर्तित हो गया है।"[1] रेडियो नाटक में ध्वनि ही प्रमुख साधन है। रंगमंच पर नृत्य एवं आंगिक अभिनय द्वारा रस की सृष्टि की जाती है। रेडियो नाटकों में इन साधनों का अभाव है। रेडियोरूपक देश, काल और स्थान (संकलनत्रय) के बन्धनों से भी मुक्त होता है। रेडियो नाटकों में स्वगतकथन, स्वप्न सम्भाषण स्वाभाविकप्रतीत होते हैं जबकि रंगमंचीय नाटकों में ये अस्वाभाविक से लगते हैं। हार्दिकभाव स्वगत कथनों द्वारा सुस्पष्ट रूप से व्यक्त किये जा सकते हैं।

रंग-नाटक और ध्वनिरूपक में अन्तर

रेडियो-रूपक रंगमंचीय नाटकों से भिन्न रचना है। दोनों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। दोनों की समानता केवल लेखन-शैली मात्र की है। दोनों

---

१. डॉ० सिद्धनाथकुमार - हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास, पृ० २७७, सं० १९[illegible]

प्रकार के नाटकों में साम्य कम, वैषम्य अधिक है । यह कहना समीचीन है कि "रेडियो नाटक और रंग नाटक में नाटकत्व को छोड़कर कोई भी समानता नहीं है ।"[1] दोनों प्रकार के नाटकों का अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है । रेडियो रूपक को लघुनाटक कहा जाता है । इनका आकार प्रायः एकांकी से छोटा होता है । लेकिन रामगोपाल सिंह चौहान ने "लघु नाटक" नाम से एक स्वतंत्र नाट्य रूप की परिकल्पना की है । लघुनाटक नाम से एक स्वतंत्र विधि का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है –"ऐसे नाटक जो एक अंक के होते हुए भी जीवन की किसी केन्द्रीय समस्या के चित्रण द्वारा पूर्णजीवन पर प्रकाश डालते हों एकांकी से भिन्न माने जायेंगे । यद्यपि एक अंकीय होने से एकांकी से इनका साम्य है, क्योंकि एकांकी में जीवन का खण्डचित्र प्रस्तुत किया जाता है ।"[2] लघु नाटक नाम से स्वतंत्र नाट्य रूप का कोई औचित्य नहीं है । एकांकी स्वयं एक लघु नाटक है । रेडियो नाटक रंगमंचीय बन्धनों से मुक्त है । इसलिए उसके सन्दर्भ में अंकीय नाटकों का उल्लेख अनावश्यक है । रेडियो नाटक में पशुपक्षी भी पात्र बन कर आ सकते हैं मानवेतर प्रकृति भी सजीव रूप ग्रहण कर सकती है । गतिशील दृश्यों का भी चित्रण किया जा सकता है । किसी स्थान के किसी भी प्रकार के दृश्य का अनुभव इससे कराया जा सकता है । स्वर्ग-नरक, पर्वत-सागर, नदी-निर्झर, युद्ध-मरण आदि के दृश्य भी आसानी से उपस्थित किये जा सकते हैं । रेडियो रूपक एक सांकेतिक कला है । कुछ शब्दों, ध्वनिप्रभावों अथवा संगीत के माध्यम से संकेत किये जाते हैं और श्रोता अपनी कल्पना में नाटक के आनन्द का अनुभव करता है । इसमें पात्रों की नग्नता का चित्रण भी आसानी से हो जाता है । रंगमंच पर प्रतीकात्मक पात्रों को उपस्थित करना कठिन होता है किन्तु रेडियो में ये पात्र बड़े ही सजीव प्रतीत होते हैं । रंगमंचीय एकांकी की अपेक्षा रेडियो एकांकी एक स्वतंत्र रचना है । रेडियो नाटकों में मनोवैज्ञानिक चित्रण की सुविधा होती है ।

---

१. विष्णु प्रभाकर – प्रकाश और परछाईं, पृ० ४, प्रथम संस्क०

२. रामगोपाल सिंह चौहान – हिन्दी नाटक, सिद्धान्त और समीक्षा, पृ० १२[illegible]

रंगमंचीय नाटक और रेडियो रूपक में शिल्पगत बड़ा अन्तर है । रंग-मंचीय नाटक दृश्य और श्रव्य दोनों प्रकार के होते हैं उसे आंगिक वाचिक आदि ढंगों से अभिनीत किया जाता है । उसमें वातावरण और परिस्थिति को सूचित करने वाले साधन सम्मिलित रहते हैं । पात्रों के व्यक्तित्व के अनुकूल परिधान, अलंकरण, भावभंगिमा आदि की आवश्यकता पड़ती है । रेडियोरूपक प्रकृति: इनसे मुक्त एवं स्वतंत्र रचना है । रेडियो रूपक के पात्र अपने व्यक्तित्व की सूचना शब्दों और ध्वनिप्रभावों से कर देते हैं । रेडियो रूपक का रंगमंच उसका शब्द होता है । नाटकों में संकलन त्रय की अपेक्षा होती है किन्तु रेडियो रूपकों में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है । इसमें नाटककार एक ही काल में विश्वभ्रमण कर सकता है । केवल श्रोताओं को प्रभावित करने के लिए 'प्रभावान्विति' की अवश्य आवश्यकता रहती है । रंगमंचों पर दृश्य परिवर्तन में भी अनेक असुविधाएं होती हैं किन्तु रेडियो नाटक का दृश्यान्तर वाद्य संगीत, ध्वनिप्रभाव अथवा शान्ति के माध्यम से आसानी से किया जाता है । इस दृष्टि से रेडियो नाट्य-प्रदर्शन का सबसे सरलतम साधन है । एडवर्ड सैकविल वैस्ट ने तो कहा है कि अपनी [illegible] नमनीयता और कलात्मक सांकेतिकता की शक्ति के कारण यह रंगमंच और सिनेमा-पट से भी अधिक नाटकीयता की सृष्टि कर सकता है ।[1] दृश्य साधनों से मुक्त होने के कारण रेडियोरूपक रंगमंचीय नाट्य की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है । मानव कल्पना की भांति ही यह स्वच्छन्द है । इसके आयाम अपरिमित हैं । यही कारण है कि यह अधिक भाव एवं कल्पना प्रधान होता है । यह काव्य के सन्निकट अधिक है । इसमें भावमयता को उच्च धरातल पर पहुंचाने की क्षमता है ।

एकांकी और ध्वनि रूपक

रेडियोरूपक प्राय: संक्षिप्त होता है । इसकी रचना प्राय: पन्द्रह मिनट से लेकर एक घण्टे तक के लिए होती है । संक्षिप्त रूपरेखा के कारण इसे एकांकी रूपक कहा जाता है । डॉ० रामकुमार वर्मा रंगमंच पर अभिनीत होने वाले

१, देखिये --डॉ० गोविन्ददास-नाट्यकला-मीमांसा, पृ० १२२, द्वितीय संस्करण

एकांकी नाटकों में और रेडियो द्वारा प्रस्तुत एकांकी नाटकों में बड़ा अन्तर मानते हैं। डॉ० रामचरण महेन्द्र ने रेडियो नाटकों को ध्वनि एकांकी माना है। रेडियो नाटक में आवश्यकतानुसार छोटे बड़े कई दृश्य हो सकते हैं। बड़े बड़े नाटकों को भी रेडियो नाटक बनाकर प्रसारित किया जाता है। बड़े बड़े उपन्यासों को भी रूपान्तरित करके रेडियो से प्रसारित किया जाता है। इसलिए रेडियो नाटकों को एकांकी नहीं कहा जा सकता। किन्तु हिन्दी में लघु एकांकी का लेखन पहले से ही प्रचलित है अतः दोनों को अलग अलग विवेचित करना असम्भव है। हिन्दी में अपने मूलरूप में प्रकाशित रेडियो नाटक बहुत कम हैं प्रायः अधिकांश रेडियो नाटक रंगमंचीय संकेतों के साथ ही प्रकाशित हुए हैं। रेडियोरूपक पूर्णतः श्रव्य है। ध्वनि ही इसकी आधारशिला है। ध्वनि भावाभिव्यक्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन है। रेडियो में ध्वनि का उपयोग तीन रूपों में किया जाता है भाषा, ध्वनि प्रभाव और संगीत। ये ही तीनों साधन रेडियो के "महास्तम्भ" कहे जाते हैं।[1] रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटक अनेक प्रकार के होते हैं। विषय की दृष्टि से सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं। शिल्प की दृष्टि से रेडियोरूपक के सात मुख्यभेद – नाटक, रूपान्तर, फैन्टेसी, मोनोलाग, संगीतरूपक, झलकियां और रूपक-होते हैं।

<u>रेडियो नाटकों का प्रारम्भ</u>

रेडियो नाटकों का जन्म रेडियो के आविष्कार के साथ हुआ। इस सम्बन्ध में मतभेद है। इंग्लैण्ड में प्रथम नाटक २ सितम्बर १९२२ ई० को प्रसारित हुआ था अथवा १६ फरवरी १९२३ को। इसके प्रथम प्रसारण का श्रेय प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के 'जूलियस सीजर' के एक दृश्य को प्राप्त है। उसी के साथ शेक्सपियर के अन्य दो नाटकों के दृश्य भी प्रसारित हुए थे। "ट्वेल्फ्थनाइट" नाटक २८ मई १९२३ को अपने पूर्णरूप से प्रसारित हुआ था। उस समय दृश्यान्तर

---

१. देखिये – ए गाइड टु रेडियो – कैम्पबेल और अन्य, पृ० २६५, तृतीय संस्क०

में जनसंगीत का प्रयोग होता था। विशेष रूप से रेडियो के लिए लिखा पहला नाटक रिचर्ड ह्यूजेस का "डेन्जर" था जो जनवरी १९२४ ई० में प्रसारित हुआ था रेडियो के लिए रूपान्तरित पहला उपन्यास किंग्सले का "वेस्टवर्ड हो" अप्रैल १९२५ में प्रसारित हुआ था। प्रारम्भिक प्रयोगों के बाद लोगों को यह अनुभव हो सका कि रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक से बिल्कुल भिन्न है और उसका अपना स्वतंत्र विधान है।

हिन्दी में रेडियो नाटक का प्रारम्भ

रेडियो द्वारा रूपकों के प्रसारण की व्यवस्था इंग्लैण्ड की अपेक्षा भारत में कुछ विलम्ब से हुई। यहाँ विधिवत् प्रसारण का प्रारम्भ २३ जुलाई १९२७ से हुआ जब लार्ड इर्विन ने इण्डियन ब्राडकास्टिंग कम्पनी के बम्बई स्टेशन का उद्घाटन किया। अप्रैल १९३० ई० में भारत सरकार ने प्रसारण का कार्य-भार अपने हाथ में ले लिया और इस विभाग को इंडियन स्टेट ब्राडकास्टिंग सर्विस कहा गया। इसी को ८ जून १९३६ में "आल इण्डिया रेडियो" नाम दिया गया यही आजकल 'आकाशवाणी' है।

हिन्दी में रेडियो नाटकों का प्रारम्भ हुए बहुत कम दिन हुए। सन् १९३६ ई० में आल इंडिया रेडियो दिल्ली से रंगमंच के लिए लिखित एक बंगला नाटक का अनुवाद प्रसारित किया गया था।[1] किन्तु भारत में रंगमंचीय कला से रेडियोलेखक चिरकाल तक मुक्त न हो सके। उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि रेडियो कला और नाट्यकला में अन्तर है। यही स्थिति बहुत बाद तक बनी रही। रेडियो से सम्बद्ध लेखक रमाप्रसाद पहाड़ी ने १९४७ का अपना संस्मरण इन पंक्तियों में रखा है —" मुझे याद है कि एक लेखक से मैंने रेडियो के लिए नाटक लिखने का अनुरोध किया था तो उनके द्वारा लिखित नाटक में कई बार परदा खुलता है।"[2]

---

१. कृष्णा चैतन्य- इन प्राब्लम्स आफ रेडियो ड्रामा-पृ० ४३, प्रथम संस्क०
२. लोकेश पाण्डे-सुनी सुनाई - (भूमिका), पृ० १, प्रथम संस्क०

आकाशवाणी से प्रसारित होने वाला हिन्दी का पहला नाटक आचार्य चतुरसेन-शास्त्री का 'राधाकृष्ण' कहा जाता है । इस प्रकार अनेक प्रयासों के होते हुए भी स्वतंत्रता से पूर्व रेडियोरूपकों का पर्याप्त विकास न हो सका । इसका कारण स्पष्ट है कि उन दिनों हिन्दी के जानकार कम थे । आकाशवाणी में उर्दू का बोलबाला था । आकाशवाणी से हिन्दी के नाटक कम ही प्रसारित किये जाते थे इसलिए रेडियोशिल्प को ध्यान में रखते हुए हिन्दी में कम ही नाटक लिखे गये । हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में जो नाटककार प्रसिद्ध थे उनके ही कुछ एकांकी कभी-कभी आकाशवाणी से प्रसारित होते थे । उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट एवं रामकुमार वर्मा ने इस क्षेत्र में विशेष सहयोग प्रदान किया है । अश्क जी ने रेडियो के लिए अनेक नाटकों की रचना की । जब वे रेडियो से सम्बन्धित थे उन्होंने 'तुलसीदास' 'कबीर', 'मर्यादापुरुषोत्तम राम', 'उर्मिला', 'चांद', 'तोलिये' आदि अनेक रेडियो रूपक लिखे ।

उदयशंकर भट्ट भी आकाशवाणी से सम्बन्धित रहे हैं । उन्होंने नाटक के शिल्प का गम्भीर अध्ययन किया है । 'साहित्य का स्वर' पुस्तक में इनके 'रेडियो नाटक', एवं 'रेडियो नाटक और उसकी उपलब्धि' निबन्ध रेडियो रूपक के शिल्प से सम्बन्धित है । रेडियो के लिए भट्ट जी ने स्वतन्त्र नाटकों की रचना की है । वे दिल्ली आकाशवाणी में परामर्शदाता थे । उन्होंने अनुभव किया है कि जो कलाकार आंगिक अभिनय को प्रधानता देते हैं वे रेडियो के लिए प्राय: असफल हो जाते हैं । इसीलिए उन्होंने 'आदिमयुग', 'कुमारसम्भव', 'आत्मदान', 'जवानी' आदि रेडियो-रूपकों में आंगिक अभिव्यक्ति को कम करके ध्वनि का समावेश किया । रामकुमार वर्मा का ध्यान रंगमंचीय एकांकी की ओर अधिक रहा । उनके अधिकांश नाटक रेडियो से प्रसारित होते रहे हैं । 'कौमुदी' महोत्सव, औरंगजेब की आखिरी रात', 'कलंकरेखा' आदि उनके रेडियो एकांकी हैं । इन नाटकों में यत्र तत्र हास्य की झलक मिल जाती है । अश्क के नाटकों में हास्य अधिक मिलता है ।

आकाशवाणी केन्द्र दिल्ली से भगवतीचरण वर्मा के हास्यप्रधान नाटक 'सबसे बड़ा आदमी' एवं 'दोकलाकार' प्रसारित हो चुके हैं । विष्णु प्रभाकर का

'कान्फ्रेंसिंग बनो' तथा उदयशंकर भट्ट का 'दस हजार' आदि दिल्ली केन्द्र से प्रसारित हो चुके हैं जिनमें 'दफ्तर जाते समय' एवं 'अखबारी विज्ञापन' प्रमुख हैं। दफ्तर जाते समय एक बाबू जी कंघा न मिलने पर घर में शोर मचाने लगते हैं। अन्त में जब कंघा मिल जाता है तो उन्हें पता चलता है कि आज रविवार की छुट्टी है। 'अखबारी विज्ञापन' में एक सज्जन नौकरी पाने के लिए विज्ञापन देते हैं, प पोस्टबाक्स नम्बर गलत हो जाने पर उनका विज्ञापन विवाह योग्य लड़कियों के अभिभावक के पास पहुंच जाता है। अभिभावक अपनी लड़कियों का चित्र उनके पास भेज देता है। उनकी पत्नी को जब पता चलता है कि उसका पति दूसरा विवाह करने जा रहा है तो वह घर में हड़ताल कर देती है। अन्त में अखबार का मैनेजर आकर भ्रम का निवारण करता है।

ध्वनि नाटकों में हास्य-व्यंग्य का विकास

हिन्दी के कतिपय नाटककारों ने ध्वनिरूपकों के शिल्प का ध्यान रखते हुए नाटकों की रचना की है। हिन्दी में रंगमंच का अभाव रहा है। अतः सफल नाटकों के लिए अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम आवश्यक है। इसके परिणाम स्वरूप रेडियो ने अनेक लेखकों को ध्वनिरूपक लिखने की प्रेरणा दी है। प्रत्येक रेडियो स्टेशन से प्रतिसप्ताह कुछ नाटक प्रसारित किये जाते हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए इधर नियमित अनेक ध्वनि एकांकी लिखे जा रहे हैं।

आल इंडिया रेडियो के प्रारम्भिक नाटककारों में कृष्णचन्द्र का नाम उल्लेखनीय है। इनके साथ ही सआदत हसन मन्टो और राजेन्द्र सिंह बेदी ने रेडियो के लिए अनेक नाटकों की रचना की। मन्टो के नाटक मनोवैज्ञानिक हैं। बेदी के नाटकों में हास्य-व्यंग्य का मधुर पुट मिलता है। 'कार की शादी', 'नाक की भीख' 'कैद' आदि उनके हास्यप्रधान नाटक हैं।

कृष्णचन्द्र के प्रसिद्ध नाटक — 'बेकारी', 'कयामत', 'एक रुपया एक फूल', हास्य प्रधान नाटक हैं। 'बेकारी' इनका प्रथम नाटक है जो अक्तूबर १९३७ में लाहौर रेडियो से प्रसारित हुआ था। 'कयामत' सितम्बर १९३८ में प्रसारित हुआ तथा 'दरवाजा' अगस्त १९४० में दिल्ली केन्द्र से प्रसारित हुआ 'एक रुपया

एक कुत्ते दिल्ली रेडियोकेन्द्र के नाटकोंत्सव का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। उनके नाटकों में "सराय के बाहर" "बेकारी", "चूहे की मौत" आदि सामाजिक यथार्थ पर आधारित व्यंग्यप्रधान नाटक हैं। इनमें सामाजिकता पर सरस व्यंग्य मिलता है। "क़यामत" कृष्णचन्द्र की मौलिक कृति नहीं है। इसके सम्बन्ध में स्वयं लेखक ने लिखा है -"इसका प्लाट और एक हद तक सम्वाद भी बर्नार्ड शॉ की एक पैरोडी से लिया गया है क्योंकि जिस गहरे और सच्चे व्यंग्य को उसने अपने नाटक में व्यक्त किया है वह हमारे देश के वातावरण पर भी पूर्णतया लागू होता है।"[1] "सराय के बाहर" में भिखारिन की लड़की मुन्नी सराय में अपना स्त्रीत्व बेचकर भी गर्व कर रही है। ऐसी स्त्रियों पर व्यंग्य किया गया है। "चूहे की मौत" भी व्यंग्यप्रधान नाटक है। बीमार चूहे भी चुहिया को देखकर खड़े हो जाते हैं। स्वास्थ्य लाभ कर लेते हैं।

चन्द्रकिशोर जैन स्वतन्त्रतापूर्व के प्रमुख नाटककारों में हैं। इन्होंने रेडियो के लिए नाटकों की रचना १९४२ में प्रारम्भ की। नाट्यरचना के पूर्व इन्होंने अंग्रेजी और बंगला नाट्यशिल्प का गम्भीर अध्ययन किया। इनका "इन्साफ" नाटक हास्यप्रधान रचना है। इसे लेखक ने स्वयं "फार्स" कहा है। इसमें स्त्रियों की अदालत में एक पुरुष अपराधी को उपस्थित कर हास्य की अवतारणा की है। इस नाटक में अतिरंजना अधिक प्रयुक्त है।

विष्णुप्रभाकर के रेडियो रूपकों का हिन्दी जगत में व्यापक नाट्य साहित्य में विशेष समादर हुआ। "नहीं, नहीं, नहीं" उनका हास्य प्रधान नाटक है। इसमें विनोद के शराबी जीवन का चित्रण है। वह शराब न पीने का संकल्प करता है किन्तु एकान्त में शराब पी लेता है। समाज के ऐसे लोगों पर अच्छा हास्य प्रकट किया गया है।

गिरिजाकुमार माथुर दिनों तक आकाशवाणी से सम्बन्धित रहे। इन्होंने प्रसारण का ध्यान रखते हुए विभिन्न प्रकार के नाटकों की रचना की। इनके नाटकों में हास्य-व्यंग्य की प्रधानता है। इनके सभी नाटकों का उद्देश्य मनोरंजन

---

1. कृष्णचन्द्र- सराय के बाहर, पृ० ८,९, प्रथम संस्क०

है । कुछ नाटकों में सामाजिक रूढ़ियों पर व्यंग्य मिलता है । चिरंजीत के हास्य-व्यंग्य प्रधान नाटकों में "खजाने का साँप" और "अखबारी विज्ञापन" प्रमुख है । 'खजाने का साँप" कौतूहलपूर्ण नाटक है इसमें व्यंग्य की प्रधानता है । श्रीकान्त का श्वसुर एक कृपण व्यक्ति है । जब उसकी मृत्यु का समाचार श्रीकान्त को मिलता है तो वह कहता है "साँप खजाने को छोड़कर चला गया ।" इस प्रकार साँप कृपण व्यक्ति का प्रतीक बन जाता है । चिरंजीत के नाटकों में सजीवता अधिक है । उनके सभी नाटक रहस्य पर आधारित है जिस का उद्घाटन अन्त में होता है । इस प्रकार उनके नाटकों में कौतूहल (सस्पेन्स) की प्रधानता है ।

विश्वम्भर "मानव" एक प्रसिद्ध कवि और आलोचक हैं । वे कुछ समय तक आल इंडिया रेडियो से सम्बन्धित रहे हैं । उन्होंने रेडियो के लिए नाटकों की रचना की है जिसके अब तक दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । इनमें "कंगोरा", "दो फूल", "भीगी पलकें", "नारी", "कलाकार" "सन्देह का अन्त" "धरती", "भूख" आदि प्रमुख हैं । इनमें सामाजिक रूढ़ियों तथा कटु संस्कारों पर व्यंग्य किया गया है । विश्वम्भर मानव के नाटकों का आधार प्रेम कथायें हैं । इनके नाटकों में भावुकता की प्रधानता है । मानव के नाटकों में संवाद नाटकोचित हैं । भाषा सरल और चित्ताकर्षक है । मानव के नाटक श्रोताओं को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं ।

ब्रजकिशोर नारायण प्रसिद्ध कवि और उपन्यासकार हैं । उन्होंने समय-समय पर रेडियो के लिए भी कुछ नाटक लिखे हैं जिनमें हास्य व्यंग्य की झलक मिलती है । हास्य की दृष्टि से "मृत्युलोक में नारद" ...... "कि उल्लू न हुए", "धेरै की" आदि प्रमुख हैं । "मृत्युलोक में नारद" एक फेन्टेसी है । इसमें भ्रष्टाचार आदि के हास्यप्रधान चित्र हैं । आजकल अंग्रेजी से होने वाले हिन्दी अनुवादों की हँसी उड़ाई गई है । .... "कि उल्लू न हुए" में आजकल होने वाले कविसम्मेलनों पर व्यंग्य है । "धेरै की" यद्यपि नाट्यकृति नहीं है तथापि हास्य की सफल सृष्टि इसमें की गई है ।

कणाद ऋषि भटनागर ने अनेक रेडियो नाटकों की रचना की है जिनमें "लाटरी" उनका हास्यप्रधान नाटक है । हरीश शर्मा के मित्र उसे मूर्ख बनाकर उससे निमन्त्रण खाना चाहते हैं और उसके घर निमन्त्रण भेज देते हैं कि उसे लाटरी में कई लाख रुपये मिले हैं । "बहार उत्सव" में हरीश की माँ और पत्नी उत्सव का आयोजन करती हैं । सभी लोग भोज खा लेते हैं । हरीश के घर आने पर रहस्य का पता चलता है । सारा वातावरण हास्य में परिवर्तित हो जाता है । इसमें व्यंग्य प्रधान प्रहसन है । भटनागर के नाटकों में रोचकता है । कथानक में जिज्ञासा तत्व की प्रधानता है । नाटकों में कलात्मकता है । पात्रों की न्यूनता है और संवाद रोचक हैं ।

राधाराम शास्त्री के "अपराधी कौन" एवं "सौन्दर्य प्रतियोगिता" हास्य-व्यंग्य प्रधान रूपक हैं । "सौन्दर्य प्रतियोगिता" में नेताओं पर व्यंग्य किया गया है । पचास वर्षीय धनीराम सौन्दर्य प्रतियोगिता में नारियों के नग्न सौन्दर्य देखने के लिए उत्सुक है पर वे यह नहीं चाहते कि उनकी पुत्री उस प्रतियोगिता में जाए । "दीवाली का मेहमान" व्यंग्य प्रधान नाटक है । "झगड़े की जड़" में हास्य है ।

हिमांशु श्रीवास्तव ने गंभीर और हल्के दोनों नाटकों में हास्य की अवतारणा की है । उनके नाटक "सभ्यता की नव कुसुमित संगीत हैं" में जनता की युद्ध-शान्ति के नाम पर युद्ध छेड़ने वाले तानाशाहों पर व्यंग्य किया गया है । "फोन रखो ले जाय बाबै" में हास्य है । फोन रखने वाले व्यक्ति के यहाँ फोन करने वाले मित्रों की भीड़ लगी रहती है जो मुफ्त में फोन करने के लिए आते हैं । अन्त के अन्त में वे कुल बिल चुकाकर फोन हटा देते हैं ।

लखनऊ आकाशवाणी से रमईकाका के अवधी के नाटक अधिक प्रसिद्ध हुए हैं । उनका हास्य प्रधान नाटक "रतौंधी" कई बार विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित हो चुका है । नाटक के नायक पिरभू को रतौंधी आती है । वह एक विवाह के उपलक्ष्य में अपनी ससुराल जाता है । साथ में उसका नाई भी रहता है । नाई की वाक्पटुता से पिरभू की रतौंधी का रहस्य छिपा रहता है । कई बार भेद खुलते खुलते रह गया । जब पिरभू खाने के लिए बैठता है तो वह भोजन की तरफ पीठ करके बैठ जाता है । नाई तुरन्त सम्भालता है --

"कंगनू --"अरे पाखी मालिक देवाल तन मुंह कीन्हें बइठ हैं।"

माऊ काका --बात मालिक। बहुरारिउ मा ठेठलाय की आदत नहीं छूटि। भोजन पाछे धरा है और मुंह देवाल तन कीन्हें बइठ हौ।"

बिरजू --नाऊ काका हमका दुर्भांति नहीं नीकी लागति। तुम हुमारे आखिन लोनु हम कहा जब तक भीतर न आय जइहौ तब तक भोजन खाय की थौन कहै, हम आंखिन ते पाखन तक ना।"[1]

इनके काका के प्रसारित नाटकों में "दुखाला","बहिरेबाबा","तीन-बालकी" आदि हास्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

विजयदेव नारायण शाही का " एक निराश आदमी" शीर्षक रूपक, इलाहाबाद आकाशवाणी से जून १९५२ में प्रसारित हुआ था। इसमें समाज में फैली "सिफारिशपरस्ती पर अच्छा व्यंग्य किया गया है। एक व्यक्ति जो एम०ए० पास है लेकिन सिफारिश के बिना नौकरी से वंचित रह जाता है। मिस्टर गुप्ता उसका साक्षात्कार लेते हैं। वे सिफारिश का महत्व बतलाते हैं। निम्न वार्तालाप रोचक है -

"निराश आदमी --क्या मैं झूठ बोल रहा हूं, यह लीजिए मैं अपना एम०ए० का सार्टीफिकेट भी लेता आया हूं क्योंकि आज इसकी भी राख होने की बारी आ गई है।

(सर्टीफिकेट निकाल कर फेंक देता है।)

मि० गुप्ता --तो यह आधार है आपकी योग्यता का जिस पर आप नौकरी चाहते हैं। अच्छा कारण है। मेरी समझ में नहीं आता है कि किसी यूनिवर्सिटी के वाइसचान्सलर का हस्ताक्षर

---

१. उद्धृत - हिन्दी साहित्य में हास्य रस- चतुर्वेदी, पृ० २५७-२५८, प्रथम संस्क०

> किया हुआ यह शिफ़ारिशी कागज़ किस तरह दूसरी शिफा-रिशों से भिन्न है । मि० निराश आदमी । क्या आप कहना चाहते हैं कि अगर कोई वाइस चान्सलर या प्रोफेसर साहब अपने हस्ताक्षर से मुफे किसी की योग्यता के बारे में पत्र भेजें और जबानी शिफारिस करें, इन दोनों में कोई मौलिक अन्तर हो जायगा ।"[१]

भारत भूषण अग्रवाल का "इन्ट्रोडक्शन नाइट" रूपक इलाहाबाद आकाश-वाणी से प्रसारित हो चुका है । इसमें विशुद्ध हास्य की छटा मिलती है । कालेज जीवन में बिताये आनन्द को आधार लेकर इसमें सफल हास्य की अभिव्यंजना की गई है ।

प्रभाकर माचवे ने हास्यरूपक के एक नये प्रकार परिहासक्रम (कामिक सीक्वेन्स) को बड़ी कुशलता से प्रयुक्त किया है । "वधू चाहिए" तथा "कवायदवादी" उनके श्रेष्ठ परिहास तथा व्यंग्यक्रम हैं । नाटकों में "रामभरोसे", "पुराने चावल", "अधकचरे" सफलतापूर्वक प्रसारित हुए हैं । ये नाटक अत्याधुनिक समाज की कृत्रिमता पर तीखी चोटें हैं । माचवे की दृष्टि से समाज की कोई भी अप्रासंगिकता नहीं बची है । उनके हास्यप्रधान नाटकों में ठहाके जैसे कहकहे मिलते हैं और एडीसन जैसी हल्की-मुस्कराहटें भी मिलती हैं । परिहास में बिल्कुल अनाहिंसा का रंग है । उनकी हास्यात्मक कल्पना "कवायद वादी" ऐसे शुष्क और नीरस विषय को भी रोचक बना देती है । माचवे के रूपकों में शब्द हंसते हैं, छेड़छाड़ करते हैं और तरह-तरह के सूक्ष्म भाव व्यक्त करते हैं । उनकी भाषा में चटखारे हैं ।

अमृतलाल नागर का "बांकेलाल" कई बार प्रसारित हुआ है । इसमें मनोभावों का आश्रय लेकर विदूषक के माध्यम से हास्य की अभिव्यक्ति हुई है । जग-नाथ नलिन का "नबाबी सनक" आराम तलब लोगों पर एक तीखा व्यंग्य है । हास्य

---

१. विजयदेव नारायण साही - एक निराश आदमी, पृष्ठ ८

की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है । यह वर्ष का सर्वश्रेष्ठ ब्राडकास्ट माना गया था ।

गिरिजाकुमार माथुर का "मध्यस्थ" "बारातचढ़े" एवं "लाउडस्पीकर व्यंग्यात्मक रेडियो नाटक है । "मध्यस्थ" में वर और वधू दोनों पक्षों के बीच में पड़े मध्यस्थों की कठिनाइयों का हास्यात्मक चित्रण है । "बारात चढ़े" में बारात की तैयारी से लेकर उसकी वापसी तक का वर्णन है । बीच-बीच में दहेजप्रथा की बढ़ती हुई उग्र प्रवृत्ति पर हास्य प्रकट किया गया है । "लाउड स्पीकर" में बेमौके बजने वाले लाउडस्पीकरों के शोर से पड़ोसियों को होने वाली कठिनाई का चित्रण है । इसमें हमेशा रेडियो बजाने वाले लोगों पर हास्य-व्यंग्य किया गया है ।

माथुर के सभी ध्वनिरूपक मनोरंजन के लिए लिखे गये हैं । उन्हें मनोरंजक चित्र कहना ही अधिक श्रेयस्कर होगा । इनके नाटकों में सजीवता है यथार्थ चित्रण है तथा सामाजिक असंगतियों पर व्यंग्य है ।

हंसकुमार तिवारी के "अन्धकार" नाटक में मध्यवित्त परिवार की निर्धनता का चित्रण है । इसमें निर्धन परिवार की कुरूप लड़की यमुना की विवाह समस्या है । वह बाद में पति द्वारा तिरस्कृत कर दी जाती है । इस नाटक में ऐसे पतियों पर सरकाज्म (कटुव्यंग्य) का प्रयोग किया गया है ।

सिद्धनाथकुमार ने "टूटा हुआ आदमी" में वर्तमान जीवन संघर्ष में डूबते हुए एक मध्यवर्गीय युवक का चित्रण किया है । इसमें वर्तमान सामाजिक असमानता पर व्यंग्य है ।

रामचन्द्र तिवारी का "पशुपक्षी सम्मेलन" मनोरंजन की दृष्टि से उत्कृष्ट-नाटक है । इसमें विभिन्न पशुओं पक्षियों के माध्यम से हास्य की अवतारणा की गई है ।

रामशरण शर्मा ने रेडियो नाटकों में सफर की साथिन "बेचारी बुढ़िया", बकासत", "पत्रकारिता," "बेकारी" आदि उल्लेखनीय हास्य-व्यंग्य प्रधान नाटक है । "सफर की साथिन" में प्रेम में असफल एक स्त्री की हत्या का चित्रण है । "बेचारी-

चुड़ैल' में लोगों को तंग करने वाली चुड़ैल का हास्यात्मक वर्णन है । दोनों नाटक मनोरंजन के लिए लिखे गये हैं । 'वकालत' , 'पत्रकारिता' और 'बीमारी' हास्यप्रधान नाटक हैं । तीनों के पात्र बुद्धिस्वरूप हैं । उन्हीं को मूर्ख बनाकर उन पर हंसने का प्रयास किया गया है । लेखक के इन नाटकों का उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र है ।

राजाराम शास्त्री के अनेक हास्यरूपक दिल्ली आकाशवाणी से प्रस्तुत किये जा चुके हैं जिनमें 'सातलड़ी का हार', 'उलझन', 'डमरूनाथ', 'पीले पिला ले चार आने', 'टिल्लो', 'भगत जी' एवं 'शर्त' आदि प्रमुख हैं । 'डमरूनाथ' में वर्तमान समय के कर्मकाण्डी ढोंगी सिद्धों-साधकों पर हास्य प्रकट किया गया है । सिद्ध जी कर्मकाण्डी साधक हैं । उनका पुराना सेवक बकरूमिया अपना रूप बदलकर डमरूनाथ बन जाता है और सिद्ध को भी ठगकर अन्त में अपना वास्तविक रूप प्रकट कर देता है । इस रूपक में खुल कर हास्य प्रकट किया गया है । 'टिल्लो' एकांकी में रायसाहब रामेश्वरदयाल की नशीली वृत्ति का हास्यात्मक चित्रण है । रायसाहब नशे में चूर होकर पीनक में खड़े हो जाते हैं । उन्हें घर में न देखकर परिवार वाले पूरे शहर में उनकी खोज करते हैं । अन्त में रायसाहब पीनक के पास ही में मिलते हैं । 'भगत जी' में ढोंगी भक्तों पर हास्य है । भगत जी भिखारी को एक पैसा भी नहीं देते हैं किन्तु गोकुल को दो रुपये प्रतिशत ब्याज पर सौ रुपये उधार देते हैं । भगत जी किशन के जेवरों को लेकर दो हजार देते हैं । किशन भगत के पास जेवर रखकर थाने में सूचना दे देता है । भगत के पास से जेवर बरामद होता है और उन्हें अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है । 'पीले पिला ले चार आने' में दो भंगेड़ियों का चरित्र चित्रण हास्यात्मक ढंग से किया गया है । इस रूपक में लोटपोट कर देने वाला हास्य है । 'शर्त' में सुरेश और भूषण के वार्तालाप में हास्य प्रकट हुआ है । भूषण पैसे के लालच में बहुत ज्यादा पानी पीकर पचास रुपये ऐंठ लेता है । 'देवहूति' और 'सुकन्या' नाटकों में गार्हस्थ्यजीवन के चित्र खींचे गये हैं । दोनों रूपकों में कामवासना और उस पर विजय पाने के बीच का अन्तर्द्वन्द्व दिखाया गया है । महर्षि कर्दम के जीवन में देवहूति और च्यवन के जीवन में सुकन्या साधक बन जाती है । दोनों आजीवन कामवासना पर विजय प्राप्त कर अन्त में पराजित हो जाते हैं । शास्त्रीजी

ने इसके माध्यम से ऐसे कामग्रस्त सामाजिक व्यक्तियों पर हास्य प्रकट किया है । राजाराम शास्त्री रेडियो के लिए हास्य लेखक की दृष्टि से प्रसिद्ध है । "देवदूत" क्लासिक्स की अनुपम कृति है । इनका हास्य शुद्ध, परिष्कृत एवं रोचक बन गया है ।

रामपूजन मलिक ने अनेक मनोरंजक नाटक लिखे हैं जिनमें हास्य की व्यंजना शैली है । इन्होंने सामान्य जीवन को ही अपने रूपकों का विषय बनाया है । "रोज की बात" में एक मध्यवर्गीय बाबू का चित्रण है । बाबूजी बाजार से बैंगन खरीदकर लाते हैं जो सड़ा निकल जाता है । वे उसे वापस करने जाते हैं और बहुत झगड़े के बाद वापस कर पाते हैं । "तकरार" में पतिपत्नी का संघर्ष है जो परस्पर समझौते द्वारा समाप्त होता है । मलिक जी के नाटक सफल ढंग से प्रसारित हुए हैं एवं उनमें रोचकता है ।

गोपाल शर्मा का "दीवाली के मेहमान" व्यंग्य नाटक है । त्योहारों पर आने वाले मेहमानों के परिणामस्वरूप उत्पन्न संकट का चित्रण इस रेडियो-नाटक में हुआ है । "झगड़े की जड़" हास्य की दृष्टि से शर्मा जी का श्रेष्ठ रूपक है । अनायास होने वाले झगड़ों के माध्यम से इसमें हास्यरस की सृष्टि की गई है ।

कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने "स्वर्ग में क्रान्ति" नाटक में हास्य प्रस्तुत किया है । इसमें लेखक ने चुनावप्रक्रियाओं के माध्यम से हास्य प्रयुक्त किया है । "नईधुन" में आजकल के लोकप्रिय एवं सस्ते गीतों और गीतकारों पर कटाक्ष किया गया है ।

मार्कण्डेय ने आकाशवाणी के लिए अनेक नाटक लिखे हैं । जिनमें "पत्थर और परछाइयाँ," "चिड़ियाखाना", "अंधेरी झाँकी" , "मैं जाऊंगा नहीं," "दो पैसे का नमक," हास्य-व्यंग्य प्रधान रेडियो नाटक हैं । "पत्थर और परछाइयाँ" में मानव जीवन की वैवाहिक समस्या का चित्रण है । अजित सयाना हो जाने पर पर भी विवाह नहीं करता है । उसके घर पर विवाह करने वालों की बराबर भीड़ लगी रही है । इसी समस्या को आधार बनाकर वर्तमान बाबू बने लोगों पर हास्य प्रकट किया गया है । "चिड़ियाखाना" में जीवन की असंगतियों पर व्यंग्य है । आर्थिक कठिनाईवश व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ

हो जाता है । ऐसे लोगों की दयनीय दशा पर नाटककार चिन्ता प्रकट करता है । 'अंधेरी झांकी' में विवाह समस्या पर व्यंग्य किया गया है । 'दो पैसे का नमक' में निम्नवर्ग की कठिनाइयों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । निम्न-परिवार के लोग संकटग्रस्त होते हुए भी नशे में सब कुछ व्यय करते हैं । नाटककार उनपर व्यंग्य करता है ।

राजेन्द्रकुमार शर्मा वर्तमान रेडियो नाटक लेखकों में एक सुपरिचित व्यक्तित्व है । इन्होंने रेडियो के लिए कई दर्जन हास्य एकांकी लिखे हैं जिनमें 'कालिख और लाली'' आ बैल मुझे मार'' एक क्लास दिल्ली,''हाथ की सफाई' 'तलाक-ब्यूरो ,'नयामोड़','पहली अप्रैल' 'अटैची केस,''एक दिन की छुट्टी', 'उधार देवता' ,'दाल में काला' , 'बुरे फंसे नाम कमाने में ,''समझौता' , 'किराये के आंसू' आदि उल्लेखनीय हैं । रेडियो से प्रसारित होने के बाद इन नाटकों को रंगमंचीय बनाने के लिए अनेक परिवर्तन कर दिया गया है ।' कालिख और लाली' में देश की संकटकालीन स्थिति में भी अपने स्वार्थ को न भूलने वाले व्यक्तियों को हास्य के माध्यम से अपने कर्तव्य के प्रति प्रेरित किया गया है । 'आ बैल मुझे मार' में परिवार नियोजन की समस्या एवं उसकी आवश्यकता पर बल दिया गया है । चन्दन कई बच्चों के होते हुए भी अपना आपरेशन नहीं कराना चाहता है । उसका विश्वास है कि आपरेशन से पुंसत्व नष्ट हो जायेगा । इस एकांकी में समाज के ऐसे लोगों को हास्य का आलम्बन बनाया गया है ।' एक 'ए क्लास दिल्ली' में बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले व्यक्तियों की महंगाई के कारण उत्पन्न स्थिति पर व्यंग्य किया गया है । महंगाई भत्ता बढ़ने पर भी नारायण-दास अपना खर्च पूरा नहीं कर पाता है । 'तलाक ब्यूरो' में छोटी-छोटी बातों पर तलाक की बात सोचने वालों पर तीखा कटाक्ष है । 'हाथ की सफाई' में अनाधिकार चेष्टा करने वाले पड़ोसियों पर व्यंग्य किया गया है । सावित्री सिलाई का डिप्लोमा लिए हुए है । उसके पास प्रतिदिन स्त्रियां मुफ्त में कपड़ा कटाने व सिलाने आती हैं । ऊषा उससे अपने बच्चे का सूट सिलाती है । सावित्री सूट सिलकर रात में उसका गला और काटकर खराब करके ऐसे लोगों से अपना पिण्ड छुड़ाती है । 'पहली अप्रैल' एक हास्य रूपक है । इसमें पहली अप्रैल को बेवकूफ

बनने वालों पर हास्य व्यक्त है। एक स्टेनो अपने आफिस के कर्मचारियों को कुछ फूल लाकर दे देती है। उसके सूंघते ही सभी एक साथ छींकने लगते हैं।

शर्मा जी का 'अटैची केस' अनेक बार दिल्ली आकाशवाणी से प्रसारित हुआ है। इस नाटक की रचना मनोरंजन हेतु की गई है। धनिया के पास कोई अटैची केस रखकर चले जाते हैं। उसके जाने के बाद सरोज के पूछने पर धनिया उस आगन्तुक का हास्यात्मक हुलिया बताती है। अन्त में नरेन्द्र जो सरोज के मित्र थे अपनी अटैची लेने आते हैं। उन्हें पहचान कर सभी हँस पड़ते हैं। 'दाल में काला' में सुरेन्द्र अपने मित्र शंकरलाल को पहली अप्रैल के उपलक्ष्य में एक पत्र लिखता है। संयोग से उस मकान को शंकरलाल छोड़ देता है और उसमें वीरेन्द्र रहने लगता है। वह पत्र वीरेन्द्र को मिलता है जिसमें एक प्रेमिका के प्रेमपाश का वर्णन था। वह पत्र शोभा पढ़कर अपने पति पर आक्रोश करती है। अन्त में सुरेन्द्र आकर वास्तविकता से परिचित कराता है। 'उधारदेवता' में एक ऐसे व्यक्ति को आलम्बन बनाकर हास्य प्रकट किया गया है जो बनिया से सामान और ग्वालिन से दूध उधार लिया करते थे किन्तु तकाजा होने के पूर्व ही वे स्थानान्तरित होकर आगरा चले जाते हैं। दर्जी, बनियां एवं ग्वालिन के पैसे मांगने के लिए जाने पर मकान खाली मिलता है। 'बुरे फंसे नाम कमाने में' में गुलशन को हास्य का आलम्बन बनाया गया है। वह अपना नाम प्रचार कराने हेतु अपने खोने की सूचना और चित्र समाचार पत्र में प्रकाशित करा देता है। समाचार पढ़कर उसकी पत्नी तलाश करती हुई उन्हें सिनेमाघर में पाती है। इस नाटक में इस प्रकार नाम कमाने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य है। 'किराये के आंसू' में अनायास सहानुभूति प्रदर्शित करने वाले लोगों को हास्य का आलम्बन बनाया गया है।

वर्तमान समय में आकाशवाणी से अनेक नाटक प्रसारित किये जा रहे हैं किन्तु शर्मा जी के नाटक रंगमंचीय कसौटी पर भी खरे उतरते हैं। राजेन्द्रकुमार शर्मा के नाटक न दर्शन है, न प्रौढ़ मस्तिष्क का ज्ञान हैं, और न सामाजिक बुराइयों का वाहन ही हैं। इनके नाटक प्रतिदिन होने वाली घटनाओं के निर्भर हैं जिसमें हास्यरस और मनोरंजन निहित है।

वर्तमान समय में हास्य प्रधान नाटक रेडियो का प्राण हो गया है और प्रतिसप्ताह हास्य-व्यंग्य प्रधान रूपक प्रकाशित किये जा रहे हैं। अनेकों नाटक केवल मनोरंजन हेतु लिखे जा रहे हैं। राजनीति के साथ ही साथ व्यंग्यात्मक नाटकों की संख्या बढ़ती जा रही है। इस क्षेत्र में अनिलकुमार, लीला अवस्थी, रामनारायण अग्रवाल, भृंगतपकरी आदि ने प्रशंसनीय योग दिया है।

निष्कर्ष :-

हिन्दी में रेडियोनाट्यलेखन के अभी लगभग तीन दसक वर्ष पूरे हुए हैं। इतने अल्पकाल में बहुत बड़ी संख्या में रेडियो नाटक लिखे गये हैं जिनमें हास्य की प्रधानता है। रेडियो के आविष्कार से अनेक नाटक न लिखने का संकल्प करने वाले अनेक लेखक अच्छे नाटककार हो गये हैं। जितने नाटक रेडियो के माध्यम से हिन्दी में लिखे गये हैं उतने किसी भी समय में नहीं लिखे गये। हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में इन नाटकों ने अवश्य ही अधिक सहयोग दिया है किन्तु शिल्प की दृष्टि से इस क्षेत्र में और अधिक प्रगति करने की आवश्यकता है। यदि शिल्प पर लेखकों ने ध्यान दिया और मानवजीवन की रुचि बनी रही तो हिन्दी नाटकों में हास्य व्यंग्य की कमी को ध्वनि नाटकों के माध्यम से पूरा किया जा सकता है।

वर्तमान समय में रेडियो मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ माध्यम के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। इस साधन के द्वारा रेडियो एकांकियों की रचना को प्रश्रय मिला। समय की बदलती हुई गति के साथ ही साथ मानव मस्तिष्क भी परिपक्व और परिष्कृत होता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में भी अन्तर प्रतीत होने लगे हैं। वैज्ञानिक प्रगति में व्यस्त मानव के पास समय की कमी हो गई है इस लिए वह रेडियो नाटकों के माध्यम से अध्ययन और मनोरंजन दोनों कर लेता है।

नवम् अध्याय

चीनी,पाकिस्तानी आक्रमणों पर आधारित नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(१९६२ – १९६५ई०)

(राजनीतिक परिस्थिति, हास्य-व्यंग्य, घाटियां गूंजती हैं, हम एक हैं , आंधी और तूफान, हाजीपीर का दर्रा , वह दोस्त हमारा दुश्मन है, निष्कर्ष)

अध्याय – ६

चीनी पाकिस्तानी आक्रमणों पर आधारित नाटकों में हास्य और व्यंग्य

(१९६२–१९६५ ई०)

राजनीतिक परिस्थिति

२० अक्टूबर,१९६२ ई० को कम्युनिस्ट चीन ने भारतीय सीमा में स्थित नेफा और लद्दाख स्थानों पर आक्रमण किया । चीनी प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई ने भारत के पचास हजार वर्गमील भूमि पर अपने अधिकार का दावा किया । इसके पूर्व भी चीन अपनी विश्वासघाती परम्पराओं के अनुसार एक ओर पंचशील की घोषणा करके भारत से मैत्री का ढोंग रच रहा था साथ ही साथ भारत पर आक-स्मिक आक्रमण करने की योजना बना रहा था । भारत ने स्वतन्त्र होते ही चीन की ओर जनवादी और साम्राज्यवादविरोधी राष्ट्र के नाते मैत्री के कदम अग्रसर किये । भारत ने सर्वप्रथम उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थान दिलाया । तिब्बत भारत का सुरक्षा द्वार था नेहरू ने अदूरदर्शिता की नीति अपनाकर उसे चीन को सौंप कर भी मैत्री बढ़ाने का प्रयास किया । १९५४ ई० में भारत ने ब्रिटेन द्वारा प्राप्त सभी अधिकारों को त्यागकर तिब्बत पर पूरी तरह चीन का अधिकार स्वीकार कर लिया । चीन को तिब्बत सौंपने के बाद १९५४ में भारत-चीन के बीच "पंच-शील" का समझौता हुआ किन्तु इसकी स्याही सूख भी नहीं पाई थी कि चीन ने १७ जुलाई १९५४ में उत्तरप्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्र बाराहोती से भारतीय सैनिकों के हटाने की मांग की । इस प्रकार से चीन ने बाराहोती से भारतीय सैनिकों को वहां से हटवाकर एवं अपना अधिकार बताकर सीमाविवाद का श्रीगणेश किया ।

सन् १९५४ ई० में तिब्बत पर भारत से अपना अधिकार घोषित कराने के पहले तक चीन ने एक इंच भारतीय भूमि पर अधिकार का दावा नहीं किया था । सन् १९५१ तथा १९५२ में चीन और भारत के बीच तिब्बत पर वार्ता हुई थी किन्तु चीन ने तनिक भी सीमाविवाद पर संकेत नहीं किया । तिब्बत पर अधि-

कार होते ही चीन ने अपने नक्शे में पूर्वोत्तर सीमा क्षेत्र के लगभग ३६ हजार वर्गमील क्षेत्र पर तथा उत्तरपूर्वी लद्दाख के लगभग १२ हजार वर्गमील क्षेत्र को अपना दिखा कर विवाद का अपना प्रथम अध्याय प्रारम्भ किया । सन् १९५४ के नवम्बर में प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी चीन यात्रा के दौरान चाऊ एन-लाई के समक्ष उपरोक्त प्रश्न उठाया तो धोखेबाज चीन ने उक्त नक्शे को प्राचीन मानचित्रों पर आधारित बताते हुए,गम्भीर अध्ययन का आश्वासन देते हुए प्रश्न को टरका दिया और १९५५ में बाराहोती में अपना दल भेजकर अड्डा बना लिया । चीन से प्रगाढ़ मैत्री के मद में अन्धे हमारे नेताओं ने बाराहोती की घटना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना अनावश्यक समझा जिसके परिणामस्वरूप चीन का आक्रामक रूप स्पष्ट हो गया ।

तिब्बत पर पूर्णरूपेण अधिकार होने के बाद ही चीन ने आक्रामक रूप धारण करना प्रारम्भ किया । भारत और चीन का सीमान्त प्रदेश २२००मील से अधिक दूरी तक फैला है । तिब्बत और भूटान की सीमा तीन सौ मील से अधिक विस्तृत है । पश्चिमी सीमा कश्मीर के साथ सिकियांग और तिब्बत से सटी हुई है । यह सीमा ११०० मील तक है और इसी के दो तिहाई भाग लद्दाख से सम्बन्धित हैं । इन सीमाओं के सम्बन्ध में हुए विवाद के विषय में १९१३-१४ ई० में भारत सरकार, तिब्बत और चीन के सम्मेलन हुए थे । भूटान से सम्बद्ध सीमा के प्रश्न पर हुए सम्मेलन में ब्रिटिश प्रतिनिधि श्री मैकमोहन ने प्रमुख भूमिका अदा की थी अतः स्वीकृत सीमारेखा का नाम ही "मैकमोहन" पड़ गया था । १९५४ तक चीन ने इसी सीमारेखा को स्वीकार किया किन्तु तिब्बत पर अधिकार होते ही साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा से चीन युद्ध की तैयारियां करने लगा । नवम्बर १९५६ में चाऊ-एन-लाई भारत की राजकीय-यात्रा पर पधारे । लाखों व्यक्तियों के बीच में उन्होंने चतुर राजनीतिज्ञ की भाषा में आश्वासन दिया -"चीन ने चीन और बर्मा की सीमा के रूप में मैकमोहन रेखा को स्वीकार कर लिया है तथा भारत के साथ भी उसे स्वीकार कर लिया जायगा ।"[1] चीन वापस लौटने पर ही चीनी सरकार ने तिब्बत और सिकियांग के बीच एक सड़क बनानी प्रारम्भ

१, "आज" - २४ अक्टूबर १९७१,पृ० ६

की जो भारत के 'अक्साइचीन' क्षेत्र से लगभग सौ मील तक विस्तृत थी । चीन ने १९५७ में सड़क निर्माण कार्य पूरा कर लिया । उसके तत्काल बाद लद्दाख के 'खुरनाक' किले पर कब्जा करने के साथ ही अक्साइचीन में एक भारतीय गश्ती दल को गिरफ्तार कर लिया और चीनी सेना ने उत्तरप्रदेश के 'लपथल' तथा 'सांगचा-मल्ला' में बेशर्मी के साथ घुस कर भारतीय दल पर आक्रमण किया । मार्च १९५९ में तिब्बत में हुए विद्रोह तथा दलाईलामा को भारत में शरण देने के कारण चीन ने खुलेआम आक्रामक रूप अपनाया । १९५९ में चीन के सशस्त्र सैनिकों ने पश्चिमी भौगोलिक क्षेत्र में जबर्दस्ती घुसकर चौकियाँ बना लीं । अगस्त १९५९ ई० में चीनी गश्तीदल लौंगजू में घुसकर एक भारतीय चौकी पर अधिकार कर लिया ।

चीनी प्रधानमंत्री ने ८ सितम्बर १९५९ को सार्वजनिक रूप से भारतीय सीमा के लगभग ५० हजार वर्गमील क्षेत्र पर दावा कर अपने इरादे की घोषणा कर दी । नेहरू ने उसके दावे को निराधार सिद्ध करने के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये किन्तु साम्राज्यवादी चीन अपने दुराग्रह पर डटा रहा ।

पं० नेहरू ने चीन के आक्रमण को रोकने के हर सम्भव प्रयास किये । उन्होंने चाओ एन-लाई से पत्रव्यवहार किया और यहाँ तक स्वीकार किया कि भारतीय सैनिक वहाँ तक हट जायेंगे जहाँ तक चीन ने दावा किया है । २७ दिस-म्बर १९५९ को चीन ने इस सुझाव को भी अस्वीकार कर दिया । अन्त में नेहरू ने चाओ-एन-लाई को भारत आमन्त्रित किया । अप्रैल १९६० में चाओ भारत आये । पांच दिन तक यहाँ वार्ता हुई और चीन लौटते ही पुनः दुराग्रह किया । अगस्त १९६१ में लद्दाख के न्यागजू के पास चीनी सैनिकों ने तीन नई चौकियां बना लीं । चीन ने पाकिस्तान को भारत का जन्मजात शत्रु समझ कर भड़काना शुरू कर दिया । मई १९६२ में चीन ने पाकिस्तान द्वारा हस्तगत भारतीय भूभाग के बंटवारे का स्वांग रचा ।

चीन ने जुलाई १९६२ में गलवान घाटी में एक भारतीय चौकी घेरकर खुला आक्रमण किया और सैनिकों ने खुलेआम गोलियाँ चलाईं । कुछ समय बाद

२० अक्टूबर १९६२ को लद्दाख के चुशूल चौकी पर आक्रमण कर दिया ।

पाकिस्तानी आक्रमण

भारत पाक विवाद का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी पुरानी भारत की स्वतंत्रता है । पाकिस्तान के बँटवारे के साथ ही साथ भारत पाक के बीच खाई पड़ जाना स्वाभाविक था । पाकिस्तान विभाजन के बाद ही १५ अक्टूबर १९४७ ई० को पाक हमलावरों ने कश्मीर पर आक्रमण किया । कश्मीरी जनता, तत्कालीन जनप्रिय नेता शेख अब्दुल्ला तथा कश्मीर के महाराजाओं ने भारत में सम्मिलित होने का आवाहन करते हुए भारत से सुरक्षा की प्रार्थना की । २६ अक्टूबर को भारत सरकार ने भारतीय संघ के अन्तर्गत कश्मीर के विलय की घोषणा की और कश्मीर की सुरक्षा हेतु अपनी सेनाएं सीमा पर लगा दीं । भारत ने पाकिस्तान के इस हमले को अपने ऊपर बताते हुए इस मामले को सुरक्षा परिषद् में प्रेषित कर दिया । इ १९६२ में पाकिस्तान ने चीन के साथ सन्धि की । कुछ समय बाद १९६५ ई० में कंजरकोट, सियालकोट, एवं सरदार पोस्ट नामक स्थानों पर आक्रमण किये । अन्त में ३० जून १९६५ ई० को दोनों राष्ट्रों की बीच कच्छ का समझौता हुआ किन्तु दुराग्रही पाकिस्तान ने इस समझौते को तोड़कर ५ अगस्त १९६५ में कश्मीर में घुसपैठियों द्वारा लूटखसोट और तोड़फोड़ प्रारम्भ किया । ६ सितम्बर १९६५ को पाकिस्तान ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून तोड़कर भारत पर खुला हमला कर दिया ।

भारतीय जवानों ने पाकिस्तानी हमले का बड़ी बहादुरी से सामना किया । विदेशों से एकत्रित पाकिस्तानी शस्त्रास्त्रों को भारतीय शस्त्रों ने मात कर दिया । अमेरिकी टैंकों को अब्दुल हमीद जैसे बहादुर ने तोड़कर उनकी प्रतिष्ठा समाप्त कर दी । इस युद्ध के परिणामस्वरूप भारत राष्ट्र ने चीनी आक्रमण में खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त किया । कुछ समयबाद ताशकन्द का समझौता हुआ । किन्तु पाक ने इसकी भी अवहेलना करके जनवरी १९७२ में पुन: आक्रमण करके मुँह की खाया ।

हास्य-व्यंग्य

चीन के आक्रमण के परिणामस्वरूप भारतीय जन मानस में एकाएक बेचैनी फैल गई । देश के सैनिकों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया । साहित्य में वीर रस से सम्बन्धित अनेक नाटक लिखे गये । कुछ भारतीय तस्करों ने चीन के साथ साँठगाँठ रख कर देशद्रोह कार्य किया । अनेक अफ़सरों ने गद्दारी की भूमिका अदा की थी । युद्ध पर आधारित नाटकों में ऐसे तस्करों पर कटु व्यंग्य व्यक्त किया गया है तथा यत्रतत्र शत्रुओं का उपहास किया गया है ।

घाटियाँ गूंजती हैं

डॉ० शिवप्रसाद सिंह द्वारा लिखित यह नाटक राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है । २० अक्टूबर १९६२ को चीन ने भारतीय सीमा पर आक्रमण किया दो सक्रमीत सीमा पर होने वाले युद्ध की वीभत्स लीलाएं, देश की अडिग संकल्प शक्ति, अपमान और ग्लानि का रोमांचकारी भाव, शत्रुओं की कृतघ्नता, कुछकुछ भारतीय जनता के स्वयंभू शुभचिन्तक चीनियों का पाखण्ड, शान्ति का नाम लेने वाले लुटेरों की भावना आदि का वर्णन इस नाटक में पाया जाता है । प्रस्तुत नाटक का मुख्य पात्र जो भारतीय है लेकिन देशद्रोह करके चीनियों की मदद करता है । वह अलटंकी में विघ्न डालने का असफल प्रयास करता है । नाटक में ऐसे देशद्रोही भारतीयों पर व्यंग्य करते हुए नाटककार ने उसे हास्य का आलम्बन बनाया है ।

भारत के किरीटभूतहिममण्डित हिमालय की उपत्यका में स्थित वे प्रदेश जहां साम स्वामों के अरण्यायक क्रान्तिदर्शी ऋषियों की पुनीत वाणी गूंजी थी । जिस प्रदेश में पुण्यसलिला भागीरथी अपनी अमृतधारा बहाने में समर्थ हुई थी वही प्रदेश चीन के बर्बर सैनिकों से आक्रान्त हो गया किन्तु इसके बावजूद भी अपनी संस्कृति पर निष्ठा न रखने वाले कतिपय भारतीय चीन के भक्तजने ही रहे । ऐसे लोगों पर नाटककार ने कटु व्यंग्य प्रस्तुत किया है । नाटक में चीनी बाबूनर

और उसका शिष्य[१] हास्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

डॉ० सिंह ने राष्ट्रीयता के माध्यम से हास्य की सृष्टि की है । हास्य में कृत्रिमता का अभाव है । व्यंग्य चुभीला हो गया है ।

हम एक हैं

कणाद ऋषि भटनागर द्वारा लिखित यह नाटक चीनी आक्रमण से सम्बन्धित है । मित्र एवं पड़ोसी देश के विश्वासघात एवं अचानक आक्रमण के विरुद्ध भारतीय राष्ट्र का एकाएक संगठित हो जाना एक महान घटना है । इस संगठन के परिणामस्वरूप शत्रुओं की साम्राज्यवादी लिप्सा का स्वप्न भंग हो गया था । शत्रुओं से बड़ी सफलता के साथ हमारी सेनाओं ने युद्ध किया था किन्तु उस समय भी भारत देश में कुछ ऐसे पापी थे जो इस देश के वातावरण में पलकर यहाँ का अन्न जल ग्रहण करते हुए शत्रुओं के चन्द चाँदी के टुकड़े के लिए देश के साथ गद्दारी किये थे । भटनागर जी ने ऐसे देशद्रोहियों को हास्य का आलम्बन बनाते हुए उनसे सावधान रहने का आवाहन किया है ।

समाज में उस समय कुछ ऐसे भी स्वार्थी समाजद्रोही थे जो संकटापन्न स्थिति का लाभ उठाकर अपनी तिजोरियाँ भरने में लग गये थे । प्रस्तुत नाटक में भाषा की समस्या पर भी व्यंग्य किया गया है । गंगा-अंग्रेजी भाषा पढ़ने का प्रेमी है किन्तु पिंकी उससे हिन्दी पढ़ने को कहती है । महेन्द्र ऐसे अंग्रेजी-परस्त लोगों पर व्यंग्य प्रकट करते हुए कहता है —

"अंग्रेज चले गये, मगर उनकी अंग्रेजी का राज अभी कायम है । कितनी अफसोस की बात है कि आजाद देश में कोई अपनी भाषा को पनपने ही नहीं देता ।"[२]

---

१. घाटियाँ गूंजती हैं —डॉ० शिवप्रसाद सिंह,पृ० ५०,प्र०सं० १९६२ ई०
२. हम एक हैं —कणादऋषि भटनागर, पृ० ६, प्र०सं०,१९६४ ई०

नवेन्द्रनाथ व्यापारी संकटकाल में अपने व्यापार द्वारा पर्याप्त धन एकत्रित कर लेता है । नाटककार ऐसे लोगों को हास्य का आलम्बन बनाते हुए पर्याप्त उपहास किया है ।[१]

आंधी और तूफान

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल द्वारा लिखित यह नाटक १९६२ के चीनी आक्रमण से सम्बन्धित है । नाटकपूर्णरूपेण राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है किन्तु द्वितीय अंक में हास्य की अवतारणा की गई है । पप्पन नामक छोटा लड़का अपने नौकर रामू को घोड़ा बनाकर उस पर बैठ जाता है । रामू तीन बार चक्कर लगाकर एकाएक रुक जाता है । पप्पन के पूछने पर रामू घोड़े को मरा हुआ बताता है । रामू पप्पन के वार्तालाप में स्मित हास्य तथा वाक्छल का उदाहरण प्राप्त होता है ।

'पप्पन --घोड़ा रुक क्यों गया ?
रामू --इस लिए कि घोड़ा चलते-चलते मर गया ।
(रामू जमीन पर सिर टिका देता है)
पप्पन-- अगर घोड़ा मर गया है तो फिर बोलता कैसे है ?
कहिए
रामू --अभी ताजा मरा है ।'[२]

हाजीपीर का दर्रा

राजकुमार द्वारा १९६५ में लिखित यह नाटक कश्मीर पर कब्जा करने की पाकिस्तानी अभियान पर आधारित है । पाकिस्तान पिछले बीस वर्षों से परिस्थिति अपने अनुकूल देखकर कश्मीर के मांग का प्रश्न करता आया है किन्तु

---

१. हम सब हैं --कृष्णदत्त भटनागर , पृ०३६, प्र०सं०,१९६४ ई०
२. आंधी और तूफान -- डॉ० कंचनलता सब्बरवाल,पृ० ९६ , प्र०सं०१९६३ ई०

पाकिस्तानियों की कश्मीर के प्रति नीति स्पष्ट नहीं होती है। नाटककार ने पाकिस्तानी लोलुप वृत्ति पर व्यंग्यात्मक कटाक्ष करते हुए भारतीय गणतन्त्र में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित किया है।

नाटक के आरम्भ में ही राजकुमार ने मोहम्मद तथा अकबर का वार्तालाप कराकर पाकिस्तानी सैनिकों को हास्य का आलम्बन बनाया है। जिन्न नामक एक पाक सैनिक युद्धस्थल से भारतीय सेनाओं के भय के कारण भाग जाता है। वार्तालाप के प्रसंग में अकबर का कथन व्यंग्यात्मक ही है -

"मोहम्मद- अबे ओ गावदी, वह जिन्न कहां है ?
अकबर- धुंआ बनकर भाग गया।
जालिम खां-(क्रुद्ध होकर) धुआं बनकर दुनियां से कूच करने की तैयारी अब तुम करो।
अकबर- (उठकर खड़ा हो जाता है) क्या, पाकिस्तानी मुजाहिदों की मंजिल यही है।"[१]

कप्तान ने नूरखां को कश्मीर के गांव में आगजनी के लिए भेजा था किन्तु वह भयवश वहां न जाकर अन्यत्र चला गया और गोली लगने का बहाना कर लिया। नूरखां के सम्बन्ध में कहे जालिम खां के शब्दों में वाक्छल का उदाहरण प्राप्त होता है -

"कप्तान -लेकिन मैंने तो उसको एक गांव में आग लगाने भेजा था।
जालिम खां - लेकिन उसके दिल में तो किसी और ने ही आग लगा रखी है।"[२]

कश्मीर की सीमा पर भारतीय सैनिकों में बोधासिंह, रामसिंह, शोभनाथ, मोहर खां, पाण्डे, रणधीर आदि नियुक्त हैं। पाण्डे जी तथा शोभनाथ

---

१. हाजीपीर का दर्रा - राजकुमार, पृ० १४, प्र०सं०, १९६५ ई०
२. वही, पृ० ३७

विनोदी प्रकृति के हैं । शोभनाथ पाड़े की खिल्ली उड़ाता है । वह पाड़े जी के पास झूमकर आता है और उनका परिहास करता हुआ कहता है --

"पाड़े गइलन डाड़े-डाड़े मारलिखलन मैभकुंी ।
साथ पढ़ाइन कूछ बनाई बन तू गपुकी ।।"[१]

शोभनाथ के परिहास में सजीवता अधिक है । अपने प्रिय तथा सीधे सादे मित्रों के प्रति चिढ़ाने के लिए प्राय: लोग इसी प्रकार का परिहास किया करते हैं । राजकुमार जी ने इन भावनाओं का चित्रण मनोवैज्ञानिक स्तर पर किया है । इसलिए उनके हास्य व्यंग्य में शिष्टता अधिक है ।

यह दोस्त हमारा दुश्मन है

एम०बी० रणादिवे कृत यह नाटक व्यंग्य प्रधान है । इसमें रणादिवे जी ने भारतीय जवानों के बहादुरी की सत्य कथाओं को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है । भारतदेश सर्वेव से मैत्री का दावा करता रहा है । विश्व को मानवता का अमर सन्देश देने का गौरव भी इसी देश को है । हमारा देश सीमावर्ती सभी देशों से मित्रवत् आचरण करता रहा है ।" हिन्दी चीनी भाई-भाई के साथ ही साथ पाकिस्तान के हर मुसीबत में सहायक रहा । किन्तु दोस्ती के नाम पर देश के प्रति विश्वासघात करने वाले चीन के प्रति प्रस्तुत नाटक व्यंग्य रूप में लिखा गया है जिसमें यत्र-तत्र स्मित हास्य की झलक मिल जाती है किन्तु हास्य में मौलिकता का अभाव है । निम्न उदाहरण को व्यंग्य से समाहित किया जा सकता है ।

"राम्मू -- चली भई, छुट्टी ।

दुर्गादास --हाँ, मिल चुकी छुट्टी । तुम क्या समझते हो, इन चीनियों को हमेशा के लिए छुट्टी दिये बिना ही मिलेगी ।"[१]

निष्कर्ष-

युद्धों पर आधारित नाटकों में राष्ट्रीयता का स्वर ही सर्वाधिक मुखरित हुआ है । यत्रतत्र हास्य-व्यंग्य का उदाहरण भी मिल जाता है किन्तु हास्य की जो सहज सम्वेदना मानी जाती है उसका अभाव ही इन नाटकों में मिलता है । स्मित के यत्रतत्र शिष्ट और सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं । स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी नाटकों में विशृंखलता तथा विघटनकारी प्रवृत्ति अधिक मिलती है । नाटकों में मनोगत कुण्ठाओं के माध्यम से हास्य-व्यंग्य की सृष्टि हुई है ।

---

१. यह दोस्त हमारा दुश्मन है --एम०वी० रणादिवे,पृ० २५,प्र०सं०,१९६२ ई०

दशम अध्याय

हिन्दी नाटकों में एलीगरी का विकास

(एलीगरी-विवेचन, अंग्रेजी नाटकों में एलीगरी, अन्यापदेशिक नाटक, हिन्दी नाटकों में एलीगरी — कामना, नवरस, ज्योत्स्ना, छलना, मादाकैक्टस एवं रक्तकमल, निष्कर्ष)

अध्याय - १०

हिन्दी नाटकों में एलीगरी का विकास

एलीगरी-विवेचन:--

अंगरेजी का एलीगरी शब्द लैटिन के एलिगरिया शब्द से निष्पन्न हुआ है। प्राचीन लैटिन साहित्य में यह शब्द लाक्षणिकरूपक के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। अंगरेजी साहित्य में किसी निश्चित वस्तु के माध्यम से अन्य वस्तु का अभिव्यंजनात्मक वर्णन करना एलीगरी कहा जाता है। अंगरेजी में यह एक आलंकारिक उपदेश है जिसमें लेखक या वक्ता उस विचार को जो अपने गुणों और परिस्थितियों में उस आलंकारिक उपदेश से मिलता जुलता होता है, श्रोता या पाठक के मस्तिष्क में अभिव्यंजित करता है।[१]

एलीगरी का प्रयोग प्राचीनकाल से होता आ रहा है। दार्शनिकों ने सर्वप्रथम इसका अधिक सहारा लिया। जिन लोगों ने इस माध्यम का प्रयोग किया उनमें सर्वप्रथम नाम प्लेटो का आता है। रिपब्लिक में प्लेटो की सर्वाधिक प्रभावकारी एलीगरी 'आफ् दि केव' मिलती है जिसके द्वारा उसने सत्य और प्रतीति का अन्तर स्पष्ट किया है। प्राचीन काल में कलाओं में भी एलीगरी के विविध रूप प्राप्त होते हैं। प्रोधीन के 'परसुइंग क्राइम' एवं वाट्स के अनेक अन्यापदेशक चित्र एलीगरी के उदाहरण हैं। होलमन हन्ट के प्रसिद्ध चित्र 'दि लाइट आफ दि वर्ल्ड' जो सैन्टपॉल चर्च में है पिक्टोरियल एलीगरी का सुन्दर उदाहरण है। रैनाल्ड-

---

१. "In literature, a figurative discourse in which the writer or speaker conveys to the mind a parallel idea by its resemblance in its properties and circumstances to the subjects of his ostensible discourse."

- Everyman's Encyclopedia Pages 210, Fifth Edition.

स्टीफेन्स का गूप जिसमें एलिजाबेथ और स्पेन के फिलिप्स जहाजों की मुहरें बनाकर शतरंज खेल रहे हैं, मूर्ति सम्बन्धी एलीगरी का उदाहरण है जो दो राष्ट्रों के उस संघर्ष को दिखाता है जिसमें वे समुद्र के ऊपर आधिपत्य करना चाहते हैं। मूर्तिकला में इस माध्यम का प्रयोग करने वाले 'ज्यू आफ अलेक्जेन्ड्रिया' उल्लेख्य है।

एलीगरी और उपदेशात्मक कहानी में अन्तर है। उपदेशात्मक कहानी का उद्देश्य नीति सम्बन्धी उपदेश और जीवन के लिए प्रेरणात्मक पाठ बताना होता है किन्तु एलीगरी सीमित नहीं होती। फेबिल में असम्भव तत्त्वों पर अधिक बल दिया जाता है। और जो नहीं बोल सकते हैं वे वस्तुएं भी बोलती हैं जबकि एलीगरी में विश्वसनीयता तथा वास्तविकता रहती है। एलीगरी प्राय: अशरीरी (अरूप) विचारों के मानवीकरण के लिए प्रयुक्त होता है जो उस अरूप सिद्धान्तों के ग्रहण में मस्तिष्क की सहायता करता है। स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म को अभिव्यक्त करता है।[१] ईसा ने छोटी-छोटी एलीगरियों द्वारा जनता को उपदेश दिया था और धार्मिक सत्य को इसी माध्यम से अधिक ग्राह्य बना दिया था।

कवि स्पेन्सर ने 'फेरी क्वीन' नामक काव्य में 'अर्ल आफ लैस्टर' सर फिलिप सिडनी तथा तत्कालीन अन्य व्यक्तियों के साथ स्वयं महारानी एलिजाबेथ का एलीगरी के रूप में चित्रण किया है। सर थामसमोर ने अपनी पुस्तक 'यूटोपिया' में एलीगरी के द्वारा एक कल्पित देश के विषय में अपने विचार रखे हैं कि एक देश का शासन कैसे होता है। स्विफ्ट ने अपनी प्रसिद्ध एलीगरी 'बैटिल आफ बुक्स' और 'टेलआफटब' में अपने समय के पाखण्ड तथा दोषों पर व्यंग्य किया है। सुधारकों के पास एलीगरी ही ऐसा हथियार होता है जिससे वे दोषों के ऊपर अप्रत्यक्ष प्रहार करते हैं। इस प्रकार एलीगरी वह लाक्षणिक रूपक है जिसमें किसी निश्चित कार्य के माध्यम से अन्य कार्यों का संकेत करते हुए चरित्रों का मानवीकरण किया जाता है। एन० वेब्स्टर के अनुसार एलीगरी की निम्नलिखित परिभाषा है —

"An Allegory is a prolonged metaphor in which typically a series of actions are symbolic of other actions, while the characters often are types or personifications."[2]

---

1. "Allegory has always been used for the personification of abstract ideas, and for its value in this direction has been much employed to assist the mind in grasping abstract principles."

— Everyman's Encyclopedia Pages 210,211, Fifth Edition

२. एन० वेब्स्टर- न्यू इन्टरनैशनल डिक्शनरी, पृष्ठ ६८, द्वि०सं०

अँगरेजी नाटकों में एलीगरी

अँगरेजी काव्य में एलीगरी का प्रभाव चासरकाल से ही प्रतीत होता है। चासर की कविताओं में यत्र-तत्र एलीगरी का प्रभाव दिखाई पड़ता है। एलीगरी में हम किसी भी व्यक्ति के ऊपर अन्यापदेश के माध्यम से व्यंग्य करते हैं। १५ वीं शताब्दी में अँगरेजी के गद्य साहित्य में एलीगरी का प्रयोग होने लगा था। इसी समय अँगरेजी नाटकों में उत्तरोत्तर प्रगति हुई और सैटायर एवं ह्यूमर की भाँति एलीगरी का भी प्रयोग किया गया। अँगरेजी साहित्य के प्रारम्भिक नाटक धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं पर आधारित होते थे। प्रारम्भ में इन नाटकों का अभिनय यूरोप के गिरजाघरों में कराया जाता था। इन नाटकों द्वारा धार्मिक प्रचार किया जाता था और ये नाटक उपदेशक हुआ करते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के सभी नाटकों की कथायें बाइबिल से संगृहीत की गई थीं। ये नाटक ईसा मसीह के जीवन पर आधारित होते थे और धार्मिक पर्वों पर अभिनीत किये जाते थे।

अँगरेजी नाटकों में विकास के साथ ही साथ उनके क्षेत्र में भी विस्तार हुआ। धार्मिकनाटकों के बाद के समय में नैतिक आधारों पर नाटक लिखे गये। इन नाटकों में एलीगरी का पर्याप्त विकास हुआ। इसीकाल में चमत्कारिक नाटक लिखे गये जिनमें व्यंग्य की प्रतीति होती है। जस्टिस,मर्सी,ग्लटनी एवं वाइस इस काल के अन्यापदेशमूलक मुख्य चरित्र थे। ग्रीक की पौराणिक कथाओं पर आधारित सोलहवीं शताब्दी के नैतिक नाटकों में एलीगरी का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। 'एवरीमैन' इस काल का सर्वोत्कृष्ट नाटक है जिसके पात्र ईश्वर के सामने अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन करने के लिए बुलाये जाते हैं। निकोलस के नाटकों में एलीगरी पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। निकोलस की एलीगरी टैरेन्ट की कामेडी से प्रभावित है। एलिज़ाबेथ के समकालीन नाटकों में स्विफ्ट की एलीगरी प्रशंसनीय है। यह काल नाटकों की दृष्टि से समृद्ध है।

शेक्सपियर के पूर्वकालिक नाटकों में वाग्वैदग्ध का विशेष प्रयोग मिलता है। इस काल के प्राय: सभी नाटककार स्वयं कलाकार थे और आक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज

विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित थे । इस काल में थामस कीड, लिली, राबर्टग्रीन इत्यादि प्रमुख नाटककार थे । लिली सामाजिक थियेटर में अभिनेता था इसलिए उसने सामाजिक अभिरुचि के अनुरूप एलीगरिकल नाटकों का प्रणयन करते हुए तत्कालीन बुराइयों पर व्यंग्य किया है । 'औमैन इन दि मून ,' 'इन्डीमियन', एवं 'मिडास' इत्यादि लिली की प्रसिद्ध एलीगरी हैं । लिली की कामेडी पौराणिक एवं अन्योक्तिपूर्ण कथाओं पर आधारित है । इन नाटकों में सामाजिक दोषों का उद्घाटन किया गया है । लिली के नाटक अभिनय की दृष्टि से कला की दृष्टि से एवं चुटीले व्यंग्य के प्रभाव की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के हैं ।

शेक्सपीयर और बेन जानसन न केवल कालविशेष अपितु समस्त नाट्य-साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं । शेक्सपीयर की कामेडी की कालगत विवेचनायें की गई हैं । कार्लटन ने उसकी कामेडी को चार रूपों में विभक्त किया है । प्रथम रूप में शेक्सपीयर की विट् एवं हास्यप्रधान कामेडी आती है । इन नाटकों में यत्र-तत्र सरकैज़्म का प्रयोग मिलता है । इस दृष्टि से 'लव्स लेबर्स लास्ट' कृति प्रमुख है । शेक्सपियर की कामेडी में हास्य का स्वच्छन्द प्रवाह प्राप्त होता है । इनमें व्यंग्य (सैटायर) का अभाव है । उनका हास्य सहानुभूतिपूर्ण ढंग से व्यक्त होता है । यत्रतत्र अन्यापदेश , मृदुव्यंग्य का प्रयोग भी सुन्दर ढंग से हुआ है । शेक्सपीयर के हास्य का क्षेत्र विकसित है वह कहीं भाषा, कहीं भावों के माध्यम से हास्य प्रकट कर देता है ।

जान बैनियन की प्रसिद्ध एलीगरी 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' है जिसकी रचना १६७८ ई० में हुई थी । इसमें इस भौतिक जगत से अन्य लोकों की यात्रा का वर्णन है । आधुनिक एलीगरी की दृष्टि से एडीसन की 'वीज़न आफ मिर्जा' प्रमुख कृति है ।

इस प्रकार अंगरेजी साहित्य में एलीगरी का पर्याप्त विकास प्राप्त होता है । विभिन्न नाटककारों ने भाँति-भाँति की एलीगरियाँ निर्मित की हैं । उन्हीं के आधार पर हिन्दी में एलीगरीकल नाटक लिखे गये जिनकी संख्या अत्यल्प है तथा

इसमें अंगरेजी एलीगरी जैसा प्रभाव भी नहीं है ।

अन्यापदेशिक नाटक -

अन्यापदेशिक नाटक से अभिप्राय उन नाटकों से है जिसमें मनुष्य के विविध अप्रस्तुत व अदृश्य भावों और विचारों का मानवीकरण करके उन अमूर्त वृत्तियों को मूर्त पात्रों का रूप प्रदान किया जाता है । इस प्रकार की रचनाओं को प्रतीक नाटक, नाट्यरूपक और अध्यवसित रूपक की संज्ञा दी गई है किन्तु डॉ० जगन्नाथ - प्रसाद शर्मा इसे अन्यापदेशिक नाटक[१] से अभिहित करते हैं क्यों अन्यापदेशिक शब्द अंगरेजी के एलीगरी शब्द का सर्वांगपूर्ण अर्थ देने में समर्थ है और इस अर्थ व्याप्ति के अन्तर्गत विविध मानवीकृत भाव तथा विचार और उसके प्रतीक सभी भलीभाँति गृहीत हो जाते हैं ।

इस प्रकार की रचनाओं की मुख्य प्रवृत्ति प्राय: किसी दार्शनिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक तत्व की अभिव्यक्ति करना होता है । इनमें नाटककार का झुकाव दार्शनिक तत्वों की ओर अधिक रहता है । वह विभिन्न भावनाओं को नाटकीय पात्र निर्मित करने का प्रयास करता है । इस प्रकार ऐसी रचनाओं के पात्र लेखक की मान्यताओं अथवा अमुक मनुष्य की भावनाओं के प्रतीक मात्र होते हैं । उनका नामकरण भी प्राय: उन्हीं विशिष्ट अशरीरी भाववृत्तियों और स्थितियों के आधार पर होता है । उनमें प्राय: स्वतंत्र व्यक्तित्व व मांसलता न होकर प्रतीकात्मकता अधिक होती है ।

हिन्दी नाटकों में एलीगरी -

संस्कृत साहित्य में शिल्प की दृष्टि से कृष्णमिश्र का 'प्रबोधचन्द्रोदय' अन्यापदेशिक नाटक है इसी कोटि में अश्वघोष के नाटक आते हैं । 'प्रबोधचन्द्रोदय' में सत्य, बुद्धि, मोह इत्यादि पात्रों की कल्पना की गई है । संस्कृत में इस कोटि

---

१. डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा - प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २३२

है अनेक नाटक प्राप्त होते हैं किन्तु हिन्दी में ऐसे नाटकों की संख्या अल्प ही है ।

कामना--

जयशंकर प्रसाद ने `कामना` में अभौतिक तथा आचरण के भावात्मक तत्व को अन्यापदेशरूप प्रदान किया है । इनके नामों में सार्थकता है । प्रसाद जी ने प्राय: सभी मानवी मनोविकारों का मानवीकरण करके पात्रों का रूप उन्हें प्रदान करते हुए इस नाटक की रचना की है । इसके पात्र सन्तोष, विनोद, विलास विवेक, शान्तिदेव, दम्भ, दुर्वृत्ति तथा क्रूर पात्र और कामना, लीला, लालसा, करुणा, प्रमदा, वनलक्ष्मी तथा महत्वाकांक्षा पात्रियाँ सब अपने अपने नामों के अनुसार ही अपनी प्रकृति को बनाये हुए हैं । इस नाटक के सारे पात्र प्रतीकात्मक हैं और उनमें चारित्रिक विकास नहीं हो सका है । विलास जीवन की भौतिकता का प्रतीक है । विवेक शुद्ध मानवी संस्कृति तथा युग-युग की संचित मनुष्य की स्वच्छन्दताप्रियता का प्रतीक है तो कामना जीवन की उत्कृष्ट इच्छा की । अपनी कोटि की रचना में यह श्रेष्ठ है । हिन्दी के अन्यापदेशपूर्ण रूपकों (एलीगरीज़) में यह सर्वप्रथम रचना है । `कामना` में अन्तर्प्रवृत्तियों के अन्तर्द्वन्द्व और मानवसभ्यता के आरम्भिक सरल जीवन पर नई सभ्यता के आघात-प्रतिघात का नाटकीय चित्रण है । `कामना के कथानक में संग्रहकारिणी वृत्ति के प्रतिनिधि स्वर्ण और आत्मविस्मृति के प्रतिनिधि मद्य के प्रचार द्वारा मानव के प्रारम्भिक सन्तोष और शान्ति से भरे हुए जीवन को चुनौती मिलती है । जनता विलास से शासित होकर भौतिकता को ही सब कुछ समझने लगती है ।`[1]

नाटक के कथानक में फूलों का एक द्वीप है जिसमें कुछ लोग रहते हैं जो अपने को तारा की सन्तान बताते हैं । उनके जीवन का एक नवीन ढंग है । वे खेती बारी करके अपना जीवन यापन करते हैं । प्रसाद जी की कल्पना का यह अनोखा प्रदेश है । यहाँ के निवासी महत्वाकांक्षा, विलास, ईर्ष्या, द्वेष, संघर्ष आदि

---

१. डॉ० रामरतन भटनागर - प्रसाद का जीवन और साहित्य, पृष्ठ ११५, प्र०सं०

दुष्प्रवृत्तियों से बहुत दूर हैं। सभी स्वतंत्र और निर्भीक हैं। कामना वहाँ पूजा-पाठ का आयोजन करती है। वे लोग प्रकृति से ईश्वरीय सन्देश ग्रहण करते हैं।

नाटक का प्रारम्भ उस स्थल से होता है जहाँ कामना समुद्र के किनारे विचारमग्न बैठी है। वह अपनी ओर आते हुए एक नाव को देखती है जिस पर एक विदेशी व्यक्ति बैठा है जिसका नाम विलास है। कामना उसके व्यक्तित्व पर मुग्ध होकर उसका स्वागत करती है। विलास कामना को स्वर्ण तथा मदिरा का चमत्कार दिखाकर अपना प्रभुत्व दिखाता है। अन्य लोगों को भी प्रलोभन देकर भौतिकता की नींव डाल देता है। स्वार्थ तथा छल, प्रपंच का वही प्रणेता है। सारी जनता अपराध, स्वर्ण व सुरा में डूब जाती है। सारे द्वीप निवासी नवीन-नवीन आवश्यकताओं का अनुभव करते हैं और अपनी प्राचीन संस्कृति को विस्मृत कर जाते हैं। अत्याचार, दु:ख, दरिद्रता तथा युद्ध का जन्म हो जाता है। कामना विवेक तथा अपने पति सन्तोष से दूर हटकर विलास पर मुग्ध हो चुकी थी। वह पुन: विवेक की प्रेरणा से सन्तोष से मिलती है। और विलास तथा माया जाल टूट जाता है।

कामना अन्यापदेशपूर्ण रूपक है। इसमें विवेक पात्र व्यंग्यबाण छोड़ने में बहुत प्रवीण है। विलास से उसका वार्तालाप होता है जिसमें हास्य-व्यंग्य की फुलझड़ियां छूटती हैं।

"विलास— तू तो वह व्यक्ति है जिसने बहुत से घायलों को पास की अमराई में इकट्ठा कर रखा है और उसकी सेवा करता है।

विवेक- यह भी यदि अपराध है तो दण्ड दीजिए, नहीं तो समझ लीजिए कि पागलपन है।

विलास- फिर विचार करूंगा इस समय जाता हूं।

विवेक- विचार करते जाइये, कलेजा फाड़ते जाइये, छुरे चलाते रहिए और विचार करते रहिए। विचार से न चूकिए नहीं तो.... ।

विलास- चुप।

विवेक- आहा। विचार और विवेक को कभी न छोड़िए चाहे किसी के

प्राण ले लीजिए परन्तु विचार करके ।"[1]

तीसरे अंक के पांचवें दृश्य में आजकल के चायप्रेमी, सुस्त तथा मनमानी प्रकृति के लड़कों पर इन पात्रों के माध्यम से व्यंग्य किया गया है । आजकल की स्वर्णप्रिय लालसा भरी स्त्रियों पर कटाक्ष किया गया है । बूढ़े पुरुषों की उपेक्षा का भी चित्रण इस रुलीगरी में प्राप्त होता है ।

डॉ० विश्वनाथ मिश्र 'कामना' पर टालस्टाय के 'फर्स्ट डिस्टैलर' एवं बर्नार्ड शा के 'बैक टू मैथ्यूसेलह' का पर्याप्त प्रभाव मानते हैं ।[2] टालस्टाय की रचना में शैतान के एक प्रतिनिधि द्वारा किसानों को पथभ्रष्ट करके अपने प्रभाव में लाने का वर्णन है । यह प्रतिनिधि एक किसान परिवार में नौकर के रूप में कार्य करने लगता है और एक दिन अवसर प्राप्त कर किसान को शराब बनाकर पिलाता है । फिर वह उसे शराब बनाने की रीति भी सिखाता है । धीरे-धीरे उस परिवार से प्रारम्भ करके किसानों के समुदाय में शराब का प्रचार हो जाता है । पहले तो वह शराब पीकर आनन्दोन्मत्त हो जाता है और नृत्य करने लगता है पुन: उसकी बर्बरता उग्र होती है और वे लड़ने झगड़ने लगते हैं । शैतान का दूत किसान को शराब के साथ धन के प्रति आकर्षण उत्पन्न करके उन्हें पूर्णत: सन्मार्ग से विमुख कर देता है ।" यदि फूलों के द्वीप में बाहर से आने वाले विलास की स्वर्ण और सुरा द्वारा फूलों के द्वीपवासियों के जीवन में विकृति उत्पन्न करने की घटना का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो ऐसा निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि प्रसाद जी की यह रचना टालस्टाय से अनुप्राणित है ।"[3] बर्नार्ड शा ने 'बैक टू मैथ्यूसेलह' में आदिम युग से प्रारम्भ करके सहस्रों वर्ष बाद के मानवजीवन के विकास का वैज्ञानिक विवरण प्रस्तुत किया है । इस रचना से संकेत ग्रहण कर मानवीय सभ्यता का काल्पनिक

---

१. जयशंकर प्रसाद- कामना, पृष्ठ ८१

२. डॉ० विश्वनाथ मिश्र - हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ० २३२, प्र०सं०

३. डॉ० नगेन्द्र -प्रसाद का नाट्य साहित्य - परम्परा और प्रयोग, पृष्ठ १२५, प्रथम संस्करण

आख्यान प्रसाद ने एकत्रित किया हो तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि प्रसाद एक दार्शनिक, एवं प्राचीन संस्कृति के पुरातत्ववेत्ता थे। 'कामना' के विषय में जिस विचारधारा का पोषण उन्होंने किया है उसका मूल-स्रोत महाभारत, औपनिषद् एवं संस्कृत नाटकों में पहले से ही मिलता है।' इस नाटक में लेखक ने जो कुछ व्यक्त किया है वह सार्वजनिक भी हो सकता है और वैयक्तिक भी। इसीप्रकार इसे केवल सार्वदेशिक और केवल भारतीय समाज का चित्र कह सकते हैं।"[१]

नवरस (१९३० ई०)

'नवरस' डॉ० सेठ गोविन्ददास की प्रमुख एलीगरी है। इसमें संस्कृत नाट्यशास्त्र के नव प्रधान रसों वीर, अद्भुत,भयानक,वीभत्स, रौद्र, शान्त, शृंगार,करुणा और हास्य के मानवीकरण द्वारा वर्तमान समय की प्रधान समस्या युद्ध का विवेचन और समाधान प्रस्तुत किया गया है। इन नवरसों के पूर्णमानवीकृत रूप नवविविध पात्र क्रमश: वीरसिंह, अद्भुतचन्द्र, भीम, ग्लानिदत्त, रुद्रसेन, शान्ता प्रेमलता, करुणा और लीला है। मानवरूप में उपस्थित इन भिन्न-भिन्न रसों का नामकरण उपयुक्त ढंग से होने के साथ-साथ प्राचीन शास्त्रों के अनुसार इनका पारस्परिक सम्बन्ध निर्वाह प्रदर्शित करने एवं रसों के प्रतिपादन में उनके रंगरूप के अनुकूल ही वेश-भूषा इत्यादि का वर्णन देने में सेठजी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। नाटक के अन्त में वीररस के प्रतीक वीर सिंह एवं शृंगाररस की प्रतीक प्रेमलता का विवाह शास्त्रीय पद्धति के अनुकूल है। इसी प्रकार लीला का श्वेत, रुद्रसेन का लाल, भीम की काली, अद्भुतचन्द्र की पीतवर्ण की, एवं वीरसिंह की स्वर्णिम की वेश-भूषा उन्हीं पात्रों के अनुरूप एवं प्राचीन शास्त्रीय पद्धति पर आधारित है।

प्रस्तुत एलीगरी की कथावस्तु रुचिकर एवं विनोदपूर्ण है। नवरसों के आधार पर कथानिर्वाह करने में सेठ जी को सफलता मिली है। नाटक के कई दृश्य

---

१. डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा-प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन,पृ० २३३

प्रभावशाली हो गये हैं। द्वितीय अंक का छठा दृश्य सर्वाधिक रोचक है। प्रतीकात्मकता की दृष्टि से यह एकांकी महत्त्वपूर्ण है। रसों का प्रतीक रूप में नाटकीय चित्रण बड़ी स्वाभाविक कुशलता से सम्पन्न हुआ है। प्रत्येक रस एक सजीव पात्र के रूप में उपस्थित हुआ है। इन प्रतीकपात्रों के कथनोपकथन व्यवहार एवं कार्य, अपने-अपने रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति करते हैं। इन पात्रों में मानवीयशक्ति निहित करने का कार्य नाटककार ने किया है। संवादों में यत्र-तत्र सुन्दर व्यंग्योक्तियों का प्रयोग किया गया है। प्रथम अंक के तीसरे और तृतीय अंक के पहले दृश्य में अद्भुतानन्द और लीला के वार्तालाप में हास्य-व्यंग्य के तत्व प्रचुर मात्रा में व्याप्त हैं।

इस एकांकी में युद्ध की समस्या को गांधीजीवनदर्शन के व्यावहारिक आदर्शों द्वारा सलझाने का प्रयास किया गया है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि स्वदेश की रक्षा युद्ध से नहीं अपितु अहिंसावादी दृष्टिकोणों से हल की जा सकती है। हिंसा की वेदी पर महायज्ञ सम्पन्न करने से युद्ध की समस्या हल नहीं हो सकती अपितु अहिंसात्मक भावों को जागरित कर ही यह समस्या हल हो सकती है। इस एकांकी में युद्धवादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य व्यक्त है। इस नाटक में शान्ता अहिंसा की प्रतीक है। उसके कथनों, युक्तियों एवं क्रियाकलापों से गांधीजी के आदर्शों का पोषण होता है। शान्ता की अन्तिम विजय होती है जो पाशविक बल पर आत्मिकबल की विजय है। यह युद्ध पर अहिंसात्मक सत्याग्रह की विजय है।

ज्योत्स्ना (१६३४)

सुमित्रानन्दन पन्त मुख्यत: प्रेम, सौन्दर्य और कल्पना के कवि हैं। 'ज्योत्स्ना' नामक एकांकी में उनका नाटककार की अपेक्षा कवि रूप ही अधिक प्रकट हुआ है। निराला जी के शब्दों में 'ज्योत्स्ना में उनका पहला प्रिय, भावमय, स्वेत-वाणी का कोमल कविरूप ही दृष्टिगोचर होता है।'[१] प्रस्तुत नाटक पांच अंकों में

---

१. ज्योत्स्ना(पन्त) विज्ञापिका, पृष्ठ १, वि०सं०

विफल है। कथावस्तु में विशेष रोचकता नहीं है। मर्त्यलोक में सर्वत्र पशुबल घृणा, द्वेष, भेदभाव, अहंकार और धर्मान्धता का आधिक्य देखकर इन्द्र उसके समस्त शासन का कार्यभार अपनी रानी ज्योत्स्ना को समर्पित कर देता है। ज्योत्स्ना मर्त्यलोक में अवतरित होकर पवन और सुरभि अर्थात् स्वप्न और कल्पना की सहायता से मानव-जाति में सात्त्विकता का संचारकर सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने में सफल होती है।

नाट्यदृष्टि से इस रूपक का आवरण रोचक एवं निर्दोष न होकर प्राय: आकर्षणरहित और शिथिल-सा है। लक्ष्य प्राप्ति के बाद अन्त की विस्तृति व्यर्थ एवं अरुचिकर है। इस अन्यापदेशिक नाटक में कल्पना की क्रीड़ा एवं दार्शनिक पक्षों का इतना आधिक्य है कि इसका नाटकोचित विकास इसके काव्य-सौन्दर्य और सैद्धान्तिकता में उलझ गया है। नाटककार अनेक प्रतीक पात्रों को स्पष्ट रूप देने में असमर्थ रहा है। भावात्मक पात्रों—इन्द्र और पवन आदि की प्रतीकात्मकता अस्पष्ट है। इसलिए इन पात्रों के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी है। नाटक में कवि ने गीतों का सन्निवेश किया है। कहीं छाया का अलापा हुआ गीत है, कहीं पवन का सनसनाता गान है तो कहीं तारों का टिमटिमाता हुआ गीत है। इन गीतों में कवि के सुकुमार भावों की काल्पनिक उन्मुक्तता, शब्दशक्तिपूर्ण-चित्रमयता एवं भावाभिव्यक्ति की शक्ति सहजतया प्राप्त हो जाती है। दृश्यों के चित्रण में पन्त जी को सफलता मिली है। उनकी सूक्ष्मदृष्टि एवं कल्पना शक्ति ने सन्ध्या, ज्योत्स्ना, तथा छाया आदि अमूर्त वस्तुओं का मानवीकरण कर दिया है। ऐसे चित्रोपम वर्णन स्थान स्थान पर बिखरे पड़े हैं किन्तु इनमें अधिकांश चित्र अलंकारिकता के बोझ से लदे रहने के कारण व्यक्त नहीं हो पाये हैं। उदाहरणार्थ ज्योत्स्ना का निम्नरूपित दृष्टव्य है —"ज्योत्स्ना अनिन्द्यसुन्दरी, आलोक बिम्बानन, उषास्मित कपोल, विशाल नीलनभ नयन, पक्ष्मिल पलकें, विद्युत् रेखा सी भृकुटि, प्रवाल ज्वाल अधर, मुक्तालयदशन, लक्ष्मीसौन्दर्यशिखाओं सी उंगलियां, आलोक रोओं की अर्धोन्मीलित कंचुकी, कदम्ब गेंद से उठे उरोज, सलमे-सितारे की हल्की निहारिका की साड़ी, पृष्ठदेश से लहराती हुई रेशमी चांदनी, बालों से छनते हुए आलोक

प्रसार की तरह भूलकर फर्श को चूम रही है।"[१]

नाटक में कल्पना और दार्शनिकता के बोझ से नाटकीयता का अभाव हो गया है। यत्र-तत्र सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है। इसका उद्देश्य मानव को महान शोषों से मुक्त करके महान् बनाना है। सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने में व्यंग्य की प्रधानता है। ज्योत्स्ना मानवता को महान् बनाने का प्रयास करती है -- "इस बुद्धिवाद के भूलभुलैये में खोई हुई जड़वाद सापेक्षवाद, विकासवाद आदि अनेक वादविवादों की टेढ़ी मेढ़ी बेढंगी गलियों में भटकी हुई, नास्तिकता और सन्देहवाद से पीड़ित पशुओं के अनुकरण में लीन मानवजाति का परित्राण करना है। उसकी आँखों के सामने जीवन का नवीन आदर्श, सौन्दर्य का नवीन स्वप्न स्नेह, सहानुभूति एवं समत्व का नवीनप्रकाश सुख और शान्ति का नवीन स्वर्ग निर्माण करना है। उनकी बुद्धि को अधिकसरल हृदय को अधिक उज्ज्वल बनाना है। उसे जड़ता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की ओर रूप से भाव की ओर अग्रसर करना है[२]।" इस प्रकार इसमें पन्तजी ने वर्तमान समय की यथार्थदशा का व्यंग्यात्मक दिग्दर्शन करवा कर अनेक समस्याओं को उठाते हुए उसके परिहार की कामना की है। इन समस्याओं के समाधान हेतु जिन आदर्शों की सृष्टि की गई है उन्हीं का साध्य रूप यह ज्योत्स्ना (मूनशाइन) है किन्तु इस रचना में जो समाधान प्रस्तुत किये गये हैं वे वास्तविक न होकर काल्पनिक हैं। उनमें जीवन की वास्तविकता का स्पर्श नहीं है। इस प्रकार इस एलीगरी में काव्यात्मक चित्रणों की प्रचुरता है किन्तु यथाप्रसंग विचारात्मकता एवं व्यंग्य का समावेश भी ~~सफल~~ हो गया है।

छलना (१९३९ ई०)

'छलना' भगवतीप्रसाद बाजपेयी का अन्यापदेशिक दृष्टि से सफल नाटक है। नाटककार ने कथावस्तु के निर्वाह, पात्रों की चरित्रचित्रण एवं रीति में नवीनता रखी है। इस नाटक की पृष्ठभूमि में न तो प्रसाद के 'कामना' की तरह फूलों का

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त - ज्योत्स्ना, पृष्ठ १९-२०, द्वि०सं०

२. वही, पृष्ठ ४९-५०

दीप है और न पन्त के 'ज्योत्स्ना' की तरह इन्द्रलोक की रमणीय छटा है। इसमें हमारे नित्यप्रति के मांसल जीवन और उसके संघर्षों एवं समस्याओं का विवेचन नाटककार ने अपने ढंग से किया है। प्रस्तुत छलीगरी एवं 'कामना' तथा 'ज्योत्स्ना' में एक विशेषप्रकार का अन्तर यह है कि जहाँ 'छलना' में मानव मन के विभिन्न मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है वहाँ इन दोनों नाटकों में प्रेम के नवीन स्वर्ग एवं सुख और आनन्द के आदर्शलोक की स्थापना की गई है।

यह नाटक तीन अंकों का है। इसका कथानक रोचक है। इसमें सैद्धान्तिकता तथा नीरसता का अभाव है। इसमें नवीनता एवं आकर्षण है फिर भी इसका नाटकीय परिवेश दोषपूर्ण है। इसमें चम्पा, जौहर, सूरे एवं आनंद आदि पात्रों का मूल घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीकारण इन पात्रों से सम्बन्धित दृश्य कथावस्तु के अंग बन नहीं पाये। नाटककार मनोविकारों के चित्रण में पूर्णतः सफल है जो मानवीय यथार्थता का स्पर्श करता हुआ प्रतीत होता है। इसमें स्त्रीपात्रों में कल्पना, कामना और चम्पा तथा पुरुषपात्रों में बलराज और विलास की अवतारणा की गई है। कल्पना और कामना क्रमशः राजसी एवं तामसी वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। कामना का ही दूसरा रूप निद्रा है। चम्पी तमोभिभूत और सात्त्विक प्रकृति की है। कल्पना को हम आद्यन्त बलराज की सन्तोषवृत्ति एवं संयमशील स्वभाव से दुःखी एवं खिन्न सा पाते हैं। उनके हृदय में विलास की मधुरिमा के प्रति मोह है किन्तु वह आत्मबल एवं चरित्रबल के कारण उसके आकर्षण में बहती नहीं है। कामना का जीवन भी उसके असन्तोष एवं चंचलता से विषमय बना रहता है। इन दोनों स्त्रीपात्रों का विलास से हटकर बलराज के त्याग तत्त्व से प्रभावित होना इस बात का द्योतक है कि जब तक कल्पना आदर्श की छत्रछाया में एवं कामना आदर्श की गोद में पल्लवित पुष्पित होती है तभी वे कल्याण के साथ रहती है अन्यथा आदर्श को छोड़कर उनकी दशा पतवार रहित नौका की भाँति हो जाती है। यह आदर्शवाद यथार्थता से सम्पृक्त होने के कारण अस्वाभाविक नहीं हुआ है। नाटक में चम्पा की अवतारणा कल्पना और कामना के चरित्रों की रूपरेखाएं स्पष्ट करने के लिए की गई है। चम्पा की वास्तविक स्थिति यद्यपि कल्पना एवं कामना

से अधिक शोचनीय है फिर भी उसका जीवन एकांगी, कर्महीन एवं लक्ष्यहीन नहीं हो पाया है। इसीलिए उसे जो मानसिक शान्ति प्राप्त है वह अन्य स्त्री पात्रों को नहीं मिली है।

इस एलीगरी में पुरुषपात्रों का चरित्र पर्याप्त प्रौढ़ है। उनमें प्रतीकवादी तत्व प्राय: निर्बल है। उनका मांसल व्यक्तित्व वास्तविक पात्रों जैसा है। बलराज आदर्शवादी पात्र है और वह पुरुष के पौरुष का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य पुरुष पात्र विलास बलराज की चारित्रिक विशेषताओं के प्रतिकूल है। इसके चरित्र में वाजपेयी जी ने पुरुष के चरित्र बल की कमजोरी का व्यंग्यचित्रण प्रस्तुत किया है। नाटक में आद्योपान्त वचनवैदग्ध्य प्राप्त होता है। यह एलीगरी उत्कृष्ट कोटि की मानी गई है।

मादा कैक्टस (१९५६ ई०)

लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा प्रणीत 'मादा कैक्टस' अन्यापदेशिक (एलीगरिकल) नाटकों की सरणि में सुन्दर एवं नवीनतम कड़ी है। इसकी मूल अनुभूति बड़ी गहन है और प्रतीक योजना विचारोद्दीपक है। इसमें नाटककार ने नये पुराने मूल्यों, मर्यादाओं एवं विचारों के संघर्ष से उत्पन्न समस्याओं का व्यंग्यपूर्ण किन्तु संयमित ढंग से प्रकटीकरण किया है। 'मादा कैक्टस' के अरविन्द और आनन्द नये मूल्यों (न्यू वैल्यूज़) के ठेकेदार हैं। ददा का निम्न कथन सचाई के अत्यन्त निकट है -- 'सोशल स्ट्रक्चर पर विश्वास नहीं, सारे ट्रेडीशन को आपने तोड़ा। पुराने मारेल वैल्यूज़ को आपने ठीक समझ लिया। फिर आपके पास में है क्या, जिसके सहारे आप जीएंगे और अपनी कलाकृतियाँ तैयार करेंगे।'[१]

अरविन्द अपनी स्त्री को मौत समझता है जिसके लिए ददा उन्हें बार-बार समझाता है। आजकल समाज में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो वास्तविक सौन्दर्य से उन्मुख होकर बनावटी सौन्दर्य की चाह करते हैं। अरविन्द इसी प्रकार का एक पात्र है जो अत्याधुनिक है। वह कैक्टस की तुलना में नये मूल्यों से करता है। ददा

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल - मादाकैक्टस, पृष्ठ ४८-४९, प्र०सं० १९५६ ई०

प्राचीन मूल्यों का प्रतीक है । दोनों का वार्तालाप व्यंग्यात्मक है —

'अरविन्द —इन कैक्टस में कहीं सौन्दर्य छिपा है, रस और शक्ति छिपी है ।

दद्दा — ये 'कैक्टस' (व्यंग्य की हंसी) बिना फूल के ये डरावने बदशक्ल, ठूंठ बौने पौधे । प्यार से भी छुओ तो कांटों के जहरीले डंक मारने वाले । ही... ही..... ही ।'[1]

इस नाटक में आनन्दा, अरविन्द, सुधीर, सुजाता, दद्दा जी, डॉ० पापा, एवं गंगाराम प्रतीक पात्र हैं । नाटककार इन पात्रों के माध्यम से व्यंग्यमूलक स्थितियों के सश्क्तचित्रों द्वारा पुरानी मर्यादाओं के प्रति आस्था न रखने वालों को सोचने समझने के लिए विवश कर देता है । बाहर से थोथी गम्भीरता का आवरण धारण करने वाले ये पात्र अन्दर से खोखले हैं । इस प्रकार के लोगों पर नाटककार व्यंग्य करता है । सुधीर और दद्दा की सामाजिक मूल्यों के प्रति व्यक्त की गई आलोचनाएं बड़ी कटु हैं ।

नाटककार 'कैक्टस' की तुलना नये इंसान से करता है । 'कैक्टस' नये मूल्यों का प्रतीक है । अरविन्द नई जिन्दगी की तुलना विरोधी परिस्थितियों में अडिग रहने वाले कैक्टस से करता है जिस पर दद्दा व्यंग्योक्ति करता है । अरविन्द और दद्दा का वार्तालाप व्यंग्यात्मक है —

'अरविन्द — आप लोगों की जिन्दगी तो केवल सुन-सुनाकर और सोकर भी तो कटी है, और हमारी जिन्दगी...... ।

दद्दा — आपकी जिन्दगी !...... आप...... और जिन्दगी ! (रुककर) जिन्दगी का रूप यह नहीं होता । वह तो बहुत पीछे छूट गई ।'[2]

__रक्तकमल (१९६२ ई०)__

लक्ष्मीनारायण लाल का यह दूसरा अन्यापदेशिक नाटक है । इस नाटक में यथार्थ समाज का व्यंग्यचित्र प्रस्तुत किया गया है । इसमें चरित्रों के मनोभावों, द्वन्द्वों एवं उनकी आन्तरिक शक्ति का चित्रण मिलता है । इस नाटक में कमल, मदा-

---

१. लक्ष्मीनारायण ई० लाल-मादा कैक्टस, पृष्ठ ४९, प्र०सं० १९५९ ई०

२. वही, पृष्ठ ३६

बीरदास,डॉ० देसाई अगस्त्य,अमृता, गुलराम, अनु और सारंग इत्यादि पात्रों के माध्यम से समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है । महावीर राजनीतिक नेता है जो बाहर से आदर्शवादी विचारों का पोषक और अन्दर से भयंकर है । वह झूठ, फरेब,बेईमानी का प्रतीक बन जाता है । वह समाज के सुधार हेतु कुछ भी नहीं करना चाहता । कमल समाजवादी विचारों का प्रतीक है । वह देश की दुर्दशा का कटु अनुभव करते हुए महावीर की आलोचना व्यंग्यात्मक ढंग से करता है । कमल एकता, राष्ट्रीयता और चेतना का प्रतीक है । वह सामाजिक असमानता और गरीबी,अशिक्षा आदि का चित्रण करते हुए महावीर पर व्यंग्य करता है — "आदमी अपने घोर सत्य का मुकाबला नहीं कर पाता । वह अपने से भागकर किसी असत्य में शरणलेता है । लीडर देश की जनता को मूर्ख बनाकर हमारा नेता बनता है ।"[१]

इन नाटकों के पात्र वर्तमान समस्याओं के उद्घोषक चरित्र हैं । ये अनुपम चरित्र, नाटककार की कल्पना शक्ति, प्रतिभा, मौलिकता एवं सूक्ष्मदृष्टि व के परिचायक हैं । इन नाटकों में अधिकांश पात्रों की बातचीत की विदग्धता , संकेतात्मकता, एवं गहरी सूझ के तत्व संजोये हुए व्यंग्य आकर्षक हैं । नवीन विचारों पर टिके हुए इन नाटकों में प्रतीकात्मकता अत्यन्त गम्भीर है । इनके पात्र सजीवपात्र हैं और मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों, सबलताओं, दुर्बलताओं एवं कुण्ठाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

निष्कर्ष :-

हिन्दी में अन्योपदेशपूर्ण नाटक अंगरेजी के एलीगरीज़ के माध्यम से आये । इनमें व्यक्त व्यंग्य सजीव एवं चुटीले कम पड़े हैं । इस विधि के नाटकलेखन का हिन्दी में प्राय: अभाव है । जिस व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति को अंगरेजी के एलीगरी प्रकट करते हैं हिन्दी में वैसी व्यंग्याभिव्यक्ति नहीं हो पायी है ।

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल,पृष्ठ ३०, प्र०सं० १९६२ ई०

उपसंहार

उपसंहार

हास्य की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में उपेक्षा की वृत्ति प्राचीनकाल से ही मिलती है। सम्यक् रूप से इसे व्याख्यायित करने की दृष्टि हिन्दी साहित्य में नहीं थी। यदा-कदा हंसना तो समाज में चलता रहा किन्तु साहित्य में बराबर इसकी उपेक्षा होती रही। संस्कृत-साहित्य में शृंगार से हास्य की उत्पत्ति मानी गई किन्तु उस साहित्य में शृंगार रस जितना लोकप्रिय रहा उतना ही हास्य उपेक्षित। हास्य का विवेचन प्राय: दार्शनिकों, मनोविज्ञानिकों ने ही किया है। गहनचिन्तन में निमग्न दार्शनिकों के मार्ग में हास्य बाधक रहा इसीलिए प्राय: इसकी उपेक्षा की गई।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा हिन्दी नाट्य-साहित्य को सर्वविध सम्पन्न किया। भारतेन्दु जी ने अपने समय की असमानता, अन्याय, लूटखसोट, अत्याचार को देखा तथा उसके विरोध में हास्य-व्यंग्य का आश्रय लिया। अंग्रेजों के अत्याचार के खिलाफ कुछ कह सकना असम्भव था इसलिए हास्य-व्यंग्य का ही आधार लेकर अंग्रेजों की बुराइयां चित्रित की गईं। भारतेन्दु जी ने हास्य-व्यंग्य के माध्यम से राष्ट्रीय नवचेतना का भी मार्गदर्शन किया। उन्होंने राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित किया। भारतेन्दु युग के अधिकांश नाटकों में विनोदप्रियता है। राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, देवकीनन्दन त्रिपाठी ने हास्य-व्यंग्य के विकास में विशिष्ट योगदान दिया।

पारसी नाटक कम्पनियों का ध्येय धनोपार्जन करना मात्र था। इसलिए कम्पनियों द्वारा जनप्रिय नाटक ही प्रस्तुत किये जाते रहे। मानव मन के मनोरंजन के लिए हास्य सर्वोत्कृष्ट साधन है। इसलिए मानव मन को अनुरंजित कर

इस क्षेत्र में इन मंडलियों के नाटककारों ने यथेष्ट प्रयास किया किन्तु धीरे-धीरे इन नाटककारों ने अश्लील एवं गन्दे प्रसंगों का प्रयोग करना आरम्भ किया ।

प्रसादयुग में हास्य-व्यंग्य अपने नवीन रूप में प्रस्तुत हुआ क्योंकि प्रसाद के समय में नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित होने लगा था । अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । प्रसाद के नाटकों में विदूषक का प्रयोग नहीं मिलता तथापि हास्य-व्यंग्य की शिष्ट और सफल अभिव्यंजना हुई है । प्रसादकालीन नाटकों में हास्य व्यंग्य की अवतारणा कथोपकथनों में मिलती है । वेषविन्यास द्वारा हास्य प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता इसीलिए प्रसाद ने अलंकरण पर विशेष बल नहीं दिया है ।

प्रसाद के बाद देश में राष्ट्रीय जागरण का स्वर मुखरित हुआ । आधुनिक युग के नाटककारों ने राष्ट्रीयता के स्वर फूंके हैं । यह काल हास्य-व्यंग्य का स्वर्णयुग माना जाता है । रेडियो के विकास से नाटकों के प्रसारण में सफलता मिली । इस काल में हास्यपूर्ण नाटक रेडियो की वार्तागोष्ठियों द्वारा प्रसारित होकर अधिक मनोरंजक हुए हैं । वर्तमान समय के नाटकों में विदूषक भी चित्रण होने लगे हैं ।

आलोच्यकाल (१८६५ — १९६५ ई०) की इस सुदीर्घ परम्परा में देश ने अनेक बार उत्थान-पतन के दिन देखे । समाज में व्याप्त विपरीतता हास्य का कारण बनी । नाटककारों ने अपने नाटकों में लोकरुचि का समादर करते हुए व्यंग्य को उचित स्थान दिया । वर्तमान समय में हिन्दी नाटकों में हास्य-व्यंग्य की जो अधिकता है वह युगसापेक्ष है । भारतेन्दु से लेकर वर्तमान समय तक के नाटकों में हास्य-व्यंग्य के सभी पक्ष प्रकट हुए हैं । वर्तमान नाटककारों ने मानव-रुचि के अनुकूल शिष्ट और परिष्कृत हास्य का प्रदर्शन किया है । इस युग में नाटकों के सन्दर्भ में हास्य-व्यंग्य एक अत्यावश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया गया । हरिकृष्ण प्रेमी, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्र नाथ अश्क इत्यादि वर्तमाननाटक-

कारों ने इस क्षेत्र में स्तुत्य प्रयास किया । हिन्दी नाटकों में हास्य-व्यंग्य का तथाकथित अभाव हमें मान्य नहीं है । नाट्य साहित्य में यह अंग अपनी पूर्ण विकास को प्राप्त कर लिया है ।

परिशिष्ट

सहायक-पुस्तकों की सूची

सहायक-पुस्तकों की सूची

हिन्दी-ग्रन्थ

१. अजातशत्रु- जयशंकरप्रसाद, हिन्दी ग्रन्थ भण्डार, काशी, प्र०सं०जुलाई १९३६ ई०

२. अति अन्धेर नगरी-देवदत्त, भारत जीवन यन्त्रालय, काशी, प्र०सं०, सं० १९७४ वि०

३. अपूर्व रहस्य-रामलाल शर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी, प्र०सं०, सं० १८८८ वि०

४. अमर राठौर-चतुरसेन शास्त्री, साहित्य मण्डल दिल्ली, प्रथमवार, १९३३ ई०

५. अम्बपाली-रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना

६. अलग-अलग रास्ते, उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं०१९५४ई०

६क. अंधेर नगरी- हरिश्चन्द्र, [illegible] दिल्ली, १९५८ ई०

७. अहल्या- डी०एल० राय (अनु०रूपनारायण पाण्डेय), हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्या०, बम्बई द्वि०सं०, १९३६ ई०

८. आदमी और पैसा-हिमांशु श्रीवास्तव, पुस्तक भवन, पटना, दिल्ली, १९६०

९. आदिमयुग-उदयशंकर भट्ट, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, १९५२ ई०

१०. आंधी और तूफान- डॉ० कंचनलता सब्बरवाल, आधु० प्रका० माडल हाउस, लखनऊ, दिल्ली, प्र०सं०, १९६२ ई०

११. आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प- डॉ० मोहन अवस्थी, हिन्दी परिषद्, प्रका० विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९६२ ई०

१२. आधुनिक हिन्दी साहित्य - डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी परि० प्रका० वि०वि०, प्रयाग, तृ०सं०, १९५४ ई०

१३. आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य केशवचन्द्र वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्र०सं० १९६१

१४. आनरेरी मजिस्ट्रेट- सुदर्शन, इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, द्वि०सं०, १९२९ ई०

१५. इतिहास और कल्पना —(सम्पा० कैलाश कान्त शर्मा) मेहरचन्द मुंशीराम, [illegible] बाजार, दिल्ली, प्र०सं०, १९५२ ई०

१६. इन्सान और अन्य एकांकी— विष्णु प्रभाकर, हिन्दी ज्ञान मंदिर, बम्बई, सं०२००० वि

१७. ईश्वरीय न्याय-रामदास गौड़, गंगापुस्तकमाला कार्या०, लखनऊ, प्र०सं०१९८२ वि०

१८. उद्धव शतक- जगन्नाथदास रत्नाकर, इंडियन प्रेस लिमि०, इलाहाबाद, सं० २०१५

१९. उलटफेर-जी०पी० श्रीवास्तव, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, ज्ञानवापी, वाराणसी, १९५२

२०. ऊषा अनिरुद्ध- राधेश्याम कथावाचक,राधेश्याम पुस्तकालय,बरेली,प्र०सं०१९५२
२१. उसपार -डी०एल० राय (अनु० रूपनारायण पाण्डेय)हिन्दी ग्रन्थ रत्ना० कार्यालय,बम्बई, पु०सं०,१९३३ ई०
२२. एक घूंट-जयशंकर प्रसाद,भारती भण्डार,इलाहाबाद, द्वि०सं०,२००४ वि०
२३. एक-एक के तीन-तीन -देवकीनन्दन त्रिपाठी,भारतजीवन यन्त्रालय,काशी,प्र०सं०
२४. एकांकिका- चन्द्रकिशोर जैन, जीवनकला मन्दिर, सहारनपुर,१९४४ ई०
२५. ओ मेरे सपने-जगदीशचन्द्र माथुर, नीलाभ प्रकाशन,इलाहाबाद
२६. ओस और किरण-विश्वम्भर मानव, किताब महल,इलाहाबाद,दिल्ली,बम्बई, प्र०सं०, १९५९ ई०
२७. कैसी दीदी- उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन,इलाहाबाद ।
२८. कपटी मुनिनाटक-रूपनारायण पाण्डेय,भारत जीवन प्रेस,काशी,प्र०सं०,१९०३ई०
२९. कवित्तरत्नाकर-(सेनापतिकृत)सम्पा० पं० उमाशंकर शुक्ल,हिन्दी परि०प्रका०, इलाहाबाद,प्र०सं०,१९५७ ई०
३०. कबीर नाटक-देवकीरमण भूषण,श्रीश्याम साहित्यमंदिर,कलकत्ता,प्र०सं०१९८२
३१. करुणाभरण नाटक-लच्छीराम कृष्णजीवन, हिन्दी साहित्य सम्मे०,प्रयाग १९६७
३२. कलजुगी विवाह-देवकीनन्दन त्रिपाठी,भारत जीवन यन्त्रालय,काशी,प्र०सं०
३३. कलिकौतुकरूपक-प्रतापनारायण मिश्र, भारत जीवन प्रेस, काशी,१८८६ ई०
३४. कांग्रेस का इतिहास (खण्ड १) डॉ० पट्टाभिसीतारमैया,सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली,द्वि०सं०,१९३६ ई०
३५. कांग्रेस का इतिहास(खण्ड २)डॉ० पट्टाभि सीतारमैया,सस्ता साहित्य मंडल, प्र०सं०, १९४८ ई०
३६. कामना-जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार,इलाहाबाद,प०सं०
३७. कृष्णार्जुन युद्ध- माखनलाल चतुर्वेदी,प्रताप पुस्तकालय,प्रताप प्रेस,कानपुर,द्वि०सं०, १९२० ई०
३८. कृष्ण सुदामा-ब्रजनाथ मेहरा,रिक्थदास बाकिली,कलकत्ता,प्र०सं० १९२२ ई०
३९. कौन्सिल की मेम्बरी-राधेश्याम मिश्र, रामप्रसाद एंड ब्रदर्स,इटावा,प्र०सं० जुलाई १९२० ई०
४०. गंगा० अनूदित -काव्य-रूपनारायण पाण्डेय, गंगापुस्तकमाला कार्या०,लखनऊ, तृतीय संस्क०,१९८१ वि०

४१. गंगा-जमुनी — जी०पी० श्रीवास्तव, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता, १९२७ ई०

४२. गीतमधुप- आनन्दप्रसाद कपूर, उपन्यास बहार आफिस काशी, प्र०सं०

४३. गुड़वणी-वासुदेव मिश्र, भारती पुस्तकमाला, कलकत्ता, प्र०सं० १९८० वि०

४४. घाटियाँ गूँजती हैं — डॉ० शिवप्रसाद सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्र०सं०
१९६३ ई०

४५. चक्रव्यूह—लक्ष्मीनारायण मिश्र, कौशाम्बी प्रकाशन, दारागंज, प्रयाग, प्र०सं०, २०२४

४६. चरवाहे-उपेन्द्रनाथ अश्क-भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र०सं० २००५ वि०

४७. चतुर्वेणी- सम्पा० प्रभात शास्त्री, साहित्यकार संघ, इलाहाबाद, प्र०सं०, २०१३

४८. चार ऐतिहासिक एकांकी - डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्यभवन प्रा०लि०,
इलाहाबाद, प्र०सं० १९६५ ई०

४८. चिड़िया घर - हरिशंकर शर्मा, रामप्रसाद एंड ब्रदर्स, आगरा

४९. चुंगी की उम्मेदवारी-बदरीनाथ भट्ट, रामभूषण पुस्तक भंडार, बेलन गली,
आगरा, तीसरी बार

५०. चौपट चपेट- किशोरीलाल गोस्वामी, बनारस, १९४४ वि०

५१. छठा बेटा - उपेन्द्रनाथ अश्क - नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५७ ई०
५२. [illegible]

५३. जमनार सिंह की-देवकीनन्दन त्रिपाठी, भारत जीवन यन्त्रालय, काशी, प्र०सं०

५४. जयद्रथ वध- मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झाँसी, दस०सं०

५५. जी०पी०श्रीवास्तव की कृतियों में हास्यविनोद-श्याममुरारी जायसवाल,
लखनऊ वि०वि०प्रका०, लखनऊ, प्र०सं०

५६. जैसे को तैसा - गोपालराम गहमर, जासूस आफिस, काशी, प्र०सं०
५६. ज्योत्स्ना- सुमित्रानन्दन पन्त गंगा पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ [illegible]

५७. ठोंक पीटकर वैद्यराज-लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, १९२७

५८. डमरूनाथ-राधाराम शास्त्री, सुलभयोगी प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई०
५८- डालो- उमाशंकर भट्ट 'दिनेश' कविकोविद संघ, फर्रुखाबाद १९३६ ई०

५९. [illegible] का चपेट- हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ, भारत जीवन प्रेस, काशी, १८८७ ई०

६०. तन मन धन श्री गुसाईं जी के अर्पण-राधाचरण गोस्वामी, राजस्थान यन्त्रा०
अजमेर, प्र०सं०, १८९० ई०

६१. तीन एकांकी- वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी

६२. दुमदार आदमी- जी०पी० श्रीवास्तव, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता, १९३६ ई०

६३. [illegible] नाटक-गोपालराम गहमर, जासूस आफिस काशी, प्र०सं०

६४. देवताओं की छाया में - उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रका०, इलाहाबाद, द्वि०सं०, ४९ ई०
६५. देवहूति- राजाराम शास्त्री [illegible]

६५. देशी कुत्ता विलायती बोल- राधाकान्त जी, भारत जीवन यन्त्रालय, काशी, १९०१ ई०

६६. ध्रुवस्वामिनी-जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, तृ०सं०

६७. द्रौपदी स्वयंवर- राधेश्याम कथावाचक, राधेश्याम पुस्तका०, बरेली, प०सं०, १९५० ई०

६८. नया समाज - उदयशंकर भट्ट, मसीजीवी प्रकाशन, नई दिल्ली

६८क. नये एकांकी-संपा० डॉ० उदयनारायण तिवारी, लोक भारती प्रका०, इलाहाबाद,
१९६६ ई०

६९. नवरस-गुलाबराय, नागरी प्रचारिणी सभा, आरा (बिहार) द्वि०सं०, १९३४ ई०

७०. नहुष गिरिधरदास (संपा० ब्रजरत्नदास) नागरी प्रचा०सभा, काशी, प्र०सं०२०११वि०

७१. नाट्यकलामीमांसा-सेठ गोविन्ददास, सूचना तथा प्रकाशन, संचालनालय, म०प्र०,
१९६१ ई०

७२. नाट्यसमीक्षा, डॉ० दशरथ ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५९ ई०

७३. पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ- उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५९ई०

७३क. पर्दा उठने से पहले [illegible] आत्माराम एंड संस, दिल्ली

७४. पद्माकर ग्रन्थावली-संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

७५. परमभक्त प्रह्लाद-राधेश्याम कथावाचक, श्रीराधेश्याम पुस्तका०बरेली प०सं०, १९५०ई०

७५क. पटाक्षेप और परिक्रमा [illegible] प्रका० इलाहाबाद [illegible]

७६. पांच पुरुष-चिरंजीत, कान्तबन्धु प्रका०, दिल्ली प्र०सं०, १९६६ ई०

७७. पाप-परिणाम-जमुनादास मेहरा, दुर्गाप्रेस, [illegible], कलकत्ता, प्र०सं० १९२४ ई०

७८. पोद्दार [illegible]- कन्हैयालाल पोद्दार, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा, प्र०सं०१९९१वि

७९. प्रकाश और परछाईं-विष्णु प्रभाकर, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, १९५६ ई०

८०. प्रतिनिधि हास्य एकांकी-सम्पा० श्रीकृष्ण, आत्मा०एण्डसंस, दिल्ली, १९६०

८१. प्रतिनिधि एकांकीकार- डॉ० रामचरण महेन्द्र, साहित्य सदन, देहरादून,
प्र०सं० १९६४ ई०

८२. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन- डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, सरस्वती मंदिर
वाराणसी, प०सं०२०११ वि०

८३. प्रसाद का नाट्य साहित्य-परम्परा और प्रयोग- डॉ० हरीन्द्र प्रका० प्रति० मेरठ

८३. प्रायश्चित्त प्रहसन-रूपनारायण पाण्डेय, गंगा पुस्तकमाला का०, लखनऊ, प्र०सं०, १९२०ई०

८४. बड़े भाई -[illegible], सरस्वती प्रेस, बनारस, १९३८ ई०

८५. बारह एकांकी-विष्णु प्रभाकर, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र०सं०

८६. बिहारी सतसई-टीका० देवेन्द्र शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, १९५८ ई०

८७. बूढ़े मुंह मुंहासे- राधाचरण गोस्वामी, भारत जीवन प्रेस, काशी, प्र०सं०१८८७ई०

८८. बैल छः टके को - देवकीनन्दन त्रिपाठी, भारत जीवन प्रेस, काशी, प्र० १८८० ई०

८९. भारत आरत-खड्गबहादुर मल्ल, खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना, प्र०सं०१८८५ ई०

९०. भारत दुर्दशा- प्रतापनारायण मिश्र, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, प्र०सं०१९५६ई०

९१. भारतेन्दु कला - बंगीय हिन्दी परिषद

९२. भारतेन्दु युग- डॉ० रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र०सं०१९५६ ई०

९३. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य-डॉ० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल, रामनारायण लाल, कटरा, प्रयाग, प्रथम सं०, १९५६ ई०

९४. भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य- डॉ० गोपीनाथ तिवारी, हिन्दी भवन जाल०, इलाहाबाद, १९५९ ई० संशो०

९५. भारतेन्दुकालीन व्यंग्य परम्परा - ब्रजेन्द्रनाथ पाण्डेय, बम्बई बुक डिपो, कलकत्ता, प्रथमबार, २०१३ वि०

९६. भारतेन्दु की विचार धारा-डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, शक्ति कार्या० दारागंज, इलाहाबाद, प्र०सं० १९४८ ई०

९७. भारतेन्दु ग्रन्थावली- (पहला भाग), काशी नागरी प्रचा०सभा, प्र०सं०२००७वि०

९८. भारतेन्दुनाटकावली- सम्पा० ब्रजरत्नदास, रामनारायण बेनीमाधव, कटरा, इलाहाबाद

९९. भाव-विलास- देव, तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय, प्रयाग, १९९१ वि०

९९क. मरदानी औरत- बदरीनाथ भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९२९ ई०

१००. मशरिकी हूर-राधेश्याम कथावाचक, [illegible], बरेली १९३५ ई०

१०१. महाअन्धेर नगरी-विजयानन्द त्रिपाठी, भारतजीवन प्रेस, काशी, १८९७ ई०

१०२. महात्मा विदुर-नन्दकिशोरलाल-भांडार पुस्तका० लहेरियासराय, दरभंगा, प्र०सं० १९८० वि०

१०३. महाभारत- नारायण प्रसाद बेताब, शारदा बुक डिपो, काशी, प्र०सं०

१०३क. मादा कैक्टस - लक्ष्मीनारायण लाल, नेश० पब्लि० हाउस, दिल्ली, १९५९ ई०

१०४. मार-मार कर हकीम-जी०पी० श्रीवास्तव, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता, द्वि०सं०, १९४५ ई०

१०५. मिस अमेरिकन-बदरीनाथ भट्ट, इंडियन प्रेस लि० प्रयाग, १९२९ ई०

१०६. मूर्खमंडली-रूपनारायण पाण्डेय, गंगा पुस्तकमाला कार्या० लखनऊ, च०सं०, १९२२

१०७. मेवाड़पतन-डी०एल०राय (अनु० रामचन्द्र वर्मा) हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्या०, बम्बई, ग्यारहवार, १९३५ ई०

१०८, मौसेरे भाई-कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' साहित्य सेवक कार्या० काशी, २००१ वि०

१०९, यह पौरुष हमारा दुश्मन है - एम०पी० रणदिवे, विविधभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९६२ ई०

१०९क. रक्तकमल, लक्ष्मीनारायण लाल, नेशनल पब्लि० हाउस दिल्ली १९६३ ई०

११०, रसकलस-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस, २००८

१११, रसमीमांसा-रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र०सं०, २०१७ वि०

११२, रसविलास-देवदत्त, बनारस मर्केन्टाइल कम्पनी, कलकत्ता, १९५१ ई०

११२क, रस सिद्धान्त स्वरूप-विश्लेषण- डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रका०, दिल्ली, इलाहाबाद प्र०सं०, १९६० ई०

११३, रस सिद्धान्त-डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लि० हा०, दिल्ली, प्र०सं० १९६४ ई०

११४, रसिकप्रिया- केशवदास (टीका० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी) मातृभाषा मंदिर, दारागंज, प्रयाग, प्रथमवार, १९५४

११५, रक्षाबन्धन-हरिकृष्ण प्रेमी, हिन्दी भवन जालन्धर, प्रयाग बारह सं०

११६, राजाशिवि- बलदेव प्रसाद खरे-दुर्गाप्रेस, कलकत्ता, प्र०सं०, १९२३ ई०

११७, राजादिलीपनाटक-गोपालदामोदर तामस्कर, इंडियन प्रेस लि०, इलाहाबाद, प्र०सं०, १९२७ ई०

११८, रामचरितमानस-तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर २०२५ वि०

११९, रामायण-नारायणप्रसाद बेताब, शारदा बुकडिपो, काशी, प्र०सं०

१२०, राष्ट्रीयता और समाजवाद - आचार्य नरेन्द्रदेव, ज्ञानमंडल लि०, वाराणसी, २०२६ वि

१२१, राजबहादुर-लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय, गंगा पुस्तकमाला कार्या० लखनऊ, १९८१ वि०

१२२, रिमझिम - डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, च०सं०, १९६४ ई०

१२३, रेडियो नाट्यकला- डॉ० सिद्धनाथ कुमार, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५५

१२४, रेशमी टाई-डॉ० रामकुमार वर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र०सं० १९९८ वि०

१२५, लबड़ धों धों-बदरीनाथ भट्ट, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, १९९२ वि०

१२६, लल्लाबाबू-बलदेवप्रसाद मिश्र, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, १९५७ वि०

१२७, लो भाई पंचो लो !! - वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रका०, झाँसी, प्र०सं० १९५४

१२८, विवाह विज्ञापन-बदरीनाथ भट्ट, गंगा पुस्तकमाला कार्या०, लखनऊ, प्र०सं० १९८४ वि०

१२९, विशाख-जयशंकरप्रसाद, हिन्दी ग्रन्थागार भंडार, बनारस, प्र०सं०, १९७८ वि०

१३०. विश्वामित्र-कन्हैयालाल मेहरा, बहुतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता, प्र०सं० १९२३ ई०

१३१. विषपान-हरिकृष्ण प्रेमी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, १९७१ ई०

१३२. वीर अभिमन्यु-राधेश्याम कथावाचक, श्री राधेश्याम पुस्त० बरेली, ग्यारह०सं०, १९५०

१३३. वेश्यानाटक-नवलसिंह चौधरी, ईश्वरीप्रसाद सदर बाजार, मेरठ, १८९३ ई०

१३४. वेश्याविलास-देवकीनन्दन त्रिपाठी, भारतजीवन यन्त्रा० काशी, १८८७ ई०

१३५. शकुन्तला नाटक-राजा लक्ष्मण सिंह, रत्नाश्रम, आगरा

१३६. शब्दरसायन-देवदत्त (सम्पा० जानकीसिंह मनोज) हिन्दी साहित्य सम्मे०, प्रयाग,
२००० वि०

१३७. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-गोविन्द त्रिगुणायत-भारतीय साहित्य मंडल,
दिल्ली, १९५९ ई०

१३८. श्रवणकुमार - राधेश्याम कथावाचक, राधे०पुस्तका०, बरेली, पं०सं० एवं बार०सं०
१९२६ व १९५० ई०

१३९. श्रीकृष्ण अवतार- राधेश्याम कथावाचक-राधेश्याम पुस्तका०, बरेली प्रथमबार,
१९२९ ई०

१४०. श्रीमती मंजरी-दुर्गाप्रसाद गुप्त, उपन्यास बहार आफिस, काशी, प्र०सं०

१४१. सफर की साथिन-रामसरन शर्मा, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, १९५२ ई०

१४२. सत्यनारायण-बलदेवप्रसाद खरे, नारायणप्रसाद बाबू जैन, कलकत्ता, प्र०सं० १९७९ वि०

१४३. सम्राट् परीक्षित-बलदेवप्रसाद खरे, नारायणप्रसाद बाबू जैन, कलकत्ता, १९७९ वि०

१४४. समीक्षात्मक निबन्ध- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, नेश०पब्लि०हा० दिल्ली, द्वि०सं०
१९६९ ई०

१४५. स्कन्दगुप्त- जयशंकरप्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र०सं०, १९६५ ई०

१४६. स्वर्ग की झलक उपेन्द्रनाथ अश्क, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर प्र०सं० १९३९

१४७. सफल एकांकी

१४८. सरलनाटकमाला- मिश्रबन्धु कार्यालय, जबलपुर, द्वि०सं० १९८० वि०

१४९. सराय के बाहर - कृष्णचन्द्र, राजपाल एं०सं०, दिल्ली, १९५३ ई०

१५०. सात प्रहसन-उदयशंकर भट्ट, आत्मा० एं०सं०, दिल्ली १९६२ ई०

१५१. सावित्री सत्यवान-श्रीकृष्ण हसरत, उपन्यास बहार आफिस काशी, द्वि०बार,
१९२३ ई०

१५२. साहब बहादुर-जी०पी०श्रीवास्तव,हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,कलकत्ता, प्र०सं०,१६३०ई
१५३. साहित्य का स्वर-उदयशंकर भट्ट, आत्मा०ए०,मेरठ, १६६१ ई०
१५४. साहित्य का सपूत-जी०पी० श्रीवास्तव,चांद प्रेस लि०,प्रयाग १६३४ ई०
१५५. सिद्धान्त और अध्ययन-गुलाबराय,प्रतिभा प्रका०मंदिर,आगरा,प्र०सं०
१५६. स्त्रीचरित्र-देवकीनन्दन त्रिपाठी,भारतजीवन प्रेस,काशी,१६४४ वि०
मुंशी अजमेरी
१५७. सुहराब रुस्तम-डी०एल०राय (अनु०~~रूपनारायण पाण्डेय~~)हिन्दी ग्रन्थ रत्ना०
कार्या०बम्बई,पांचवीबार,१६३१ ई०
१५८. सूम के घर धूम-डी०एल०राय(अनु० रूपनारायण पाण्डेय)हिन्दी ग्रन्थ०रत्ना०
काया०,बम्बई,पांचवीबार,१६३१ई०
१५६. सैकड़े में दस-दस-देवकीनन्दन त्रिपाठी,राजस्थान यन्त्रा०अजमेर,प्र०सं०१६४४वि०
१६०. हजामत-ज्योतिप्रसाद मिश्र"निर्मल", छात्रहितकारी पुस्तकमाला,दारागंज,
प्रयाग,प्र०सं०
१६१. हम एक हैं - कृष्णादेवप्रसाद भटनागर,आत्मा०एंड संस दिल्ली,प्र०सं०,१६६४ ई०
१६२. हवाखोर का दर्द-रामकुमार,हिन्दी प्रका०पुस्तकालय,काशी,प्र०सं०,१६५६ई०
१६३. हास्यरस-अनु०पि०शेक्सपियर(अनु०रामचन्द्र वर्मा) साहित्यरत्नमाला काया०,बनारस,
२०१० वि०
१६४.हास्यरस-जी०पी०श्रीवास्तव, गंगा पुस्त०काया०,लखनऊ १६६१ वि०
१६५. हास्य की रूपरेखा-डॉ०एस०पी०खत्री,हिन्दी प्रका०पुस्तका०वाराणसी,
प्र०सं०,१६५६ ई०
१६६. हास्य की प्रवृत्तियाँ-डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी,राजश्री प्रका०,मथुरा,प्र०सं०
१६७. हास्यार्णव-पन्नालाल, भारतजीवन प्रेस,काशी, १८८५ ई०
१६८. हास्य के सिद्धान्त-जगदीश पाण्डेय,अर्चना प्रकाशन आरा,प्र०सं०
१६६. हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य-प्रेमनारा०दीक्षित,अवध
पब्लि०हाउस,लखनऊ,प्र०सं०
१७०. हास्य के सिद्धान्त तथा मानस में हास्य-जगदीश पाण्डेय अर्चना प्रका०,आरा,प्र०सं०
१७१. हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास-डॉ० सिद्धनाथ कुमार ग्रन्थम
रामबाग,कानपुर,प्र०सं०१६६६ई०

१७२. हिन्दी कविता में हास्य रस- सरोज कन्ना, लोकभारती प्रका० इलाहाबाद, प्र०सं०,१९६९ ई०

१७३. हिन्दी नाटककार-जयनाथ नलिन,आत्माराम एंड संस दिल्ली द्वि०बार,१९६१ ई०

१७४. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और समीक्षा-रामगोपाल सिंह चौहान,प्रभात प्रका०, १९५९ ई०

१७५. हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास-डॉ० दशरथ ओझा,राजपाल एंड संस,दिल्ली द्वि०सं० २०१३ वि०

१७६. हिन्दी नाटकों में हास्यतत्व-डॉ० शान्तारानी, रचना प्रकाशन,इलाहाबाद, प्र०सं०१९६९ ई०

१७७. हिन्दी नाट्य साहित्य का इतिहास-डॉ० सोमनाथ गुप्त,हिन्दी भवन जालंधर,इला०,प्र०सं०१९५५ ई०

१७८. हिन्दी नाट्य साहित्य-ब्रजरत्नदास,हिन्दी साहित्य कुटीर वाराणसी,च०सं०, २००६ वि०

१७९. हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचा० सभा काशी, संशो०,सं० २०२५ वि०

१८०. हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय,लोकभारती प्रका०, इलाहाबाद,नवम् सं० १९६९ ई०

१८१. हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास-डॉ० मोहन अवस्थी, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद,प्र०सं०,१९६९ ई०

१८२. हिन्दी साहित्य में हास्यरस-डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी,हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली, १९५७ ई०

१८३. हिन्दी नाट्य साहित्य- डॉ० कृष्णाचार्य, कामिका प्रकाशन,कलकत्ता,प्र०सं०

संस्कृत ग्रन्थ

१. अग्निपुराण-वेदव्यास

२. अभिनव भारती-अभिनव गुप्त

३. अभिज्ञानशाकुन्तल-कालिदास,रामनारायण लाल कटरा,इलाहाबाद

४. अमरकोष-अमर सिंह, चौखम्भा संस्कृत सीरीज,वाराणसी ।

५. उत्तररामचरित-भवभूति, रामनारायणलाल कटरा, इलाहाबाद
६. ऋग्वेद-पुरुषसूक्त
७. काव्यप्रकाश-आचार्य मम्मट, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
८. काव्यालंकार- भामह
९. काव्यमीमांसा- राजशेखर यायावरीय
१०. दशरूपक-धनंजय, चौखम्भा विद्याभवन, चौक, वाराणसी, २०११वि०
११. दशकुमारचरितम्- दण्डिन्
१२. दूतवाक्यम्-भासकवि
१३. ध्वन्यालोक-आनन्दवर्धनाचार्य, मोतीलाल, बनारसीदास, वाराणसी, प्र०सं० १९६३ ई
१४. नाट्यशास्त्र-भरतमुनि
१५. पंचतंत्रम्- विष्णुशर्मा, आक्सफोर्ड युनि०प्रेस, १९०८ ई०
१६. प्रसन्नराघवम्- जयदेव
१७. भगवदज्जुकीयम् प्रहसन-बोधायन कवि, मंगलोदय प्रेस, त्रिचूर (कोचीन), १९२५ ई०
१८. भावप्रकाशन-शारदा तनय
१९. मत्तविलासप्रहसनम्-चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, प्र०सं० १९६६ ई०
२०. महाभारत-वेदव्यास, गीताप्रेस, गोरखपुर
२१. मुकुन्दानन्द भाण- काशीपति, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६
२२. मृच्छकटिकम्- शूद्रक
२३. रसगंगाधर-पण्डितराज जगन्नाथ
२४. रससदन भाण :-युवराज कवि, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२२ ई०
२५. रामायण-वाल्मीकिकृत, गीताप्रेस, गोरखपुर
२६. वक्रोक्तिजीवितम्-कुन्तक
२७. विक्रमोर्वशीयम्-कालिदास, साहित्य अकादमी, नईदिल्ली
२८. साहित्यदर्पण-आचार्य विश्वनाथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली २०१३ वि०
२९. सुभाषित रत्नभाण्डागार- निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१० ई०
३०. हर्षचरित- बाणभट्ट .
३१. हितोपदेश-नारायण
३२. शृंगारतिलकभाणः - रामभद्रदीक्षित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३८ ई०
३३. शृंगार सर्वस्वभाणः - नल्ला दीक्षित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२५ ई०

अंग्रेजी-ग्रन्थ

१. एन०एसे आन कामेडी - मैरीडिथ,१६१४ ई०
२. एन इन्ट्रोडक्शन टू ड्रामैटिक थियरी - ए० निकल,१६२३ ई०
३. ए हिस्ट्री आफ उर्दू लिटरेचर- रामबाबू सक्सेना, १६५३ ई०
४. ए स्टडी आफ् सैटायरिक् टैक्निक्-जान एम० बुलिट्,हार्वर्ड यनि०प्रैस,कैम्ब्रिज,१६५३ई०
५. ए गाइड टू रेडियो - कैम्पबैल एंड अदर, पृ०सं०
६. इंडिया टू डे - पामदत,१६४६ ई०
७. इवीमैन आउट आफ् हिज ह्यूमर --बैन जानसन,पृ०सं०
८. इनसाइक्लोपीडिया - एवीमैन, जे०एम० डेन्ट एंड संस लिमि०,लन्दन,१६६७ई०
६. ह्यूमर इन इंगलिश लिटरेचर - आर०एच०ब्लिथ, होकूसीडो प्रैस,टोक्यो,१६५६ई०
१०. ह्यूमर एंड ह्यूमरिस्ट-थैकरे, १६३१ ई०
११. आइडिया आफ् कामेडी - मैरीडिथ,१६२६ ई०
१२. लाफ्टर- हैनरी बर्गसां, लन्दन,१६११ ई०
१३. मिडसमरनाइट्स ड्रीम - शेक्सपियर, लन्दन,१८६१ ई०
१४. आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी,१६६० ई०
१५. सम प्राब्लम आफ् रेडियो ड्रामा - कृष्णा शुंगलू, १६५६ ई०
१६. साइकलाजिकल स्टडीज इन रस - डॉ० राकेश गुप्त, अलीगढ़,१६५० ई०
१७. टैबुल टास्क - जैन्टिल कापर,तृतीय संस्क०
१८. दि इंगलिश सैन्स आफ ह्यूमर एंड अदर एसैज़- हैराल्ड निकल्सन, कान्स्टे०,लंदन,
१६५६ ई०
१६. दि थियरी आफ ड्रामा- ए० निकल- हार्परएंडकं०लिमि०,सिडनी,लन्दन,१६३१ई०
२०. दि साइकालोजी आफ लाफ्टर- जे०वाईटी०ग्रिग, आक्स०युनि० प्रैस,लन्दन,
पंचम संस्करण ।
२१. सिक्स पेपर्स आन विट्-एडीसन, पृ०सं०
२२. न्यू इण्टरनैशनल डिक्शनरी - एन०वैब्स्टर,जी०बैल्स एंड० संस,लिमि०मैरीम कं० हि०सं

<u>पत्र पत्रिकाएं</u> –

१. माध
२. आलोचना
३. कल्पना
४. [illegible]
५. धर्मयुग
६. भारतेन्दु
७. विशालभारत
८. वीणा
९. साप्ताहिक हिन्दुस्तान
१०. सरस्वती
११. हरिश्चन्द्रचन्द्रिका
१२. मतवाला